वैष्णव पुराणों में सृष्टि-वर्णन

भूमिका लेखक :
पद्मभूषण आचार्य
पं० बलदेव उपाध्याय

लेखक :
डा० रमेश कुमार उपाध्याय

वैष्णव पुराणों में सृष्टि-वर्णन

भूमिका लेखक

पद्म विभूषण आचार्य पं० बलदेव उपाध्याय

लेखक

डॉ० रमेश कुमार उपाध्याय

केन्द्रीय ग्रन्थागार

बिहार विश्वविद्यालय

मुजफ्फरपुर

अभिमन्यु प्रकाशन

छाता चौक

किशोर नारायण रोड़

मुजफ्फरपुर (बिहार)

प्रकाशक

श्रीमती अर्चना उपाध्याय
अभिमन्यु प्रकाशन
छाता चौक, किशोर नारायण रोड़
मुजफ्फरपुर (बिहार)

१ मार्च १९९१

मूल्य : १५०.००

मुद्रक :
एशियन प्रिन्टर्स
४७७/८ मूंगानगर, दिल्ली ११००५३.

समर्पण

ममतामयी माँ
श्रीमती कुमुद कुमारी उपाध्याय
को
सादर समर्पित

भूमिका

भारतीय धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में पौराणिक साहित्य एक महनीय गरिमा से विभूषित है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्रचार और प्रसारण में पुराणों का योगदान अद्वितीय है। पुराण आज के हिन्दू-धर्म के मूल-स्तम्भ माने जाते हैं। इसीलिए पुराण चारों वैदिक-संहिताओं के अतिरिक्त पंचमभेद के रूप में स्वीकृत किये जाते हैं। निरूक्तकार यास्क ने "पुरा एवं भवति" इस प्रकार पुराण शब्द की व्युत्पत्ति प्रस्तुत की है। वायु पुराण के अनुसार पुराण वह साहित्य है जो प्राचीन काल में जीवित था। पद्म-पुराण की मान्यता है कि पुराण उसे कहते हैं जो प्राचीनता अथवा परम्परा की कामना करने वाले हैं। इस पुराण शब्द की व्युत्पत्तियों से स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि पुराण वह साहित्य है जो प्राचीन काल से सम्बद्ध है। प्राचीनता के साथ-साथ पुराण पवित्र भी है; क्योंकि अथर्ववेद और उपनिषदों आदि सभी ने इसकी पावनता को उद्घोषित किया है।

प्राचीनता तथा पावनता के अतिरिक्त पुराण साहित्य का दूसरा वैशिष्ट यह है कि यह वेदों के अर्थों को स्पष्ट करने वाला साहित्य है। पुराण-साहित्य की रचना एक उद्देश्य विशेष को लेकर की गई है। वेदों में सन्निहित गूढ़ तथ्यों की अर्थावगति एक सहस्यात्मक पहेली है। सर्व साधारण उससे अवगत नहीं हो सकते। निरूक्तकार यास्क ने यह स्पष्ट निर्देश किया है कि वैदिक मन्त्रों की व्याख्या हेतु अनेकानेक अगणित साहित्यिक, ऐतिहासिक और वैज्ञानिक सम्प्रदाय प्रचलित थे। पुराण का निर्माण भी वेदों के रहस्यों को साधारण जन के सामने प्रस्तुत करने के लिए किया गया था; क्योंकि वे उन्हें नहीं समझ सकते थे। ब्रह्माण्ड-पुराण में उल्लेख है कि 'अगों सहित तथा उपनिषदों के साथ जो वेदों को जानता है वह विचक्षण नहीं है यदि वह पुराण साहित्य को नहीं जानता।' इतिहास और पुराण वेदों का समुपबृंहण करते हैं। अतः पुराण साहित्य वैदिक साहित्य से पृथक् साहित्य नहीं है प्रत्युत् उसी साहित्य का पूरक साहित्य है।

पुराण संख्या में अष्टादश हैं और महापुराण के नाम से प्रख्यात है। मत्स्य, मार्कण्डेय भविष्य, भागवत, ब्रह्माण्ड, ब्रह्म वैवर्त्त, ब्रह्म, वामनवराह, विष्णु, वायु, अग्नि, नारद, पद्म, लिंग, गरुड़ कूर्म तथा स्कन्द ये अष्टादश पुराण माने जाते हैं। इन महा पुराणों को पद्मपुराण में सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों के अनुसार विभाजित किया गया है। ब्रह्मा-विषयक पुराण राजस, शिव-विषयक पुराण तामस और विष्णु विषयक पुराण सात्त्विक माने गये हैं। विष्णु विषयक पुराण-जिनमें भगवान विष्णु की सर्वोपरि मान्यता है तथा जिनकी भक्ति से सम्बद्ध विषयों का प्रतिपादन पौराणिक अन्य विषयों के अतिरिक्त विशेष रूप से किया गया है। उन्हें सात्त्विक अथवा वैष्णव पुराण माना गया है। विष्णु, नारदीय अथवा नारद, श्रीमद्भागवत, पद्म, वराह और गरुड़ ये छः पुराण वैष्णव पुराण कहलाते हैं। पुराणों का मुख्य वर्णन का विषय सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित हैं। इन्हीं पांच विषयों को लेकर पुराण साहित्य के पंचलक्षण की कल्पना की गई है तथा यह प्रसिद्ध है कि इन पांच लक्षणों से युक्त साहित्य का नाम ही पुराण है। यह पुराण का सर्वप्राचीन लक्षण है पुराण साहित्य के सम्यक् अनुशीलन के लिए इन उपर्युक्त पंच लक्षणों के स्वरूप का ज्ञान नितान्त आवश्यक है। इसी लिए इस शोध-प्रवन्ध का विषय, वैष्णव पुराणों में सृष्टि वर्णन का चयन किया है।

सर्ग :

यह सर्ग अथवा सृष्टि पुराणों के पंच लक्षणों में आद्य तथा प्रमुख लक्षण है।

प्रतिसर्ग :

सर्ग के विपरीत प्रतिसर्ग कहलाता है। सृष्टि का प्रलय स्वभावतः सम्पन्न होता है। ब्रह्माण्ड का प्रलय ही प्रतिसर्ग कहलाता है।

वंश :

सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा ने जिन राजाओं की सृष्टि की है उन राजाओं के भूत, वर्त्तमान तथा भविष्य कालीन सन्तान-परम्परा को वंश कहते हैं। पुराण साहित्य का यह एक प्रमुख विषय इन राजाओं और उनके वंशजों का वर्णन करना है।

मन्वन्तर :

पौराणिक साहित्य में मन्वन्तर शब्द सृष्टि के विभिन्न कालों का मापक तथा द्योतक है। पुराणों में चौदह मन्वन्तरों की चर्चा है। इन मन्वन्तरों का वर्णन पौराणिक साहित्य का प्रधान विषय है।

वंशानुचरित :

ब्रह्मा के द्वारा उत्पन्न राजाओं और ऋषिओं के वंशधरों का वर्णन वंशानुचरित कहलाता है। सर्वविदित मान्यता यही है कि इन पांच विषयों का वर्णन जिस साहित्य में होता है वह पुराण है अथवा महापुराण, लेकिन श्रीमद्-भागवतकार पुराण का लक्षण निर्धारित करते हुए उल्लेख करते हैं कि पंच लक्षणों से संयुक्त अल्प अथवा लघु पुराण है और दश लक्षणों से युक्त महा-पुराण होते हैं। उन्होंने सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, अन्तराणि, वंश, वंशानुचरित, संस्था, हेतु तथा अपाश्रय इन दश विषयों का वर्णन महापुराणों का प्रतिपाद्य विषय बतलाया है। श्रीमद्भागवत पुराण के द्वारा निर्दिष्ट इन दश लक्षणों की चर्चा ब्रह्माण्ड पुराण भी करता है और उसकी भी मान्यता है कि पौराणिक साहित्य के लिए ये दश लक्षण अथवा दश विषय अनिवार्य हैं। दश लक्षणों और पंच लक्षणों के तुलनात्मक पर्यवेक्षण से यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि दश लक्षण पंच लक्षणों के ही विकसित तथा उपवृंहित स्वरूप हैं। इस शोध-प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में उपर्युक्त विषयों की चर्चा की गई है।

पौराणिक साहित्य के सामान्य परिचय के बाद वैष्णव पुराणों की साधारण परिचयात्मक अवगति सर्वथा युक्ति संगत है। विशेष रूप से इस परिप्रेक्ष्य में जबकि इस शोध-प्रबन्ध का शीर्षक वैष्णव पुराणों से सम्बद्ध है। अतः द्वितीय अध्याय में वैष्णव पुराणों का संक्षिप्त परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है। प्रथम अध्याय में उल्लेख कर दिया गया है कि विष्णु, नारदीय अथवा नारद, भागवत, पद्म, वराह और गरुड़ ये छः सात्विक वैष्णव पुराणों में परिगणित हैं। अतः विष्णु पुराण का परिचय सर्वप्रथम दिया गया है।

विष्णु पुराण :

पुराण साहित्य में विष्णु पुराण का गौरव अतिशय महनीय है। विष्णु पुराण अष्टादश पुराणों में अन्यतम है और वैष्णव पुराणों में निर्विवाद रूप

से प्राचीनतम और प्रामाणिक है। इस पुराण की दूसरी विशेषता यह है कि इसमें विष्णु तत्त्व की दार्शनिक मीमांसा बड़े प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत की गई है। यहां उल्लेख कर देना समीचीन प्रतीत होता है कि यह विष्णु पुराण वैष्णव सम्प्रदायों तथा वैष्णव दर्शन का मूल आलम्बन है। इसी कारण प्रस्तुत पुराण मध्ययुगीन वैष्णव सम्प्रदायों का उपजीव्य ग्रन्थ बन गया था। नारदीय पुराण के अनुसार इस पुराण में श्लोकों की संख्या २४ सहस्त्र हैं, लेकिन आज जो हमें विष्णु पुराण का संस्करण उपलब्ध है उसमें छः सहस्त्र श्लोक मात्र हैं। यह पुराण छः भागों में विभक्त है। प्रत्येक भाग अंश कहलाता है, इस प्रकार विष्णु पुराण में छः अंश हैं और १२६ अध्याय हैं। इस पुराण के प्रवक्ता वशिष्ठ के पुत्र पराशर मुनि हैं और श्रोता मैत्रेय हैं। प्रथम अंश का प्रारम्भ पराशर सृष्टि वर्णन से प्रारम्भ करते हैं। देवों, दैत्यों, मानवों आदि की उत्पत्ति के वर्णन के साथ अनेक काल्पनिक कथायें तथा राजाओं और ऋषियों के आख्यान हैं। समुद्र-मन्थन, श्रीदेवी, कुमार, ध्रुव, प्रह्लाद आदि की प्रसिद्ध कथायें इस अंश में वर्णित हैं जो विष्णु भक्ति की महिमा के द्योतक है। श्रीदेवी का वर्णन विशेष रूप से काव्यात्मक है। इस पुराण के द्वितीय अंश में भूगोल का सांगोपांग विवेचन है। इसमें सातों द्वीपों तथा सात समुद्रों का वर्णन है। पृथ्वी के पश्चात् पाताल का वर्णन है जहां नाग लोग रहते हैं। पाताल के बाद नरकों का, जीवलोकों का, सर्पों का, नक्षत्र मन्डल का, चन्द्र का, तथा चन्द्रगति का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इस अंश की विशेषता यह है कि इसमें विष्णु को ही एक मात्र सत्य बतलाया गया है। इस पुराण का तृतीय अंश मनुओं और उनके मन्वन्तरों के वर्णन से प्रारम्भ होता है। इस अंश में विष्णु भक्त के मोक्ष, वर्णाश्रम धर्म, विवाह, पूजन, धार्मिक कर्म आतिथ्य सत्कार के नियम, भोजन-विधि, श्राद्ध-विधि आदि का वर्णन है। इस पुराण के चतुर्थ वंश में सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी राजाओं के आख्यानों में दक्ष की उत्पत्ति, मान्धाता की उत्पत्ति आदि प्रधान हैं। यह अंश विशेषतः ऐतिहासिक है। पंचम अंश का प्रधान प्रतिपाद्य विषय भगवान् विष्णु के अवतार तथा श्रीकृष्ण के अलौकिक चरित का वर्णन है। इस अंश के ३८ अध्यायों में वर्णित श्रीकृष्णचरित वैष्णवों साहित्य में एक अपना स्थान रखता है। वैष्णव भक्तों का यह श्रीकृष्ण चरित प्राण ही है। षष्ठ अंश में मात्र आठ अध्याय हैं जिनमें विष्णु भक्ति तथा विशेष रूप से प्रलय का वर्णन है।

नारद या नारदीय पुराण :

यह पुराण नारद, नारदीय तथा बृहन्नारदीय पुराण के नाम से उपलब्ध होता है। यह पुराण दो भागों में विभक्त है पूर्व भाग तथा उत्तर भाग। पूर्व भाग चार पादों में विभाजित है। इसी पूर्व भाग के प्रथम पाद जिसमें ३८ अध्याय हैं बृहन्नारदीय के नाम से मिलता है तथा शेष पूर्व भाग का तीन पाद तथा उत्तर भाग नारदीय पुराण के नाम से। इसके पूर्व भाग में १२५ अध्याय हैं और उत्तर भाग में ८२ अध्याय हैं। सम्पूर्ण श्लोकों की संख्या २५ हजार है। सनक, सनन्दन, सनत् कुमार एवम् सनातन ये चार ऋषि इस पुराण के प्रवक्ता हैं तथा नारद प्रश्नकर्त्ता व श्रोता हैं। पूर्व भाग का प्रथम पाद भगवान् विष्णु की संस्तुति और भक्ति की चर्चा से पूर्ण है। पूर्व भाग के द्वितीय पाद का पतिपाद्य विषय मोक्ष धर्म, सृष्टि वर्णन, वेदाङ्ग साहित्य का वर्णन है। तृतीय पाद में विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के सैद्धान्तिक तत्त्वों की विवेचना प्रस्तुत की गई है। तथा इस तृतीय पाद के २८ अध्यायों में शैव तत्त्व की विस्तृत चर्चा की गई है। चतुर्थ पाद का प्रधान विषय अष्टादश महा-पुराणों की विषयानुक्रमणी का वर्णन है। इस पुराण के उत्तर भाग में ८२ अध्याय हैं। और उसमें एकादशी व्रत के महात्म्य का वर्णन है।

श्रीमद्भागवत पुराण :

सात्त्विक वैष्णव पुराणों में श्रीमद्भागवत-पुराण एक अद्वितीय महनीयता से विभूषित है। पौराणिक साहित्य का यह ग्रन्थ-रत्न हैं भाषा, प्रतिपाद्य विषय तथा शैली सभी के दृष्टिकोण से यह पुराण समस्त अष्टादश पुराणों में एक विशिष्ट पुराण है। इसी हेतु संस्कृत साहित्य में यह जनश्रुति सर्व-प्रचलित और सर्वविदित है --

"विद्यावतां भागवते परीक्षा।"

इस पुराण का प्रारम्भ भगवान् की संस्तुति से होता है तथा इसकी परिसमाप्ति भी उसी से होती है, यह ग्रन्थ भगवत् तत्त्व तथा विशेष रूप से भगवान् की भक्ति का प्रतिपाद्य ग्रन्थ है। यह पुराण १२ स्कन्धों में विभक्त है। इन १२ स्कन्धों में दशम् स्कन्ध का महत्त्व सर्वोपरि है, क्योंकि इसके नव्वे अध्यायों में भगवान् श्रीकृष्ण के चरित का वर्णन है। दशम् स्कन्ध का प्राण रासपंचाध्यायी है जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण ने गोपियों की मुक्ति के लिए

उनके साथ रास-क्रीड़ा की है। रासपंचाध्यायी भक्ति शास्त्र का सर्वस्व है। इस पुराण की विशेषता यह है कि इसमें यत्र तत्र, सर्वत्र भगवान् की स्तुतियां उपलब्ध होती हैं जिनमें भगवत् तत्त्व दार्शनिक मीमांसा बड़े पांडित्यपूर्ण ढंग से की गई है।

पद्म पुराण :

यह पुराण परिमाण में स्कन्ध पुराण को छोड़कर अद्वितीय है इसके श्लोकों की संख्या ५० हजार बतलाई जाती है। इसके आदि, भूमि, ब्रह्मा, पाताल, सृष्टि और उत्तर ये छः खण्ड हैं। सृष्टि खण्ड में ८२ अध्याय हैं तथा सृष्टि की विस्तृत चर्चा की गई है। पद्म पुराण विष्णु की भक्ति का प्रतिपादक पुराण है भगवान् के नाम-कीर्तन का प्रकार इस पुराण में वर्णित है। साहित्यिक दृष्टिकोण से भी यह एक सुन्दर पुराण है।

वराह पुराण :

इस पुराण में २१८ अध्याय हैं और श्लोकों की संख्या २४ हजार है। इस पुराण में विष्णु से सम्बद्ध अनेक वृतों का वर्णन है विशेषकर द्वादशी व्रत-भिन्न मासों के द्वादशी व्रत का उल्लेख मिलता है तथा इन द्वादशी व्रत का उल्लेख मिलता है। तथा इन द्वादशी व्रतों का भगवान् विष्णु के विभिन्न अवतारों से सन्बन्ध दिखलाया गया है।

गरुड़ पुराण :

सात्त्विक वैष्णव पुराणों में गरुड़ पुराण का छठवां स्थान है। इस पुराण में श्लोकों की संख्या १९ हजार है जैसा नारदीय पुराण में उल्लेख मिलता है, यह पुराण पूर्व खण्ड और उत्तर खण्ड में विभक्त है। पूर्व खण्ड में विष्णु के अवतारों का माहात्म्य और उनकी पूजा का वर्णन है। इसके उत्तर खण्ड के ४५ अध्यायों में प्रेत कल्प का वर्णन है और २९ अध्यायों का ब्रह्म-खण्ड है। मरने के पश्चात् मनुष्य की क्या गति होती है, उसकी योनि उसके योग इत्यादि की विस्तृत चर्चा इस पुराण में की गई है। प्रेत कल्प का पाठ मृत्यु के उपरान्त मृत व्यक्तियों के सम्बन्धियों की शान्ति हेतु किया जाता है।

भारतीय वाङ्मय में ही नहीं अपितु समग्र विश्व साहित्य में ऋग्वेद की प्राचीनता सर्वविदित है। ऋग्वेद संहिता की दूसरी विशेषता यह है कि यह संहिता समस्त भारतीय ज्ञान-विज्ञान, साहित्य एवं दर्शन का उप-जीव्य साहित्य है। पौराणिक साहित्य वैदिक वाङ्मय का पूरक साहित्य है। इस साहित्य का

प्रधान प्रतिपाद्य वैदिक सूक्तों की रहस्यात्मक गुत्थियों को सलिलतम ढंग से लौकिक संस्कृत के माध्यम से सर्व साधारण के सम्मुख प्रस्तुत करना है। इसी परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के सृष्टि वर्णन के सर्वांगीण अवगति हेतु वैष्णव पुराणों की सृष्टि प्रक्रिया की विवेचना वैदिक साहित्य के वर्णन से तृतीय अध्याय में प्रारम्भ की गई है। ऋग्वेद में सम्भवतः दस से अधिक सूक्त हैं जिनमें सृष्टि प्रक्रिया की दार्शनिक मीमांसा प्रस्तुत की गई है। ऋग्वेदीय सृष्टि-विषयक सूक्तों में पुरुष सूक्त महनीय गौरव से मण्डित है। अतः इस अध्याय में सर्व प्रथम पुरुष सूक्त की सृष्टि विषयक दार्शनिक मीमांसा का विश्लेषण किया गया है। इसके पश्चात् हिरण्यगर्भ सूक्त नासदीप सूक्त, अदितिसूक्त में वर्णित सृष्टि की विवेचना को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। यहां यह उल्लेख करना सर्वथा समीचीन समझा जाता है कि समग्र ऋग्वेदीय सूक्तों में नासदीप सूक्त का सृष्टि-वर्णन दार्शनिक दृष्टिकोण से एक विलक्षण महत्त्व रखता है---जिसकी चर्चा इस अध्याय में विशेष रूप से की गई है। इसके अनन्तर अथर्ववेदीय सृष्टि विषयक विवेचना प्रस्तुत की गई है। पाश्चात्य संस्कृत विद्वानों ने जिनमें डॉ० विन्टरनित्स का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है—अथर्ववेद की सृष्टि विषयक दार्शनिक मीमांसा का बड़ा अव-मूल्यन किया है, लेकिन वस्तु-स्थिति ऐसी नहीं है। अथर्ववेदीय सूक्तों में काल सूक्त और रोहित सूक्त में वर्णित सृष्टि विवेचना को प्रस्तुत किया गया है। इसके उपरान्त ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों में वर्णित सृष्टि विवेचना का विश्लेषण किया गया है जिनमें वैदिक ऋषियों की दार्शनिक आध्यात्मिक चिन्तन की पृष्ठभूमि सुदृढ़ रूप से प्रतिष्ठित है। औपनिषदिक सृष्टि विषयक विवेचना की विशेषता यह है कि इसमें वैदिक ऋषियों की मनीषा ने यह प्रदर्शित करने का प्रयास किया है कि विस्तृत विधि-विधानों से युक्त वैदिक यज्ञों के स्थूल सम्पादन की तुलना उनके मानसिक चिन्तन से की गई है। यह उद्घोषणा स्पष्ट रूप से की गई है कि स्थूल रूप से यज्ञों के सम्पादन से जिस आध्यात्मिकता की उपलब्धि होती है उसकी प्राप्ति उन यज्ञों के ज्ञान और मानसिक चिन्तन से भी होती है। इसी अध्याय में भारतीय दर्शन सांख्य, न्याय, अद्वैतवेदान्त दर्शन की सृष्टि विषयक विवेचना को प्रस्तुत किया गया है। पौराणिक सृष्टि वर्णन इन उपर्युक्त दर्शनों की विचारधारा से विशेष रूप से प्रभावित हुआ है। अतः उन्हीं की सृष्टि विषयक विवेचना प्रस्तुत की गई है। इन उपर्युक्त दर्शनों में भी पौराणिक साहित्य के निर्माता सांख्य दर्शन की

सृष्टि विषयक विचारधारा से अत्यन्त प्रभावित हुए हैं। लेकिन यहां ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि पौराणिक सृष्टि वर्णन सांख्य सृष्टि तत्त्व का अक्षरशः अनुवाद नहीं है। सांख्य मत से प्रभावित होने पर भी उसका अपना पृथक् व्यक्तित्व और स्वातन्त्र्य है।

विष्णु पुराण में यह उल्लेख किया गया है कि जगत् कि उत्पत्ति विष्णु से हुई है, यह जगत् उन्हीं में स्थित है। इस जगत् की स्थिति और लयकार्त्ता विष्णु ही हैं और विष्णु ही जगत् है। भगवान् विष्णु ही परम ब्रह्म है। वह विकाररहित है। शुद्ध अनिवाशी परमात्मा, सर्वथा एक रस भगवान् वासुदेव है। वे सर्वत्र हैं और उनमें समस्त विश्व विद्यमान है। अतः विद्वान् उन्हें वासुदेव कहते हैं। परब्रह्म वासुदेव का प्रथम रूप पुरुष है। प्रकृति और महदादि उनके अन्य रूप हैं। परब्रह्म ही व्यक्त कार्य है तथा अव्यक्त कारण है एवं काल महाकारण के रूप से विद्यमान है। अव्यक्त और व्यक्त अर्थात् प्रकृति और महदादि को काल क्षोभित करता है अतः परब्रह्म का परम रूप है। परब्रह्म प्रधान पुरुष, व्यक्त और काल सबसे परे है। भगवान् विष्णु व्यक्त-अव्यक्त पुरुष और काल रूप से स्थित होकर जगत् के आविर्भाव, पालन और संहार के प्रकाश और उपादान में पृथक्रूप से कारण है। जब सृष्टि का समय उपस्थित होता है तो तीनों गुणों की साम्यावस्थारूप प्रधान विष्णु से अधिष्ठित हो जाता है तो उससे महत् तत्त्व की उत्पत्ति होती है और सृष्टि प्रक्रिया उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। विष्णु पुराण यह वर्णन करता है कि सृष्टि विष्णु का उपकारक है। विष्णु सर्वस्वरूप है तथा श्रेष्ठ है। जैसे अग्नि की उष्णता स्वाभाविक शक्ति है। उसी प्रकार ब्रह्म की सर्गादि रचना रूप शक्तियां स्वभाविक हैं। काल स्वरूप विष्णु भगवान् से ब्रह्मा, पृथ्वी, पर्वत, समुद्र आदि चराचर जीव की आयु का परिणाम किया जाता है। भगवान् नारायण पर है। अचिन्त्य है। ब्रह्मा, शिव, आदि ईश्वरों के ईश्वर हैं। ब्रह्म स्वरूप है। अनादि हैं और सबके उत्पत्ति स्थान हैं।

पंचम अध्याय में पद्म, गरुड़, वराह और नारदीय पुराण में वर्णित सृष्टि-प्रक्रिया की विवेचना की गई है। पद्म पुराण के सृष्टि खण्ड में तथा भूमि-खण्ड में ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति तथा जगत् की संरचना का वर्णन किया गया है। पद्म पुराण की सृष्टि वर्णन की विशेषता यह है कि इस पुराण के सृष्टि वर्णन का प्रधान प्रयोजन यह है कि इसके माध्यम से परब्रह्म परमात्मा

का ज्ञान होता है । भारतीय मनीषा ने पुरुषार्थ चतुष्ट्य में मोक्ष को सर्वोपरि स्थान प्रदान किया है तथा निर्धारित किया है कि अर्थ, धर्म, काम एवं समस्त ज्ञान-विज्ञान साधन हैं तथा परब्रह्म परमात्मा का ज्ञान रूपी मोक्ष साध्य है । इस तथ्य का उद्घाटन सभी वैष्णव पुराण करते हैं तथा पद्म पुराण उसी परम्परा का अनुसरण करता है । इस पुराण का सृष्टि वर्णन जगत् की प्रलयावस्था से प्रारम्भ होता है । उस समय एकमात्र ब्रह्मा था वही ज्योति थी जो सर्वकारक थी । वह ज्योति-स्वरूप ब्रह्म सर्वत्र है । उसका स्वरूप ज्ञान रूप है । ऋग्वेदीय नासदीय सूक्त का प्रारम्भ भी ऐसे ही वर्णन से प्रारम्भ होता है । जिस समय इस विशाल सृष्टि के सृजन का समय उपस्थित होता है अर्थात् जब भी ब्रह्म को ऐसी इच्छा होती है कि जगत् का आविर्भाव होवे, तो वहीं ज्ञान स्वरूप ब्रह्मात्मक ज्योति अपने आप में लीन विकारों को जानकर इस विश्व की संरचना के उपक्रम को प्रारम्भ करती है । सर्वप्रथम उस ज्योति ब्रह्म से प्रधान का आविर्भाव होता है । उस अव्यक्त प्रधान से सात्विक, तामस और राजस तीन प्रकार का महत्-तत्त्व उत्पन्न होता है और सृष्टि प्रक्रिया अग्रसर हो जाती है । यही ब्रह्म-ज्योति सम्पूर्ण जगत् के पालन करने की इच्छा से श्रीराम आदि का रूप ग्रहण कर इसका संरक्षण तथा पोषण करती है । इस जगत् का विनाश करने के लिए वही ज्योति रुद्र का रूप धारण करती है । गरुड़ पुराण में सृष्टि का वर्णन भगवान् रुद्र की जिज्ञासा प्रकट करने पर श्रीहरि स्वयं इस प्रकार करते हैं "हे रुद्र ! इस जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं लय, तीन कार्यों का सम्पादन स्वयं भगवान् विष्णु करते हैं यह विष्णु की पुरातनी क्रीड़ा है । भगवान् विष्णु नर-नारायण वासुदेव निरंजन, परमात्मा तथा परब्रह्म है । वह ही इस जगत् की उत्पत्ति और लय के कारण हैं । भगवान् विष्णु ही व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप वाला है । वही पुरुष और काल रूप से अवस्थित है । विष्णु व्यक्त स्वरूप है और उन्हीं का अव्यक्त स्वरूप पुरुष और काल है । जिस प्रकार बालक क्रीड़ा करता है, उसी प्रकार विष्णु भी क्रीड़ारत है । विष्णु ही धाता है । वराह पुराण ने भी भगवान् विष्णु को परम तत्त्व माना है और इस पद्म, गरुड़ और वराह तीनों पुराणों में सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन सांख्यसृष्टि वर्णन से विशेष रूप से प्रभावित है । अन्तर इतना ही है कि वैष्णव पौराणिक सांख्य-सृष्टि-वर्णन निरीश्वर दर्शन से प्रभावित नहीं है यह वर्णन ईश्वरवादी है अर्थात् सांख्य वेदान्त में किसी प्रकार का विरोध या वैषम्य इस वैष्णव पौराणिक वर्णन में परिलक्षित नहीं होता । सांख्य और

वेदान्त का मंजुल सामरस्य है। अर्थात् प्रकृति-पुरुष के द्वैत का प्रतिपादक सांख्य अद्वय ब्रह्म के द्योतक वेदान्त के साथ मिलकर पौराणिक वैष्णव दर्शन की मूल-भित्ति बन गई है। प्रकृति और पुरुष दो भिन्न तत्त्व नहीं हैं। ये दोनों ब्रह्म के द्वारा प्रेरित होकर अपने कार्य के सम्पादन में समर्थ होते हैं। ब्रह्म इन दोनों का अध्यक्ष है और इसी ब्रह्म को वैष्णव पुराण विष्णु अथवा महाविष्णु से तादात्म्य स्थापित करते हैं। नारदीय पुराण में सृष्टि का वर्णन बड़े विस्तार से किया गया है। श्रीमद्भागवत की तरह इस पुराण का प्रधान प्रतिपाद्य मोक्ष है और मोक्ष हेतु जिस विषय विशेष की विस्तृति की आवश्यकता है। इसी को ध्यान में रखकर नारदीय पुराण के रचयिता ने सृष्टि का वर्णन किया है। इस पुराण ने भरद्वाज की जिज्ञासा करने पर महर्षि भृगु सृष्टि का वर्णन करते हैं तथा उनकी सृष्टि-विषय-विवेचना दार्शनिक गुत्थियों से भरी पड़ी है जिसका विशद वर्णन शोध-प्रबन्ध में किया गया है। नारदीय पुराण की सृष्टि.विषयक दार्शनिक विवेचना का स्वारस्य यह है कि समस्त जगत् मानस ब्रह्म की मानसिक योजना है अतः यह वास्तविकता से रहित है। मानव इसी मानस से आविर्भूत है। मानस आदि कारण है और मानव कार्य है। इस प्रकार साधारण रूप से कारण की विशिष्टताएं कार्य में निहित हैं।

षष्ठ अध्याय में श्रीमद्भागवत-पुराण में वर्णित सृष्टि-प्रक्रिया की विवेचना प्रस्तुत की गई है। वैष्णव पुराणों में श्रीमद्भागवत पुराण एक अद्वितीय महनीयता से मंडित है। अन्य वैष्णव पुराणों से इस प्रस्तुत पुराण की बहुत सी उल्लेखनीय विशेषताएं हैं। यह पुराण अद्वैत तत्त्व का प्रतिपादक है। इस पुराण के द्वितीय स्कन्ध तथा तृतीय स्कन्ध में विस्तृत रूप से सृष्टि का वर्णन किया गया है इसके अतिरिक्त इस पुराण ने यत्र-तत्र-सर्वत्र पर ब्रह्म की संस्तुतियां उपलब्ध होती हैं---जिनमें ध्रुव स्तुति, प्रह्लाद स्तुति, वेद स्तुति, ब्रह्मा स्तुति, गजेन्द्र स्तुति इत्यादि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन सभी स्तुतियों में परब्रह्म परमात्मा के परम ऐश्वर्य का वर्णन है और उन-उन प्रसंगों से सृष्टि-विषयक चर्चा उपलब्ध होती है।

सप्तम अध्याय में वैष्णव पुराणों में वर्णित सृष्टि वर्णन की समीक्षा भारतीय दार्शनिक विवेचना के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का एक लघुतम प्रयास किया गया है। वैष्णव पुराणों का सृष्टि वर्णन सांख्य दर्शन से विशेष रूप से प्रभावित है। लेकिन जहां सांख्य दर्शन निरीश्वरवादी है वहां वैष्णव-सांख्य

निरीश्वर न होकर सेश्वर दर्शन है। वैष्णव पुराणों के सृष्टि वर्णन की दूसरी विशेषता यह है कि इसमें सांख्य और वेदान्त का मंजुल समन्वय हुआ है। वैष्णव पुराणों ने विष्णु अथवा महाविष्णु से परब्रह्म का तादात्म्य स्थापित किया है। वैष्णव पुराणों के सृष्टि वर्णन का तीसरा वैशिष्ट्य यह है कि इन पुराणों के अनुसार यह जगत् अनादि और अनन्त है। वर्त्तमान काल में विश्व जैसा है वह भूतकाल में वैसा ही था और भविष्य में भी वह उस रूप में रहेगा। इन वैष्णव पुराणों की मान्यता है कि जगत् की संरचना भगवान् विष्णु की क्रीड़ा है। यदि जगत् की सृष्टि विष्णु की क्रीड़ा नहीं, तो भगवान् विष्णु तो आप्तकाम है। इन वैष्णव पुराणों ने प्राकृत, वैकृत और प्राकृत-वैकृत इन तीन प्रकार की प्रमुख सृष्टियां मानी हैं। सृष्टि रचना के सम्बन्ध में मनुस्मृति का उल्लेख है कि प्रजापति ब्रह्मा ने जिस जाति को जिस कर्म में पूर्व से प्रवृत्त किया था। बार-बार उत्पन्न होने वाली वह जाति अपने-अपने कर्मवश उसी कर्म को प्राप्त होती है। आचार्य शंकर ने भी शारीरिक भाष्य में मनु के इस मत का समर्थन किया है। वैष्णव पुराण भी इस मत को स्वीकार करते हैं अर्थात् जैसे-जैसे कर्म, पूर्वकल्पों में थे पुनः-पुनः सृष्टि होने पर उन प्राणियों की उन्हीं कर्मों में प्रवृत्ति होती है। इस पूर्व कर्म के कारण ही इस जन्म में प्राणियों की विभिन्न प्रवृत्ति तथा विभिन्न प्रकृति है। वैष्णव पुराणों के इस तथ्य का प्रकाशन भारतीय दर्शन की सुविचारित तथा सुचिन्तित परम्परा के सर्वथा अनुकूल तथा अन्तर्भूक्त है।

अष्टम अध्याय में पाश्चात्य दार्शनिकों की सृष्टि सम्बन्धी विचारों की एक संक्षिप्त समीक्षा प्रस्तुत की गई है। पश्चिमी जगत् में विवेकशील विचारकों की कमी नहीं रही है। यहां के तत्त्वज्ञानियों ने भी इस विश्व की विचित्र पहेली को भारतीय मनीषियों की भांति यथाशक्ति यथासाधन सुलझाने का पूर्ण उद्योग किया है। पाश्चात्य आदिम दार्शनिकों में सर्वप्राचीनतम थेलीज का कथन है कि इस सृष्टि का मूल आदि एकाकार तत्त्व जल है जिससे इस नानाकार जगत् का प्रादुर्भाव हुआ है। एनेक्सिमेनीज ने वायु को परम तत्त्व के रूप में स्वीकार किया है तथा पाइथोगोरस जगत् के पदार्थों का मूल तत्त्व आकार को मानते हैं। पाश्चात्य दार्शनिकों में जेनोफेनीज अद्वैतवादी थे अतः इन्होंने ब्रह्म तथा जगत् को एक माना है। पाश्चात्य दार्शनिकों में हराक्लीटस परिवर्त्तनवादी थे—जिन्होंने बौद्ध दर्शन के परिणामवाद का समर्थन किया है। इंग्लैंड के पाश्चात्य दार्शनिक हाब्स प्रकृतिवादी थे। उनके मतानुसार द्रव्य

और गति दो पदार्थ हैं जिनके परस्पर सहयोग से इस जगत् के प्रत्येक पदार्थ की संरचना संभव होती है। ईश्वर जगत् का मूल कारण है। हाब्स ने इसका खण्डन किया।

अन्तिम नवम अध्याय में इस सृष्टि विषयक वैष्णव पुराणों की समीक्षा का समापन किया गया है। प्रस्तुत पुराणों की मान्यता है कि प्रधानतः ब्रह्मा जगत् की रचना का कार्य सम्पादित करता है। सृष्टि कार्य के लिए भगवान् विष्णु उन्हें प्रेरणा प्रदान करते हैं। वैष्णव पुराणों में यह वर्णित है कि ब्रह्मा की उत्पत्ति विष्णु के नाभि-कमल से होती है। यही नाभि-कमल ब्रह्मा का निवास स्थान है जहां विष्णु की प्रेरणा से ब्रह्मा दिव्य सौ वर्षों तक तपस्या करते हैं। जिसके परिणामस्वरूप ब्रह्मा देखते हैं कि वह जल और उनका आसनभूत कमल प्रचण्ड वायु के वेग से प्रकम्पित हो रहा है। सृष्टि के अव्यवहितपूर्व यह दशा इसकी सूचना देती है कि जब एकार्णव-समस्त समुद्र के ऊपर वायु का प्रबल आघात होता है तब तपस्या और आध्यात्म ज्ञान के बल पर ब्रह्मा में विज्ञान शक्ति का प्राबल्य हो जाता है तथा इसी शक्ति के बल पर ब्रह्मा उस प्रबल वायु और जल राशि का पान कर जाते हैं। एकमात्र कमल शेष रह जाता है जिसे देख कर इसी कमल से पूर्वकाल में प्रकृति में लीन तीनों लोकों की संरचना की कल्पना ब्रह्मा के मस्तिष्क में प्रादुर्भूत होती है। फलतः ब्रह्मा स्वयं इस आकाश व्यापी कमल में प्रविष्ट हो जाते हैं और इस कमल को भू भूवः स्वः तीन भागों में विभक्त कर देते हैं। यही तीनों लोकों में कर्म का राज्य है।

यद्यपि वैष्णव पुराणों के सृष्टि वर्णन पर सांख्य दर्शन का विशेष प्रभाव है, लेकिन इसकी अपनी एक स्वतन्त्र मौलिकता है--जिसका निर्देश शोध-प्रबन्ध में प्रसंगानुसार स्थान-स्थान पर किया गया है। यह भावी अनुसन्धित्सुओं के अनुसंधान योग्य विषय है।

—बलदेव उपाध्याय
भूतपूर्व संचालक
अनुसंधान संस्थान
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी

रंगभरी एकादशी
फाल्गुन शुक्ल एकादशी
वि० स० २०४७
वाराणसी
२४-२-९१

आत्मिकी

पुराण प्राचीन भारतीय साहित्य के गौरवपूर्ण ग्रन्थ हैं। पौराणिक साहित्य के आधुनिक समीक्षकों की यह धारणा है कि भारतीय वाङ्मय में पुराण एक पृथक स्वतन्त्र साहित्य है, परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। पुराणों की महनीयता इसी में सन्निहित है कि पुराण वेदार्थ का उपबृंहण करने वाला वेद का पूरक साहित्य है। इसी हेतु नारदीय पुराण पुराणार्थ को वेदार्थ से अधिक महत्त्व प्रदान करता है और उसका कथन है कि सभी वेद पुराण में निःसन्देह प्रतिष्ठित हैं—

वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने।
वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः॥

यह सर्वविदित तथा सर्वमान्य तथ्य है कि वेद भारतीय धर्म तथा संस्कृति के सर्वप्रामाणिक और प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। पुराण इन्हीं वेदों की व्याख्या तथा पूरक अविभाज्य अंग हैं। "पूरणात् पुराणम्" पुराण शब्द की व्युत्पत्तियों में अन्यतम है। इसी व्युत्पत्ति के आधार पर जीवगोस्वामी पुराण को वेद के सदृश अपौरूषेय मानते हैं। वेद-साहित्य अत्यन्त विशाल है। उसका पार पाना एकान्ततः कठिन है। अतः दुष्पार तथा दुर्गम है। वेदार्थ के निर्णय में भारतीय मनीषियों में परस्पर विरोध है जिसका संकेत महर्षि यास्क ने अपने "निरुक्त" में नाना सम्प्रदायों के उल्लेख के माध्यम से किया है।

इसके विपरीत पुराणों की भाषा व्यावहारिक और सरल है। इनकी शैली रोचक और आख्यानमयी है। इसीलिए भारतीय वाङ्मय में वेदार्थ को जानने के लिए पुराणों का आकर्षण सर्वातिशायी है तथा आधुनिक युग के लिए सर्वप्रकार से उपयुक्त है।

मेरा कुल आरम्भ से ही वैष्णवसम्प्रदायी रहा है। मेरे तपोमूर्ति प्रतिमाह पं० रामउदित उपाध्याय, उनके अग्रज राम सुचित उपाध्याय और मेरे पितामह

स्वनामधन्य आचार्य पं० बलदेव उपाध्याय प्रभृति विशिष्ट रूप से भागवत वैष्णव थे और हैं। मेरा परिवार वैष्णव पुराण श्रीमद्भागवत का अनन्य प्रेमी है। इसी पारिवारिक अवाचनिक आदेश से प्रभावित होकर मैं वैष्णव पुराणों के अध्ययन की ओर आकृष्ट हुआ।

पुराण के सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित—ये पांच लक्षण हैं। पुराण का आरम्भ सर्ग (सृष्टि-वर्णन) से तथा परिसमाप्ति प्रतिसर्ग (प्रलय) से होता है। इन सर्ग तथा प्रतिसर्ग-वर्णन दो छोरों के मध्य विस्तृत मन्वन्तरों: राजाओं तथा महत्वशाली राजवंशों का विवरण प्रस्तुत करना पुराण साहित्य का प्रतिपाद्य विषय है। इसीलिए वैष्णव पुराणों के अपने लघुत्तम अध्ययन को मैंने सर्ग-वर्णन से प्रारम्भ किया है।

आधुनिक शताब्दी के प्रारम्भिक पूर्वार्ध में पाश्चात्य विद्वानों तथा आंग्ल-भाषा में दीक्षित भारतीय विद्वानों की दृष्टि पुराणों के प्रति बड़ी उपेक्षापूर्ण थी, परन्तु बड़े हर्ष का विषय है कि अब भारतीय विद्वान् ही नहीं पाश्चात्य अनुसन्धित्सु तथा संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् भी पुराण साहित्य की महत्ता को समझने लगे हैं तथा भारतीय इतिहास और संस्कृत के अमूल्य निधिस्वरूप विश्व कोषात्मक पुराणों का परिशीलन प्रारम्भ कर दिए हैं एवं अपने तथ्यपूर्ण अनुसन्धानात्मक कार्य को सुदूर तक अग्रसरित कर दिए हैं। अतः सर्वप्रथम मैं उन प्राच्य और पाश्चात्य मनीषियों और विद्वानों के प्रति अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करता हूं जिनके श्लाघनीय साहित्यि प्रयासों का निःसंकोच भाव से उपयोग किया गया है। बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर को जिन व्यक्तियों ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहायता प्रदान की है, मैं उनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन की औपचारिकता का निर्वाह नहीं प्रत्युत् उनके अमूल्य सहयोगों के प्रति मेरा वास्तविक आत्मनिवेदन है। सर्वप्रथम अपने गुरुवर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, संस्कृत विभागाध्यक्ष तथा आचार्य डॉ० हरिप्रपन्न द्विवेदी के श्री चरणों में प्रणत हूं जिनकी प्रेरणा, विद्वतापूर्ण निर्देशन एवं पर्यवेक्षण से इस कार्य की सम्पूर्णता सम्भव हो सकी है।

बिहार के भूतपूर्व मुख्यमंत्री तथा अपने राजनीतिक-जीवन के पथ-प्रदर्शक डॉ० जगन्नाथ मिश्र तथा सांसद द्वय श्री सीताराम केशरी, कोषाध्यक्ष, आखिल भारतीय कांग्रेस कमिटि (ई) श्री रंजनी रंजन साहू कोषाध्यक्ष, बिहार प्रदेश कांग्रेस कमिटि (ई) श्री महेन्द्र मोहन मिश्र पूर्व सांसद को इस अपने साहित्यिक

लघुतम प्रयास के माध्यम से सादर नमन करता हूं जिनके शुभाशंसाओं से यह कार्य पूर्णता को प्राप्त हो सका है। भूतपूर्व आचार्य तथा अध्यक्ष संस्कृत विभाग, बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर और पूर्व कुलपति, कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा डॉ० जयमन्त मिश्र, गुरुजन सर्वश्री रतिकान्त पाठक, श्री महावीर पाठक, डॉ० शिवशंकर प्रसाद, डॉ० वैद्यनाथ झा, डॉ० सतीशचन्द्र झा, डॉ० नन्दकिशोर शर्मा, डॉ० प्रभाकिरण, डॉ० चितरंजन मिश्र डॉ० प्रमोद कुमार सिंह आचार्य एवम् अध्यक्ष स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर के प्रति प्रणत हूं जिन्होंने समय-समय पर समुचित मार्ग-दर्शन से मेरा उत्साहवर्धन किया है।

मैं डॉ० ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार जी, कुलपति, कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा का हृदय से आभारी हूं, जिन्होंने समय-समय पर मेरा उत्साहवर्धन किया हैं।

अन्त में मैं बिहार विश्वविद्यालय केन्द्रीय पुस्तकालय के पुस्तकालयाध्यक्ष श्री रामेश्वर राय एवम् सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष सुश्री जया बोस जी को भी धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता हूं। जिन्होंने इस शोध-कार्य की पूर्णता हेतु बहुमुखी सहायता प्रदान कर, मेरे प्रयास को आपलोगों तक पहुंचाने में मेरी यथासाध्य सहायता किया है।

मैं अपनी माता श्रीमती कुमुद कुमारी उपाध्याय पिता डॉ० शिवशंकर उपाध्याय, पूर्व उपाचार्य स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, एवम् पूर्व विजिटींग प्रोफेसर सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी का भी हृदय से आभारी हूं जिनके स्नेह एवम् आशीर्वाद का प्रतिफल है यह पुस्तक।

अपने दोनों पितृव्य डॉ० उमाशंकर उपाध्याय, गणित विभाग, मदन मोहन मालवीय इन्जिनीयरिंग कालेज, गोरखपुर तथा डॉ० कन्हैया शंकर उपाध्याय, उपाचार्य गणित विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद को भी धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता।

मैं अपने अग्रन्ज अरविन्द कुमार उपाध्याय को भी धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता क्योंकि वह इसके पात्र हैं। अनुजों में श्री उमेश कुमार उपाध्याय, दिनेश कुमार उपाध्याय, राकेश कुमार उपाध्याय को भी धन्यवाद देता हूं।

मैं अपनी एक मात्र बहन श्रीमती पद्मा तिवारी एवम्, डॉ० अशोक कुमार तिवारी को भी धन्यवाद देता हूं, क्योंकि इनके स्नेह, सद्भाव एवम् सामयिक प्रेरणा का प्रतिफल है यह पुस्तक ।

अन्त में मैं एक मात्र स्वर्गीया फुआ श्रीमती माधुरी पाण्डेय एवम् फूफा प्रभास चन्द्र पान्डेय, बिहार राज्य, विद्युत बोर्ड को धन्यवाद देता हूं, क्योंकि यह उनके आशीर्वाद का प्रतिफल है ।

अपने श्वसुर श्री कौशल कुमार तिवारी जी, वरीय रसायनज्ञ, मुजफ्फरपुर वाष्प शक्ति प्रतिष्ठान, काँटी, मुजपफरपुर का भी हृदय से आभारी हूं । क्योंकि उनकी सतत् प्रेरणा एवम् आशीर्वाद के कारण ही इस कार्य हेतु में उद्यत् हुआ ।

मैं अपनी मां सदृश सास श्रीमती मनोरमा तिवारी को धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता हूं क्योंकि उनके सतत् आशीर्वाद के कारण ही यह कार्य सम्पन्न हो सका ।

मैं अपने आत्मीयजनों में श्री अजय उपाध्याय श्रीमती निवेदिता उपाध्याय, श्री रवीन्द्र दीक्षित, श्रीमती अनुपमा दीक्षित, श्री राजेश पाण्डेय, श्रीमती इन्दिरा तिवारी श्री विनोद ओझा, श्रीमती शालिनी तिवारी, इन लोगों के शुभकामना का ही फल है कि मैं इस गुरूतर कार्य करने में समर्थ हो सका हूं ।

अन्त में मैं अपनी धर्मपत्नी श्री मती अर्चना उपाध्याय को भी धन्यवाद देता हूं क्योंकि इस पुस्तक की पाण्डुलिपि तैयार करने में अपनी कई-रातों की निद्रा का त्याग करते हुए सतत् मेरा उत्साह वर्धन किया है। उनकी दोनों अनुजा सुश्री अर्पणा तिवारी एवम् सुश्री सोनिया तिवारी को भी शुभ-कामनाओं के हेतु धन्यवाद देता हूं ।

अपने एक मात्र साला अमित वालाजी एवम् समस्त परिवार के एक मात्र बड़े भाई श्री सुधीर कुमार पाण्डेय, मुजफ्फरपुर वाष्प शक्ति प्रतिष्ठान, काँटी, मुजफ्फरपुर को भी इनकी सतत् शुभकामना हेतु धन्यवाद देता हूं ।

पारिवारिक बच्चों को भी छोड़ना उचित प्रतीत नहीं होता इसलिए उन्हें भी धन्यवाद देता हूं । अंजनी, अश्विनी, यशू, शीवू, असीम, आकाश, अभिमन्यु, अशुतोष एवम् इन भाइयों की एक मात्र बहना सुश्री नेहा को भी धन्यवाद देता हूं । क्योकि इन समस्त पारिवारिक जनों के आशीर्वाद, एवम् शुभेच्छा का ही फल है कि यह पुस्तक इतने समय में प्रकाशित हो गई ।

प्रकाशनकार्य में शीघ्रताजनित कतिपय अशुद्धियों का रह जाना सहज-सिद्ध व्यापार है जिसके लिए मुझे हार्दिक खेद है। इस संदर्भ में संस्कृत-जगत् के प्रख्यात स्वनामधन्य अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त विद्वान् स्व० महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा जी की प्रासंगिक उक्ति सर्वथा समीचीन प्रतीत होती है। पू० शर्मा जी बहुधा कहा करते थे कि "कोई भी सांसारिक वस्तु सम्पूर्ण रूप से निर्दोष तथा सन्तोषप्रद नहीं हो सकती। जब मैं स्वयं कोई साधारण भी लेख सावधानता से लिखता हूं और पश्चात् लिख चुकने पर उसका अवलोकन करता हूं तब उसमें से विविध अशुद्धियां दृष्टिपथ पर आ जाती है। पुनः संशोधन करता हूं, फिर भी उसमें नयी-नयी त्रुटियां दृष्टिगत हो जाती हैं। इस प्रकार बार-बार संशोधन करने पर भी उसमें नए-नए दोषों और नई-नई अशुद्धियों-त्रुटियों के दर्शन का कदापि-कथमपि अन्त नहीं होता और तब अन्ततोगत्वा मनोनुकूलता के अभाव में भी विवशतावश सन्तोष करने को बाध्य हो जाना पड़ता है।"

जब इतने महान् मूर्धन्य विद्वान् की ऐसी सहज स्वभामोक्ति है तब मेरे सदृश क्षुद्रतम व्यक्ति की अवस्था का अनुमान विद्वज्जन ही लगा सकते हैं। एसी परिस्थिति में—

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समाद्रधति सज्जनाः ॥

के आदर्श का अनुगमन करते हुए विद्वानों से श्रद्धापूर्वक मैं क्षमायाचना करता हूं।

अन्त में नीरक्षीर विवेकी सहृदय हृदय मनीषियों के प्रति सर्वतोभावेन प्रणत हूं कि वे प्रस्तुत प्रबन्धस्थित त्रुटियों का परिमार्जन स्वयं कर मेरे इस प्रथम प्रयास की संस्तुति से मेरा उत्साहवर्धन करेंगे।

विद्वद्वशंवदः
(रमेश कुमार उपाध्याय)

महाष्टमी
बसन्त नवरात्र
वि० सं० २०४४.

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

संस्कृत वाङ्मय में पुराण साहित्य का संक्षिप्त विवेचनात्मक परिचय, पुराणों का वर्गीकरण एवं उनमें वैष्णव पुराणों का स्थान

भारतीय धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में पौराणिक साहित्य एक महनीय गरिमा से मण्डित है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्रचार-प्रसारण में पुराणों का योगदान अद्वितीय है। पुराण आज के हिन्दू धर्म के मूल स्तम्भ हैं। शतपथ ब्राह्मण तथा बृहदारण्यक उपनिषद् ने पुराणों को वेदों के समकक्ष स्थान प्रदान किया। संस्कृत वाङ्मय के दो मूर्धन्य ग्रन्थों ने यह उद्घोषणा की है कि "आर्द्र काष्ठ से उत्पन्न अग्नि से जिस प्रकार पृथक्-पृथक् धूम निकलता है, उसी प्रकार इस महान् भूत के निःश्वास से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वाङ्गिरस, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र-व्याख्यान एवं अनुव्याख्यान निःसृत हुए हैं"।[1]

अथर्ववेद संहिता का स्पष्ट कथन है कि शक्, साम, छन्द और यजुर्वेद के साथ ही पुराण भी उस उच्छिष्ट से अथवा जगत् पर शासन करने वाले यज्ञमय परमात्मा से उत्पन्न हुए तथा द्युलोक में निवास करने वाले देव भी उसी उच्छिष्ट से जन्म ग्रहण किए।[2] उच्छिष्ट शब्द के तात्पर्य के विषय में

---

१. ऋग्वेदो यजुर्वेदो सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस
इतिहासपुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राणि
अनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि
वाचैव सम्राट् प्रजायते।" शतपथ ब्रा० १४/६/१०/६

तथा

"स यथार्द्रेन्धनाग्नेरभ्याहितात् पृथग्धूमा
विनिश्चरन्ति, एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य
निःश्वसितमेतद् यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहास पुराणं।
बृहदारण्यक उप० २/४/११

२. "ऋचः साभानि छन्दांसि पुराणं यजुवा सह।
उच्छिष्टाज्जजिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रिताः॥
अथर्व० ११/७/२४

विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं। वेदों के सुप्रसिद्ध स्वनामधन्य भाष्यकार सायणाचार्य की दृष्टि में "उद् ऊर्ध्वम अर्थात् सर्वेणां भूतभौतिकानामवसाने शिष्टः उर्वरितः परमात्मा"। इस प्रकार व्युत्पत्ति से स्पष्ट है कि समस्त पदार्थों के अवसान होने पर शेष रहने वाले परमात्मा की द्योतना इस शब्द "उच्छिष्ट" के माध्यम से होती है। छान्दोग्य उपनिषद् में यह बताया गया है कि जब नारद सनत्कुमार ऋषियों के पास विद्याध्ययन के लिए पहुंचते हैं, तो सनत्कुमार पूछते हैं कि आपने किन-किन विषयों का अध्ययन किया है ? इस प्रश्न को सुनकर महर्षि नारद उत्तर देते हैं—

"ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेद सामवेदमाथर्वंषे
चतुर्थमितिहास पुराणं पंचमं वेदानां वेदं,
पित्र्यें राशि देवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं
देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां
नक्षत्रविद्यों सर्वदेवजनविद्यामेतद् भगवोऽध्येमि"।[1]

उपर्युक्त उद्धरण में इतिहास-पुराण को पंचम वेद के रूप में कहा गया है। नारद ने चारों वेदों के समान ही इतिहास पुराण रूप पंचम वेद का भी अध्ययन किया है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि अथर्ववेद, ब्राह्मण ग्रन्थों एवं उपनिषदों ने पुराणों को वेदों के समान मान्यता से समादृत किया है तथा पौराणिक साहित्य की अतिप्राचीनता को एक स्वर से स्वीकार किया है। पौराणिक साहित्य की महीनयता के प्रतिपादन में भारतीय परम्परा की उद्घोषणा है कि जो द्विज अंगों और उपनिषदों के सहित चारों वेदों को तो जानता है, किन्तु पुराण को यदि सम्यक् प्रकार से नहीं जानता वह विचक्षण नहीं हो सकता।[2]

उपनिषदों अर्थात् वेदान्त साहित्य के साथ अंगों सहित चारों वेद का ज्ञाता ब्राह्मण, तब तक ज्ञान की परिपक्वावस्था को नहीं पहुंच सकता, जब तक वह पुराण साहित्य का सम्यक् विद्वान् नहीं हो जाता।[3] पुराण, वेदों का

---

१. छान्दोग्य उप० ७/१/२

२. यो विद्याच्चतुरो वेदान्साङ्गोपनिषदो द्विजः।
न चेत्पुराणं संविद्यान्नेव स स्याद्विचक्षणः॥

—वायु पुराण १/१००

३. वही।

पूरक साहित्य है । अतः वेदों के अध्ययन को पुराणों के अध्ययन से प्राप्त ज्ञान राशि से पूर्ण करना चाहिए ।

पुराण एक महत्वपूर्ण शब्द है । इस शब्द की व्युत्पत्ति परम वैयाकरण पाणिनि, महर्षि भास्क एवं स्वयं पुराणों ने भी दी है । 'पुराभवम्' अर्थात् प्राचीनकाल में होने वाले इस अर्थ में पाणिनि ने 'पुरातन शब्द की सिद्धि की है । पुरा शब्द से "सायंचिरं ह्वे प्रगेऽव्ययेभ्यष्टचुटयुलौ तुट् च"[1] सूत्र से च्यु प्रत्यय करने तथा तुट् का आगमन होने पर पुरातन शब्द निष्पन्न होता है । परन्तु दो सूत्रों—"पूर्व कालैक—सर्व—जरत्—पुराण नव—केवलाः समानाधिकरणेन"[2] तथा "पुराण प्रोक्तेषु—ब्राह्मणकल्पेषु"[3]—में पुराण शब्द का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि तुडागम के अभाव में निपातनात् यह पुराण शब्द निष्पन्न हो जाता है । कहने का तात्पर्य यह है कि पाणिनीय प्रक्रिया के अनुसार पुरा शब्द से च्यु प्रत्यय अवश्य होता, परन्तु नियम प्राप्त तुट् का आगम नहीं होता । निरुक्तकार भास्क ने अपने निरुक्त के तृतीय भाग में "पुरा नवं भवति" पुराण की व्युत्पत्ति प्रस्तुत की है । महापुराणों ने भी पुराण शब्द की निरुक्ति की है । वायु पुराण के अनुसार प्राचीन काल में जो जीवित था वही पुराण है ।

"पुरा अनति इति पुराणम्"
यस्मात पुरा ह्यनतीदं पुराणं तेन तत् स्मृतम् ।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रभुच्यते ॥

—वायु पुराण १/२०३

पुराणों का गम्भीर अध्ययन अत्यन्त आवश्यकीय है । ब्रह्म पुराण का कथन है कि वेदों के सारगर्भित तत्व को आत्मसात करने के लिए पुराणों का अध्ययन अपरिहार्य है । पद्मपुराण के अनुसार प्राचीनता अथवा परम्परा की कामना करने वालों को पुराण कहते हैं—

"पुरा परम्परां वष्टि पुराणं तेन तत् स्मृतम् ।"

पद्मम् पु० ५/२/५३

---

१. अष्टाध्यायी ४/३/२३
२. वही २/१/४९
३. वही ४/३/१०५

ब्रह्माण्ड पुराण की मान्यता है कि प्राचीन काल में ऐसा हुआ वही पुराण है—

"यस्मात् पुरा ह्यभूच्चेतत् पुराणं तेन तत् स्मृतम् ।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
ब्रह्माण्ड पु० १/१/१७३

इन व्युत्पत्तियों से यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि पुराण वह साहित्य-विशेष है जो प्राचीन काल से सम्बद्ध था । प्राचीनता के साथ-साथ पुराण का दूसरा वैशिष्ट्य यह है कि यह वेदों के अर्थों को स्पष्ट करने वाला साहित्य है । पुराण साहित्य की निर्मिति एक उद्देश्य विशेष को लेकर हुई थी । वेदों में सन्निहित गूढ़ तथ्यों को समझना एक रहस्यात्मक पहेली है । सर्व साधारण इससे अवगत नहीं हो सकते । इसीलिए तो वैदिक मन्त्रों की व्याख्या हेतु अनेकानेक अगणित साहित्यिक सम्प्रदाय प्रचलित थे जिनका निर्देश निरुक्तकार यास्क ने दिया है । पुराणों का निर्माण भी वेदों में किए रहस्यों की साधारण जन के सामने प्रस्तुत करने के लिए किया गया, क्योंकि वे उन्हें नहीं समझ सकते थे । यही कारण है कि पौराणिक साहित्य को भारतीय वाङ्मय में पंचम वेद की मान्यता प्रदान की है । ब्रह्माण्ड पुराण में यह उल्लेख है कि अंगों सहित उपनिषदों के साथ जो वेदों को जानता है वह विचक्षण नहीं है यदि वह पुराण साहित्य को नहीं जानता । इतिहास पुराण से वेदों का समुण-वृहण करना चाहिए, क्योंकि इसके अभाव में वेद भयभीत होते हैं कि अल्पज्ञ पुराण साहित्य से अनभिज्ञ मेरे ऊपर प्रहार करेगा । संस्कृत वाङ्मय में अष्टादश संख्या बड़ी गौरवशालिनी तथा पवित्र मानी जाती है । महर्षि वेद व्यास द्वारा प्रणीत महाभारत में पर्वों की संख्या अष्टादश है । श्रीमद्‌भगवद्-गीता के अध्यायों की संख्या अष्टादश है । श्रीमद्‌भागवत में श्लोकों की संख्या अष्टादश सहस्र है । इसी प्रकार पुराणों की संख्या भी अष्टादश है । विद्वानों की मान्यता है कि यह पुराण संख्या साभिप्राय है । पण्डित प्रवर मधुसूदन ओझा ने अपने पुराण विषयक ग्रन्थों में बड़े विस्तार के साथ अनेक युक्तियां प्रदर्शित की हैं । स्थानाभाव के कारण हम उस विवरण में प्रवेश नहीं करते । अत्यन्त प्राचीन काल से पुराणों की संख्या १८ मानी गई है । इन अष्टादश पुराणों का नाम प्रत्येक पुराण में उपलब्ध होता है । देवीभागवत पुराण के प्रथम स्कन्ध के तृतीय अध्याय के एक अनुष्टुप छन्दात्मक श्लोक ने आद्य अक्षर के निर्देश द्वारा अष्टादश पुराणों का नाम निर्देश किया है ।

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रमयं वचतुष्टयम् ।
अनापदलिङ्—कू—स्कानि, पुराणानि पृथक् पृथक् ।।

(१) मकरादि दो पुराण—मत्स्य पुराण तथा मार्कण्डेय पुराण ।

(२) भकरादि दो पुराण—भागवत पुराण तथा भविष्य पुराण ।

(३) ब्रभयम् —ब्रह्म पुराण, ब्रह्मवैवर्त्त पुराण एवं ब्रह्माण्ड पुराण ।

(४) वचतुष्टयम् —वामन पुराण, विष्णु पुराण, वायु पुराण, वाराह पुराण ।

(५) अनापत् लिङ्ग कूस्क—अग्नि पुराण, नारद पुराण, पद्म पुराण, लिङ्ग पुराण, गरुड़ पुराण, कूर्म पुराण एवं स्कन्द पुराण ।

विष्णु पुराण ने पुराणों का निर्देश एक विशिष्ट क्रम से किया है। पुराण पुरुष कुल अष्टादश पुराणों को बतलाते हैं, उनमें सबसे प्राचीनतम ब्रह्मपुराण है । प्रथम पुराण ब्रह्म है, दूसरा पाद्म, तीसरा वैष्णव, चौथा शैव, पांचवां भागवत, छठवां नारदीय और सातवां मार्कण्डेय पुराण है । इसी प्रकार आठवां आग्नेय, नवां भविष्यत्, दसवां ब्रह्मवैवर्त्त और ग्यारहवां पुराण लैङ्ग कहा जाता है । बारहवां वाराह, तेरहवां स्कन्द, चौदहवां वामन, पन्द्रहवां कौर्म तथा इसके पश्चात् मात्स्य, गारुड़ तथा ब्रह्मांण्ड पुराण हैं ।[1]

---

१. आद्यं सर्वपुराणानां पुराणं ब्राह्ममुच्यते ।
अष्टादश पुराणन्ति पुराणज्ञाः प्रचक्षते ।।
ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा ।
तथान्यं नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम् ।।
आग्नेयमष्टमं चैव भविष्यन्नवमं स्मृतम् ।।
दशमं ब्रह्मवैवर्त्तं लैङ्गमेकादशं स्मृतम् ।।
वाराहं द्वादशं चैव स्कान्दं चात्र त्रयोदशम् ।
चतुर्दशं वामनं व कौर्मं पञ्चदशं तथा ।।
मात्स्यं च गारुडं चैव ब्रह्माण्डं च ततः परम् ।।
महापुराणान्येतानि अष्टादश महामुने ।।
विष्णु पुराण ३/६/२०-२४

श्रीमद्भागवत पुराण में अपने द्वादश स्कन्ध के तेरहवें अध्याय में विष्णु पुराण में निर्दिष्ट क्रम का अनुवर्तन किया है।[1] मत्स्य पुराण[2], अग्नि पुराण[3], नारदीय पुराण[4], और देवी भागवत पुराण[5] में प्राय: इन्हीं पुराणों की अष्टादश पुराणों के अन्तर्गत परिगणना की गई है। अष्टादश पुराणों की सूची में जो क्रम बतलाया गया है वह सर्वसम्मत न होने पर भी बहुसम्मत तो अवश्य- मेव है।

पुराणों का विभाजन :

मत्स्य पुराण के अनुसार पुराणों का विभाजन तीन प्रकार से किया गया है—सात्विक, राजस एवं तामस। सात्विक पुराणों में भगवान विष्णु का माहात्म्य विशेष रूप से वर्णित है। राजस पुराणों में सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा का तथा अग्नि का माहात्म्य विशिष्ट रूप से चर्चित है। तामस पुराणों में भगवान् शिव का वैशिष्टय प्रतिपादित किया गया है। इन तीन प्रकारों से पृथक् भिन्न एक संकीर्ण भेद भी है जिसमें सरस्वती तथा पितृगणों का माहात्म्य अधिकतर वर्तमान है।[6] पद्म पुराण के अनुसार मत्स्य, कूर्म, लिङ्ग, शिव, स्कन्द एवं

---

१. श्रीमद्भागवत पुराण, १२/१३/५-९

२. मत्स्य पुराण, अध्याय ५३

३. अग्नि पुराण, अ० २७२

४. नारदीय पुराण

५. देवी भागवत १/३

६. सात्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः।
राजसेषु च माहात्यमधिक ब्रह्मणों विदुः॥
तद्वदग्नेर्माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च
संकीर्णेषु सरस्वत्याः पितृणां च निताद्यते॥
मत्स्य अ० ५३

अग्नि—ये छः पुराण तामस हैं। ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन एवं ब्राह्म—ये छः राजस पुराण हैं तथा विष्णु, नारद, भागवत, गरुड़, पद्म तथा वाराह—ये छः सात्विक पुराण माने गए हैं। यही वर्गीकरण विष्णु को सात्विक देव मानकर किया है। यहां तामस, राजस तथा सात्विक पुराणों की समान संख्या निर्धारित है।[1] गरुड़ पुराण सात्विक पुराणों का ही विभाजन तीन श्रेणी में करता है। (१) सत्वाधम (२) सात्विक मध्यम तथा (३) सात्विक उत्तम। सत्वाधम में मत्स्य तथा कूर्म रखे गए हैं। सात्विक मध्यम में वायु पुराण तथा सात्विक उत्तम में विष्णु, भागवत तथा गरुड़।[2]

उपर्युक्त मत्स्य, पद्म तथा गरूण पुराणों के अष्टादश पुराणों के विभाजन का आधार देवता-विशेष का प्राधान्य है अर्थात् जिन पुराणों में विष्णु के माहात्म्य का प्राधान्य रूप से वर्णन किया गया है उसे सात्विक की संज्ञा प्रदान की है जिनमें ब्रह्मा की संस्तुति का वैशिष्ट्य है उसे राजस तथा भगवान शिव के सर्वोपरि विशेषता की चर्चा करने वाले पुराणों को तामस के नाम से अभिहित किया है। लेकिन देवता विशेष की महिमा के प्रतिपादन को आधार मानकर यह पुराणों का वर्गीकरण सात्विक, राजस तथा तामस के अन्तर्गत करना वैज्ञानिक नहीं प्रतीत होता। गरुड़ पुराण के अनुसार विष्णु-माहात्म्य प्रकाशित करने के कारण कूर्म पराण की परिगणना सात्विक में की गई है परन्तु कूर्म पुराण की ब्राह्मी सहिता में शिव-शिवा का माहात्म्य वर्णित है। इसके अतिरिक्त इस पुराण में महेश्वर को परम तत्व स्वीकृत किया गया है।

---

१. मत्स्यं कौर्मं तथा लैङ्ग शैवं स्कान्दं तथैवच।
आग्नेयं च षडतानि तामसानि निबोध मे॥
वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभम्।
गारुड़ं च तथा पादमं वाराहं शुभदर्शने॥
ब्रह्माण्डं ब्रह्मवैवर्त्तं मार्कण्डेयं तथैव च।
भविष्यं वामनं ब्राह्मनं राजसानि निबोध में॥
परम् पुराण, उत्तर खण्ड २६३/८१-८४

२. सत्वाधमे मात्स्य कौर्मं तदाहुर्वायुं चाहु: सात्विकं मध्पनं च।
विष्णोः पुराणं भागवतं पुराणं सत्वोत्तमे गरुडं प्राहुरार्या:॥
गरुड़ पुराण।

शक्ति का भी इस पुराण में विशिष्ट वर्णन है। श्री कृष्ण, शिव की स्तुति करते हैं। उपर्युक्त तथ्यों के पर्यालोचन में कूर्म पुराण को विष्णु की महिमा प्रतिपादन के प्राधान्य के कारण सात्विक पुराण मानना उचित नहीं प्रतीत होता। उसी प्रकार वायु पुराण का स्वरूप शिव-माहात्म्य-प्रधान है। इसी कारण स्कन्द्र पुराण में इसे शैव नाम से अभिहित किया गया, लेकिन इस पुराण को भी सात्विक पुराण माना गया है। पुराण साहित्य के सिंहावलोकन से स्पष्ट हो जाता है कि सात्विक पुराणों में शिव की महिमा का गायन किया है, राजसिक में भी विष्णु तथा उनके अवतारों के माहात्म्य का प्रतिपादन किया है। अतः देव विशेष के प्राधान्य को मापदण्ड बनाकर पुराण साहित्य में जो पुराणों का सात्विक, राजस तथा तामस विभाजन किया है यह सर्वथा समीचीन नहीं प्रतीत होता।

पौराणिक साहित्य के आधुनिक समालोचक विद्वानों ने पुराणों में वर्णित विषयों का पूर्ण और आलोचनात्मक परीक्षण करने के पश्चात् विषय-विभाग के अनुसार अष्टादश पुराणों के छः वर्ग निर्धारित किए हैं—इन विद्वानों में महामहोपाध्याय डा० हरप्रसाद शास्त्री का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने पुराणों के प्रतिपादित विषयों को आधार मानकर एक नवीन वर्गीकरण किया है। उन्होंने गरुड़, अग्नि, नारदीय पुराणों को प्रथम श्रेणी में रखा है। पौराणिक सामान्य विषयों के अतिरिक्त मानवीय समाज के समस्त उपयोगी विद्याओं, आध्यात्मिक तथा भौतिक विद्याओं—व्याकरण, छन्द, अलंकार, ज्योतिष, संगीत, आयुर्वेद—का सार अंश इन पुराणों में एकत्र कर दिया गया है। आधुनिक युग प्रकाशित विश्व कोष के सदृश इन पुराणों का संकलनात्मक वैशिष्ट्य है। द्वितीय श्रेणी में पद्म पुराण, स्कन्द तथा भविष्य की परिगणना की गई जिसका प्रधान आधार यह है कि इन पुराणों में प्रमुख रूप से तीर्थों तथा व्रतों का वर्णन किया गया है। इन विषयों की मुख्यता के कारण इन तीन पुराणों को इस श्रेणी में रखा गया है अन्यथा सामान्य रूप से इन विषयों की चर्चा अन्यत्र अन्य पुराणों में भी की गई है। डा० शास्त्री ने ब्रह्म, भागवत तथा ब्रह्मवैवर्त्त इन तीन पुराणों को तृतीय श्रेणी में स्थान दिया है। इस श्रेणी विभाजन का मापदण्ड यह है कि इन तीन पुराणों के दो-दो संस्करण हो चुके हैं जिसमें इनका मूल भाग वही है जो उनका केन्द्रस्थ भाग है। इन दो बार के संस्करणों में बहुत कुछ जोड़ा गया है। चतुर्थ श्रेणी ऐतिहासिक पुराणों की है। इसमें वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराण का समावेश है। इन दो पुराणों

में विशेष रूप से कलियुग के राजाओं का वर्णन किया गया है। इन दो पुराणों में अत्यधिक साम्य है। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् डा० किर्फेल ने अपनी पुस्तक "पुराण पंच लक्षण' में वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराण को एक मूलभूत पुराण से विनिःसृत बतलाया है। दोनों पुराणों में इतनी अधिक साम्यता है कि डा० किर्फेल का कथन है कि--किसी प्राचीन युग में दोनों एक ही पुराण थे। कालान्तर में इन पुराणों को पृथक्-पृथक् कर दिया गया। सम्भवतः यह घटना कहाकवि वाणभट्ट के पूर्व अर्थात् ईसा के सप्तम शताब्दी से पूर्व की है, क्योंकि महाकवि वाण ने अपने "हर्षचरितम्" आख्यायिका के तृतीय उच्छवास में यह उल्लेख किया कि उनके प्रीतिकूट नामक ग्राम में वायु पुराण का वाचन होता था।[1] पंचम श्रेणी में लिंग, वामन तथा मार्कण्डेय पुराण की गणना की गई है। इनमें विशेष रूप से भारतीय विभिन्न सम्प्रदायों के धार्मिक कृत्यों तथा व्रतों का वर्णन किया गया है। इसीलिए डा० शास्त्री ने इन्हें साम्प्रदायिक पुराण के नाम से अभिहित किया है। लिंग पुराण—जैसा कि इसके नाम से स्वतः स्पष्ट होता है--भगवान शिव के प्रतीक लिंग की पूजा की विधि का वर्णन किया है। वामन पुराण भी शैव सम्प्रदाय को एक समादृत स्थान प्रदान करता है और उस सम्प्रदाय का विशद विवरण प्रस्तुत करता है। मार्कण्डेय पुराण के माहात्म्य को सर्वोपरि स्थान प्रदान करता है। अन्तिम षष्ठ श्रेणी

---

१. ···मुखसंनिहितसरस्वतीनूपुररवैरिव गमकैर्मधुरेराक्षियन्
मनांसि श्रोतृणां गीत्या पवमानप्रोक्तं पुराणं पपाठ।

हर्षचरित—तृतीय उच्छ्वास

महाकवि बाणभट्ट विशेषतः वायु पुराण से परिचित थे। उनकी दोनों गद्यात्मक कृतियों—कादम्बरी तथा हर्षचरित--में पुराण का उल्लेख विशेष रूप से प्राप्त होता है।

(क) कादम्बरी के पूर्व भाग में जाबालि मुनि के आश्रम के वर्णन प्रसंग में बाणभट्ट ने बड़े मनोरम रूप से परिसंख्यालंकार का प्रयोग किया है—

"पुराणेषु वायुप्रलयितम्"

तारापीड़ के प्रासाद वर्णन के समय में—पुराणमिव यथाविभागावस्थापित सकलभुवनकोशम्।

में वाराह, कूर्म तथा मत्स्य पुराण की गणना है। यद्यपि इन तीनों पुराणों का नामकरण भगवान विष्णु के तीन अवतारों से सम्बद्ध है तथापि यह सोचना समीचीन नहीं है कि इन पुराणों ने विष्णु के अवतारों की समग्र रूप से चर्चा की है। इन पुराणों की यह विशेषता है कि अत्यधिक संशोधन होते रहने से इन पुराणों का मूल पाठ रह ही नहीं गया है। इस वर्गीकरण को भी सामान्य स्थान देना समुचित है, क्योंकि वस्तुस्थिति यह है कि पुराणों का वर्गीकरण न यथार्थत: सामान्य रूप से है और न हो सकता है। 'भिन्नरुचिर्हिलोक:'।

यद्यपि महामहोपाध्याय डॉ० हर प्रसाद शास्त्री का यह अष्टादश पुराणों का वर्गीकरण नूतनता से ओत-प्रोत है और इसकी अपनी पृथक् मौलिकता है, तथापि पौराणिक साहित्य के आधुनिक समालोचक इस साहित्य की समीक्षा हेतु उपर्युक्त चर्चित मत्स्य तथा पद्म पुराण के पुराणों के विभाजन को माननीय स्थान प्रदान करते हैं जिसके अनुसार—प्रथम सात्विक वर्ग में—विष्णु, नारदीय, भागवत, गरुड़, पद्म एवं वाराह की गणना की गई, क्योंकि इन छ: पुराणों में पौराणिक सामान्य विषयों के अतिरिक्त भगवान् विष्णु के माहात्म्य, भक्ति एवं सर्वोपरि वैशिष्ट्य का गणनात्मक वर्णन किया गया है। द्वितीय राजस वर्ग में—ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन एवं ब्रह्म पुराण हैं जिनमें विशेष रूप से ब्रह्मा का वर्णन है एवं तृतीय तामस वर्ग में मत्स्य, कूर्म, लिङ्ग, शिव, स्कन्द और अग्नि पुराण हैं जिनमें भगवान् शिव के माहात्म्य, भक्ति एवं सर्वातिशायी गुणों की चर्चा है। अत: हमने भी शोध प्रबन्ध के लिए आधुनिक प्राच्य तथा पाश्चात्य व संस्कृत वाङ्मय के विद्वान् समीक्षकों द्वारा मान्य वर्गीकरण को मानकर वैष्णव पुराणों के अन्तर्गत विष्णु, नारद अथवा नारदीय, श्रीमद्‌भागवत, गरुड़, पद्म एवं वाराह पुराणों को माना है तथा इसी के अनुसार अपने अभीष्ट विषयों का गवेषणात्मक समीक्षण को प्रस्तुत करने का प्रथम लघुतम प्रयास किया है।

पुराणों के वर्गीकरण के उपरान्त पौराणिक साहित्य के सामान्य परिचय हेतु इस साहित्य के सामान्य प्रतिपाद्य विषयों की चर्चा सर्वथा युक्ति संगत प्रतीत होती है। अत: इस अवन्तरीय परिच्छेद में हम पौराणिक साहित्य के सामान्य विषयों को प्रस्तुत करते हैं। पुराण के साथ पंच लक्षण का सम्बन्ध बड़ा घनिष्ठ तथा प्राचीन है। संस्कृत वाङ्मय के प्रामाणिक शब्दकोष अमर कोश में पंच लक्षणम् यह शब्द बिना किसी व्याख्या के ही प्रयुक्त किया गया है—

"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंश्चानु चरितं चेति पुराणं पंच लक्षणम् ॥

यह उपर्युक्त श्लोक विष्णु पुराण[1], मार्कण्डेय[2], अग्नि[3], भविष्य[4], ब्रह्मवैवर्त्त[5], वाराह[6], स्कन्द[7], कूर्म[8], मत्स्य[9], गरुड़[10], ब्रह्माण्ड[11] एवं शिव पुराणों[12] में सर्वत्र किंचित पाठ भेद के साथ पाया जाता है। पुराणों में इस श्लोक की उपलब्धि तथा पुराण के साथ पंच लक्षणम् का पारिभाषिक प्रयोग उसकी सार्वभौम लोकप्रियता को संकेत करती है। पुराण की सर्वत्र मान्य परम्परा के अनुसार ये ही पांच विषय वर्णनीय माने गए हैं। संक्षेप में इनका वर्णन इस प्रकार है—

(१) सर्ग :

जगत् की तथा उसके नाना पदार्थों की उत्पत्ति सृष्टि अथवा सर्ग कहलाती है। श्रीमद्भागवतकार ने सर्ग शब्द की व्युत्पत्तिजनक व्याख्या भागवत के द्वादश स्कन्द में इस प्रकार की है। सर्वप्रथम सत्व, रज और तम ये तीनों गुण क्षुब्ध होकर मूल प्रकृति में विलीन हो जाते हैं। तदनन्तर महत् तत्त्व की उत्पत्ति होती है। तत्पश्चात् त्रिविध तामस, राजस एवं सात्विक अहंकार की उत्पत्ति महत् तत्व से होती है। त्रिविध अहंकार से भूत मात्र अर्थात् पंचतन्मात्राएं,

---

१. विष्णु पुराण ३/५/२४
२. मार्कण्डेय पुराण, १३४/१३
३. अग्नि पुराण, १/१४
४. भविष्य पुराण, २/५
५. ब्रह्मवैवर्त्त पुराण, १३३/६
६. बाराह पुराण, २/४
७. स्कन्द पुराण, प्रभास खण्ड, २/८४
८. कूर्म पुराण, पूर्वार्ध, १/१२
९. मत्स्य पुराण, ५३/६४
१०. गरुड़ पुराण, आचार खण्ड, २/२८
११. ब्रह्माण्ड पुराण प्रक्रियापाद, १/३८
१२. शिव पुराण, वायवीय संहिता, १/४१

इन्द्रियगण तथा पांचभूतों का आविर्भाव होता है । इसी उत्पत्ति के विकास-क्रम का अभिधान सर्ग है ।[१]

(२) प्रतिसर्ग :

सर्ग से विपरीत प्रतिसर्ग कहलाता है । सृष्टि का प्रलय स्वभावतः सम्पन्न होता है । ब्रह्माण्ड का प्रलय ही प्रतिसर्ग है । विष्णु पुराण का कथन है कि काल रूप भगवान् अनादि हैं, इनका अन्त नहीं है अतः सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय भी प्रवाह रूप से निरन्तर होते रहते हैं ।[२] श्रीमद्भागवत में प्रतिसर्ग शब्द के स्थान पर संस्था शब्द का प्रयोग हुआ है । संस्था प्रलय के लिए व्यवहृत हुआ है । संस्था चार प्रकार की होती हैं—नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य तथा आत्यान्तिक ।[३]

(३) वंश :

सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने जितने राजाओं की सृष्टि की है उन राजाओं के भूत, वर्तमान तथा भविष्यकालीन सन्तान-परम्परा को वंश कहते हैं । ऐसा श्रीमद्भागवतकार का मत है ।[४] इस स्थान प्रर यह निर्देश करना सर्वथा समुचित होता है कि यहां वंश शब्द केवल राजाओं से सम्बद्ध नहीं प्रत्युत् ऋषियों के साथ इसे जोड़ना कोई अनुचित नहीं है । प्राप्य भारतीय पौराणिक विद्वानों

---

१. अव्याकृतगुणक्षोभात् महतस्त्रिवृतो हमः ।
भूतमात्रेन्द्रियार्थानां सम्भवः सर्ग उच्यते ।।

श्रीमद्भाग० १२/७/११

२. अनादिर्भगवान् कालो नान्तोऽस्य द्विज विद्यते ।
अव्युच्छिन्नास्ततस्त्वेते सर्गस्थितत्यन्त संयमाः ।।

विष्णु पु० १/२/२५

३. नैमित्तिकः प्राकृतिको नित्य आत्यन्तिको तयः ।
संस्थेति कविभिः प्रोक्ता चतुर्धाऽस्य स्वभावतः ।।

श्रीमद्भाग० १२/७/१७

४. राजां ब्रह्मप्रसूतानां वंशस्येकालिकोऽन्वयः ।

वही

का मत है कि पुराण साहित्य का एक प्रमुख विषय राजाओं तथा ऋषियों के वंश का वर्णन करना भी है।

(४) मन्वन्तर :

पौराणिक साहित्य में मन्वन्तर शब्द सृष्टि के विभिन्न कालों का मापक तथा द्योतक शब्द है। पुराणों में १४ मन्वन्तरों की चर्चा है। प्रत्येक मन्वन्तर का अधिपति एक विशिष्ट मनु हुआ करता है जिसके सहयोगी पांच और हैं। मनु देवता, मनु पुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि और भगवान् अंशावतार---इन छः विशिष्टताओं से युक्त समय को मन्वन्तर कहा गया है।[1]

(५) वंश्यानुचरित :

ब्रह्मा के द्वारा प्रसूत राजाओं तथा ऋषियों के वंशधरों और मूल पुराणों का विवरण जिसमें प्रस्तुत किया गया है उसे वंश्याचरित कहते हैं। कालान्तर में पुराणों के साथ धर्म का भी समन्वय हो गया है। कौटिल्यीय अर्थशास्त्र की व्याख्या जयमंगला ने पुराणं पंचलक्षणम् को इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि सृष्टि, प्रवृत्ति, संहार, धर्म, मोक्ष प्रयोजनों से युक्त विविध ब्रह्मर्षियों के द्वारा पांच लक्षणों से युक्त पुराण साहित्य लिपिबद्ध किया गया।[2] श्रीमद्भागवतकार ने भी मन्वन्तराणि सद्धर्मः कह धर्म का समावेश मन्वन्तर के अन्तर्गत किया जो पौराणिक साहित्य का एक प्रधान प्रतिपाद्य है। पौराणिक धारा, वैदिक धारा से पृथक् थी। इस धारा के प्रसार-प्रचार तथा सम्वर्धन का अधिकार सूतों को था। सूत का कार्य पुराणों का वाचन और व्याख्यान था। सूतों के कार्य के सम्बन्ध में वायु पुराण कहता है कि देवताओं, ऋषियों अमित तेज सम्पन्न राजाओं का तथा लोक प्रसिद्ध महर्षियों के वंशों को धारण करना ही सूत का स्वधर्म था जो पुरातन सज्जनों के द्वारा दृष्ट या उपादिष्ट था।

---

१. मन्वन्तरं मनुदेवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः।
ऋषयोऽशावताराश्च हरेः षड्विधमुध्यते॥
श्रीमद् भाग० १२/७/१५

२. सृष्टि प्रवृत्ति-संहार धर्म मोक्ष प्रयोजनम्।
ब्रह्मभिर्विविधैः प्रोक्तं पुराणं पंचलक्षणम्॥
कौटिल्य अर्थ० १/५

प्रत्येक पुराण का कथन सूत करते हैं। इस वायु पुराण के सूत स्वधर्म निरूपण से यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि पौराणिक साहित्य का एक प्रतिपाद्य विषय धर्म समन्वित देवों, ऋषियों एवं राजाओं ने इतिहास का वर्णन था।[1] श्रीमद्-भागवतकार पुराण लक्षण निरूपित करते हुए लिखते हैं कि पंच लक्षणों से युक्त अल्प अथवा लघु पुराण हैं और दस लक्षणों से युक्त महत् अथवा महा-पुराण होते हैं। उन्होंने सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, अन्तराणि, वंश, वंशानुचरित, संस्था, हेतु तथा उपाश्रय—इन दस का वर्णन महापुराणों का प्रतिपाद्य वतलाया है।[2] विसर्ग—प्रारब्ध कर्मों के अनुसार शुभाशुभ वासनाओं के प्राधान्य के कारण पुरुष (परमेश्वर) के अनुग्रह से ब्रह्मा के द्वारा देहात्मक उपाधि से विशिष्ट जीव की सृष्टि, विसर्ग कहलाती है। जैसे एक बीज से अपार बीज की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार एक जीव से दूसरे जीव की सृष्टि होती है। इसी विविधा सृष्टि न कि सृष्टि विपरीत प्रलय को विसर्ग की संज्ञा भागवतकार ने दी है।[3] मानव अपने जीवन निर्वाह हेतु जिन वस्तुओं का

---

१. स्वधर्म एष सूतस्प सद्भिर्दृष्टः पुरातनैः।
देवतानाभृषीयां च राजां चाभित तेजसाम्॥
वंशानां धारणं कार्यं श्रुतानां च महात्मनाम्।
इतिहासपुराणेषु दिष्टा ये ब्रह्मवादिभिः॥३२
न हि वेदेष्वधिकारः काश्चिद् सूतस्य दृश्यते।
वायु पुराण अध्याय १

२. पुराण लक्षण ब्रह्मन् ब्रह्मर्षिभिर्निरूपितम्।
श्रुणुष्व ब्रद्धिमाश्रित्य वेदशास्त्रानुसारतः॥
सर्गोऽस्याय विसर्गश्च वृत्ती रक्षान्तराणि च।
वंशो वंशानुचरितं संस्था हेतुश्याश्रयः॥
दशभिर्तषणर्युक्त पुराणं तदविदो विदुः।
कथित् पंचविधं ब्रह्मन् महदल्प व्यवस्थया॥
भाग० १२/७/८-१०

३. पुरुषानुगृहीतानामेतेषां वासनामयः।
विसर्गोऽयं समाहारो बीजाद् बीजं चराचरम्॥
भाग० १२/७/१२

व्यवहार करता है वही उसकी वृत्ति है। चर की वृत्ति अचर पदार्थ हैं। यह वृत्ति दो प्रकार की होती है। प्रथम कामनापीन वृत्ति है जिसे जीव अपने स्वभाव वशात् कामनानुसार निर्धारित करता है और द्वितीय शास्त्र निर्दिष्ट वृत्ति जिसे जीव शास्त्र के आदेशानुसार ग्रहण करता है। मानव जीवन का संरक्षण तथा परिपोषण दोनों वृत्ति का प्रधान उद्देश्य होता है।[1]

अच्युत परब्रह्म युग-युग में पशु-पक्षी, मनुष्य, ऋषि, देवता आदि के रूप में अवतार लेता है। अवतार लेकर वह अनेक लीलाएं करता है। वेदत्रयी की रक्षा और त्रयी के विरोधियों का संहार अच्युत अपने अवतार के द्वारा करता है। अवतार का उद्देश्य विश्व की रक्षा है। अतः इसे रक्षा का अभिधान प्रदान किया गया है। अच्युत के अवतार का उद्देश्य केवल वेदत्रयी की रक्षा और त्रयी विद्वेषकों का विनाश ही मात्र नहीं प्रत्युत लीला-विलास भी है। यद्यपि विवेचना विषयान्तर हो जाती है तथापि विचारणीय होने के कारण हम यह यहां संकेत कर देना समीचीन समझते हैं कि प्रभु अवतार का उद्देश्य अन्य प्रयोजनों के अतिरिक्त उनका लीला विलास का विस्तार भी है जिसका चिन्तन तथा कीर्तन कर जीव तापत्तय से मुक्ति प्राप्त करता है। ऐसा श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में स्पष्ट निर्देश किया गया है।[2]

हेतु :

हेतु; जीव का अभिधान है क्योंकि इस सृष्टि के सर्ग और प्रतिसर्ग में जीव के अदृष्ट कर्म ही बीज रूपी हेतु हैं। अतः अपने अदृष्ट के कारण जीव ही हेतु कहलाता है।[3]

---

१. वृत्तिर्भूतानि भूतानां चराणामचरापि च।
कृता स्वेनः नृणां तत्र कामाच्चोदनयापि वा॥
भाग० १३

२. नृपां निःश्रेय सार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः॥
वही १०/२९/१४

३. हेतुर्जीवोऽस्य सर्गादेरविद्याकर्मकारकः।
तं चानुशयिनं प्राहुर्व्याकृतमुताघरे॥
वही १२/७/१८

सृष्टि से प्रलय पर्यन्त जन्म से मृत्यु तक विश्व ब्रह्माण्ड की तथा जीव की जितनी नाना विशेष अवस्थाएं होती हैं उन सब रूपों में परब्रह्म प्रतीत होता है और वह उनसे पृथक् भी है। इसीलिए उसे युतायुत कहा गया है और यही अधिष्ठान और साक्षी के रूप में प्रतिभासित होने के कारण अपाश्रय कहलाता है। अतः ब्रह्म का द्योतक महनीय अभिधान अपाश्रय है। भागवतकार के अनुसार यही अपाश्रय अन्तिम ध्येय तत्व है। इसीकी विशुद्धि के लिए नव अन्य पौराणिक लक्षणों का उपादान किया गया है।

"दशमस्य विशुद्धार्थ नवानामिह लक्षणम्"

वस्तुतः अष्टादश पुराणों का पर्यालोचन कर हम स्वतः निष्कर्ष पर पहुंच जाते हैं कि इस साहित्य के निर्माण का प्रधान प्रयोजन अथवा इसका प्रधान प्रतिपाद्य विषय यही है कि आत्मतत्व की उपलब्धि ही वास्तविक परम मानवीय ध्येय है। इसी ज्ञान की पुष्टि के लिए अन्य विषयों अथवा लक्षणों—पूर्व निर्दिष्ट पंच तथा नव-सर्ग, विसर्ग आदि का विवरण दिया गया है।

श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कन्ध के दशम अध्याय में भी पुराण साहित्य के प्रतिपाद्य विषय में चर्चा की गई है। यहां भी दस लक्षणों का संकेत किया है। यद्यपि इन दश लक्षणों का पूर्वोक्त द्वादश स्कन्धीय वर्णित लक्षणों से साम्य है तथापि नामतः भिन्नता दृष्टिगत होती है। ये दस लक्षण—सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, अति, मन्वन्तर, ईशानु कथा, निरोध मुक्ति तथा आश्रय हैं।[1]

भगवान की विजय का, दसकी सर्वश्रेष्ठता का, लोकाधिपत्य का सूचक तत्व ही स्थिति नाम से श्रीमद्भागवत में अभिहित है। "स्थिति---वैकुण्ठ-विजयः" भगवान् वैकुण्ठ के विजय का नाम स्थिति या स्थान है। सर्ग तथा विसर्ग दोनों लक्षणों के द्वारा विश्व ब्रह्माण्ड का वर्णन किया जाता है जो अपनी नियमित मर्यादा के अन्तर्गत अपने अभ्युदय को प्राप्त कर सकते हैं। संख्यातीत ब्रह्माण्ड है उनका जनक, संस्थापक, मर्यादा पालक भगवान् हैं। यही स्थिति

---

१. अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणभूतयः।
मन्वन्तरे ज्ञानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः॥

भाग० २/१०/१

वैकुण्ठ विजय के द्वारा अभिहित है । भगवान् का अनुग्रह पोषण कहलाता है । ब्रह्माण्ड के भगवान् के द्वारा नियमन का अवलोकन होने पर जीव को उनकी कृपा का साक्षात्कार होता है । यही भगवान् का पोषण जीव को भगवदुन्मुख बनाने में एक प्रेरक तत्व है । जीव की शुभाशुभ कर्म वासना, अतियां हैं—यही अवरोधक प्रतिपक्षी तत्व हैं जो जीव को भगवान् के अनुग्रह से लाभान्वित होने से रोकती हैं । पौराणिक कालमापक मन्वन्तर सद्धर्म के प्रत्यक्षीकरण के साधक हैं । सर्ग तथा विसर्ग में प्रवाह नित्यता है निरन्तर अविच्छिन्न प्रवाह है । उसमें निमग्न जीव बिना ईश की कथाओं के अनुचिन्तन के उद्धृत नहीं हो सकता । आत्म तत्व का अपनी शक्तियों के साथ शयन सृष्टि का निरोध अर्थात् प्रलय है जिसे पंचलक्षण में प्रतिसर्ग के द्वारा निर्दिष्ट किया है ।[१]

मुक्ति :

जब जीव के अध्यासजन्य समस्त भ्रान्तियों की निवृत्ति हो जाती है, तब जीव अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है इसी अवस्था का नाम मुक्ति है—अर्थात् दुःखों के आत्यन्तिक विलयन । आश्रय उस विशिष्ट तत्व का अभिधान है जिससे सृष्टि तथा प्रलय प्रकाशित होते हैं । वही तत्व ब्रह्म अथवा परम ब्रह्म या परम तत्व कहलाता है । वही तत्व सबका अधिष्ठान या आश्रय है । उसका कोई अन्य आश्रय है ।[२]

ब्रह्माण्ड पुराण भी पौराणिक साहित्य के इन उपर्युक्त दस लक्षणों की चर्चा करता है । इसके अनुसार—सर्ग, विसर्ग, स्थिति, कर्म-वासना, मनुवार्ता, प्रलय, मोक्ष, हरि कीर्तन, ईश कथा, वंशानुचरित—ये दश लक्षण पुराण के लिए आवश्यकीय हैं ।[३] इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्धीय, द्वितीय स्कन्धीय एवं ब्रह्माण्ड पुराणीय दस लक्षणों

---

१. स्थिति वैकुण्ठविजयः पोषणं तदनुग्रहः ।
मन्वन्तराणि सद्धर्म अतयः कर्म वासनाः ॥
अवतारानुचरितं

२. भागवत पुराण, २/१०/८-९

३. ब्रह्माण्ड पुराण

में सर्वातिशायी साम्य है। उपर्युक्त दश लक्षणों की पंच लक्षणों से तुलनात्मक पर्यवेक्षण के उपरान्त तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि दस लक्षण, पंच लक्षणों का आवश्यकतानुसारी कालान्तरीय विस्तृति मात्र है। इनका तारतम्यात्मक परीक्षण करने पर श्रीमद्भागवतीय तथा ब्रह्माण्डीय—पुराणीय दस लक्षणों पंच लक्षणी का ही विकसित तथा उपवृहित स्वरूप स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है।

पुराणों का ही नहीं प्रत्युत समस्त वैदिक पौराणिक संस्कृत का प्रधान प्रतिपाद्य विषय परम तत्व अर्थात् भगवतत्व है। विशेष रूप से तो पौराणिक साहित्य का मूलतः प्राधान्य मूर्धन्य यही विषय है। विषादान्तर की चर्चा उस तत्व की विशुद्धि अर्थात् यथार्थ रूपेण निश्चय के लिए है जैसा कि श्रीमद्-भागवतकार का स्पष्ट निर्देश है —

"दशमस्य विशुद्धयर्थं नवानामिह लक्षणम्"

पुराणों में पंच लक्षणों तथा दश लक्षणों के अतिरिक्त अन्य विषयों का भी विशद रूप से वर्णन किया है। कुछ पुराणों में तो समस्त भारतीय ज्ञान-विज्ञान का भण्डार भर दिया गया है। इस दृष्टिकोण से अग्नि पुराण, पद्म पुराण, नारदीय पुराण का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसी वर्णन की विशदता को देखकर समीक्षकों ने तो यहां तक कह दिया है कि पुराण भारतीय संस्कृतिक चेतना के विश्वकोष हैं। मैं सप्रमाण सिद्ध कर सकता हूं कि ये समस्त विषय केवल उस परम तत्व के निरूपण को केन्द्र मानकर आवृंहित किए हैं। स्थानाभाव तथा अप्रासंगिक होने के कारण मैं विषय-विस्तृति से विरत हो जाता हूं। श्रीमद्भागवतकार ने संकेत किया है कि वर्णाश्रम के अनुकूल आचरण विविधव्रतादि का पालन अध्ययन आदि से तो यश तथा श्री की उपलब्धि होती है लेकिन परम तत्व भगवान के गुणों, लीला विलास का अनुकीर्तन तो श्रीकृष्ण के चरणों की अविस्मृति प्रदान करता है।[1]

---

१. अविस्मृतिः कृष्ण पदार विन्दयोः
क्षिणोत्यमद्रापि शयं तनोति च।
सत्वस्य शुद्धि परमात्यभक्तिं
ज्ञानं च विज्ञान विरागमुक्तम्॥
भाग० १२/१२/५४

द्वितीय अध्याय

वैष्णव पुराणों का संक्षिप्त परिचय

पौराणिक साहित्य के सामान्य परिचय के बाद वैष्णव पुराणों की साधारण-परिचयात्मक अवगति सर्वथा युक्ति संगत है विशेष रूप से इस परिप्रेक्ष्य में जबकि इस शोध-प्रबन्ध का शीर्षकात्मक विवेचन वैष्णव पुराणों से आबद्ध है। अतः इस अध्याय में हम वैष्णव पुराणों का संक्षिप्त परिचयदायक विवरण प्रस्तुत करते हैं।

प्रथम अध्याय में पुराणों के वर्गीकरण की चर्चा की गई है और पद्म पुराण के विभाजन को ही सर्वमान्य मान्यता आधुनिक पुराणविदों में प्राप्त है। अतः हम भी उसी को आधार मानकर विवेचन प्रारम्भ कर रहे हैं। पद्म पुराण के अनुसार सात्विक पुराण ही वैष्णव पुराण है क्योंकि उनमें विशेष रूप से पौराणिक अन्य विषयों के अतिरिक्त भगवान् विष्णु के माहात्म्य तथा सर्वोपरि वैशिष्टय का प्रतिपादन किया है। विष्णु, नारद, भागवत, गरुड़, पद्म तथा वाराह—ये ही छः पुराण सात्विक वैष्णव पुराणों में परिगणित हैं।

विष्णु पुराण :

पुराण साहित्य में विष्णु पुराण का गौरव सातिशय महनीय है। विष्णु पुराण अष्टादश प्राचीन पुराणों में अन्यतम है तथा वैष्णवों पुराणों में निर्विवाद रूप से प्राचीनतम तथा प्रामाणिक है। इस पुराण की दूसरी विशेषता यह है कि इसमें विष्णु तत्व की दार्शनिक मीमांसा बड़े प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत की गई है। यह पुराण वैष्णव-दर्शन का मूल आलम्बन है। इसी कारण प्रस्तुत पुराण मध्ययुगीन वैष्णव सम्प्रदायों का उपजीव्य ग्रन्थ बन गया था। श्रीरामानुजाचार्य, श्रीमध्वाचार्य एवं श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने-अपने विशिष्ट मतों का आधार इसी पुराण में निर्दिष्ट तथ्यों को प्रमाण रूप से स्वीकृत किया है। नारदीय पुराण के अनुसार इस पुराण में २४ सहस्त्र श्लोक हैं।[1]

---

१. नारदीय पुराण

वल्लालसेन के अनुसार इसमें २३ सहस्त्र श्लोक हैं। इस पुराण की व्याख्यात्मक टीका अनेक आचार्यों ने की है जिनमें श्रीधर स्वामी, विष्णुचित्त तथा इस रत्नगर्भ भट्टाचार्य का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन टीकाकारों ने भी इस पुराण के श्लोक संख्या का संकेत किया है। यहां यह निर्देश करना अप्रासङ्गिक नहीं होगा कि इन विभिन्न टीकाकारों की माननीय टीकाएं भी इस तथ्य का स्पष्ट प्रमाण है कि यह पुराण पौराणिक साहित्य में एक महनीय गौरव से विभूषित है। परन्तु आज इस पुराण का जो संस्करण उपलब्ध है इसमें छः सहस्र श्लोक हैं। यह पुराण छः भागों में विभक्त है। प्रत्येक भाग अंश कहलाता है। इस प्रकार छः अंश हैं तथा १२६ अध्याय हैं। इस पुराण के प्रवक्ता पाराशर हैं तथा श्रोता मैत्रेण हैं। पुराण-पंच लक्षणों का उपन्यास इसमें बड़ी सुन्दरता से किया है। प्रथम अंश के ११वें अध्याय से लेकर २०वें अध्याय तक अर्थात् दस अध्यायों में पुराण साहित्य के प्रधान विषय का वर्णन वड़े विस्तार से किया है। द्वितीय अंश का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय भौगोलिक वर्णन है जिसमें भूगोल का बड़ा ही साङ्गोपाङ्ग विवेचन प्रस्तुत किया गया है। तृतीय अंश में वर्णाश्रम धर्म सम्वन्धी कर्तव्यों का विशिष्ट वर्णन है। इस अंश की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इसके चौथे अध्याय से छठवें अध्याय तक अर्थात् तीन अध्यायों में वेद की विभिन्न शाखाओं का वर्णन है जिसका वैदिक वाङ्मय में विशेष महत्व है। चतुर्थ अंश वंशानुचरित पौराणिक लक्षण का प्रतिनिधित्व करता है। यह अंश विशेषतः ऐतिहासिक है। सोम वंश के अंतर्गत ययाति का चरित वर्णित है। यदु[1], दर्वस्[2], दुह्यू[3], अनु[4], पुरु[5]—इन पांच प्रसिद्ध क्षत्रिय वंशों का इस अंश में भिन्न-भिन्न अध्यायों में वर्णन किया गया है। पंचम अंश का प्रधान विषय भगवान् विष्णु के अवतार, श्रीकृष्ण का अलौकिक चरित वर्णन है। इस अंश के ३८ अध्यायों में वर्णित श्रीकृष्ण चरित वैष्णव साहित्य में एक अपना स्थान रखता है। वैष्णव-भक्तों का यह श्रीकृष्ण चरित प्राण तथा आलम्बन है। श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध

---

१. विष्णु पुराण, ४/११-१५
२. वही ४/१६
३. वही ४/१७
४. वही ४/१८
५. वही ४/१९

में वर्णित श्रीकृष्ण चरित के समान यहां पर भी कृष्ण चरित पूर्णतया चर्चित है परन्तु भागवत की अपेक्षा यह विस्तृति में न्यूण है। षष्ठ अंश में मात्र आठ अध्याय हैं जिसमें विष्णु भक्ति तथा विशेष रूप में प्रलय का वर्णन है जो पौराणिक पंच लक्षणों के प्रति सग्र का प्रतिनिधित्व करता है।

नारद या नारदीय पुराण :

यह पुराण तीन नामों से उपलब्ध होता है—नारद, नारदीय तथा बृहन्नारदीय पुराण। यह पुराण दो प्रधान भागों में विभक्त है—पूर्व भाग तथा उत्तर भाग। पूर्व भाग चार पादों में विभाजित है। इसी पूर्व भाग के प्रथम पाद—जिसमें ३८ अध्याय हैं—बृहन्नारदीय के नाम से मिलता है तथा शेष पूर्व भाग का तीन पाद तथा उत्तर भाग, नारदीय पुराण के नाम से। बृहन्नारदीय एक उप पुराण भी है लेकिन उल्लेखनीय यह है कि मूल नारदीय पुराण के पूर्वभागीय प्रथम पाद तथा इस उप पुराण के कोई विभेद नहीं हैं। कूर्म[१], गरुड़[२], देवी भागवत[३], बृहद्धर्म[४], इकाम्र[५] आदि पुराणों ने नारदीय पुराण को उपपुराण माना है किन्तु विष्णु[६], श्रीमद्भागवत[७], देवी भागवत[८], मत्स्य[९], मार्कण्डेय[१०], पद्म[११] एवं स्वयं नारदीय पुराण[१२] ने अपनी परिगणना अष्टादश महापुराणों में की है। अतः इसे महापुराण मानना युक्तिसंगत ही

---

१. कूर्म पुराण, १/१/१८
२. गरुड़ पुराण, १/२२७/१९
३. देवी भागवत, १/२५/२३/३/१४
४. बृह०, १/२५/२३
५. इकाम्र०, १/२०-२३
६. विष्णु० ३/६/२०-२४
७. भाग० १२/१३/३-८
८. देवी० १/३/२१
९. मत्स्य० ५३/२३
१०. मार्क० १३७/८-९
११. पद्म पुराण, ४/३, ६/२१९
१२. नारदीय पुराण, १/९२/२७

है । पूर्व भाग में १२५ अध्याय हैं तथा उत्तर भाग में ८२ अध्याय हैं । संपूर्ण श्लोकों की संख्या २५,००० है । सनक, सनन्दन, सनत्कुमार एवं सनातन— ये चार ब्रह्मपुत्र ऋषि इस पुराण के प्रवक्ता हैं तथा नारद जिज्ञासु प्रश्नकर्ता श्रोता हैं । पूर्व भाग का प्रथम पाद भगवान् विष्णु की संस्तुति, भक्ति एवं सर्वोपरि वैशिष्ट का गायन करता है । यह पाद "प्रवृत्ति धर्म के नाम से अभिहित किया है । इसमें ४१ अध्याय हैं । द्वितीय पाद ४२वें अध्याय से लेकर ६२वें अध्याय तक है । इन २१ अध्यायों का प्रतिपाद्य विषय मोक्ष धर्म है । इसी पाद के ४२वें, ४३वें अध्यायों में सृष्टि वर्णन बड़े विस्तार से किया गया है । द्वितीय पाद की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इसमें मोक्ष प्राप्ति के विविध साधनों का वर्णन किया है । इस पाद का प्रमुख विषय मोक्ष है और अन्य विषय उसी के प्रतिपादन हेतु वर्णित हैं । इस पाद में वेदाङ्ग साहित्य के छः अंगों का वर्णन पृथक्-पृथक् अध्यायों में किया गया है, लेकिन मोक्ष के समर्थन के लिए है ही । इस पाद के प्रवक्ता ऋषि सनन्दन ने यह सप्रमाण स्पष्ट कर दिया है कि सृष्टि स्थिति संहति के सम्पादक के रूप में परम् तत्व का ज्ञान ही मोक्ष के लिए अपरिहार्य तत्व है । पाश्चात्य पौराणिक विशेषज्ञों तथा उनके द्वारा प्रसारित मतों से प्रभावित भारतीय पुराणज्ञों को पुराणों में विभिन्न विषयों का वर्णन पृथक्-पृथक् परिप्रेक्ष में हास्यास्पद प्रतीत होता परन्तु यहां निर्देश कर देना हम सर्वथा समीचीन समझते हैं कि वे विद्वज्जन वास्तविकता से दूर हैं क्योंकि सर्ग, प्रतिसर्ग, मन्वन्तरादि, ज्ञान-विज्ञान इत्यादि विषयों का वर्णन अपना स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रखते प्रत्युत परम तत्व अथवा भगवद्तत्व का ज्ञान ही प्रधान उद्देश्य है जिस हेतु उन विषयों का वर्णन किया है । जिसका स्पष्ट उल्लेख श्रीमद्भागवतकार ने किया है ।

"दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम् ॥"

इस पाद के ऋषि ने उल्लेख किया है कि वेदाङ्गों के साथ वेद का पारङ्गत विद्वान अनुचीन कहलाता है और उसी के लिए, मात्र उसी के लिए मोक्ष का द्वार अपावृत्त होता है ।[1] इस पुराण के तृतीय पाद विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के सैद्धान्तिक तत्वों की विवेचना प्रस्तुत करता है ।

---

१. साङ्गन् वेदान् गुरोर्यस्तु समीधीते द्विजोत्तमः ।
सोऽनुचानः प्रभवति नान्यथा ग्रन्थकोतिभिः ॥

नारदीय पुराण १/१/१२

शैव, शाक्त तथा वैष्णव सम्प्रदायिक देवताओं की पूजा विधि का वर्णन पृथक्-पृथक् अध्याओं में इस पाद में किया गया है। विभिन्न सम्प्रदायों में प्रचलित तान्त्रिक विधियों तथा तत् सम्बद्ध मन्त्रों का उल्लेख किया है। ६३वें अध्याय से लेकर ९१वें अध्याय तक अर्थात् २८ अध्यायों में तन्त्र की सविस्तृत चर्चा की गई है। चतुर्थ पाद में ३४ अध्याय हैं। इस पाद की विशेषता है कि प्रस्तुत पाद के प्रारम्भिक अष्टादश अध्यायों में अष्टादश महापुराणों की विषयानुक्रमणी विस्तृत रूप से दी गई जो वर्तमान उपलब्ध पुराणों से अत्यधिक समता रखती हैं तथा ऐसा वर्णन अन्य पुराणों में उपलब्ध नहीं होता। तदनन्तर १५ अध्यायों में मासगत पवित्र १५ तिथियों के व्रत—उपवासादि का वर्णन किया है। अन्तिम अध्याय में नारदीय पुराण के माहात्म्य का वर्णन है। इस प्रस्तुत पुराण के उत्तर भाग में ८२ अध्याय हैं। इस भाग में वशिष्ठ और मान्धाता का उपाख्यान वर्णित है। एकादशी माहात्म्य का वर्णन है तथा इसी सन्दर्भ रुक्माङ्गद और उनकी धर्म पत्नी मोहिनी की कथा का वर्णन है। इस भाग के ३७ अध्यायों में धार्मिक तीर्थ स्थानों के माहात्म्य का वर्णन है जिनमें गया, काशी, पुरुषोत्तम क्षेत्र, प्रयाग, कुरुक्षेत्र, बद्रीक्षेत्र, प्रभास क्षेत्र, पुस्कर क्षेत्र, मथुरा का नाम उल्लेखनीय है।

श्रीमद्भागवत पुराण :

सात्विक वैष्णव पुराणों में श्रीमद्भागवत एक अद्वितीय महनीयता से विभूषित है। श्रीमद्भागवत पुराण पौराणिक साहित्य का एक अनुपम विलक्षण ग्रन्थ रत्न है। भागवतकार ने स्वयं कहा है कि यह ग्रन्थ निगम रूपी कल्पतरु का गलित पूर्ण परिपक्व अमृतमय फल है।[1] भाषा, प्रतिपाद्य विषय तथा तत्सम्बन्धी शैली सभी के दृष्टिकोण से यह पुराण, समस्त अष्टादश पुराणों में एक विशिष्ट पुराण है। इसी हेतु संस्कृत साहित्य में यह जनश्रुति सर्वप्रचलित तथा सर्वविदित है—'विद्यावतां भागवते परीक्षा'। अन्य सप्तदश पुराणों में इस पुराण की भाषा, शैली तथा दार्शनिक तथ्यों का प्रस्तुतीकरण इतना पाण्डित्यपूर्ण समन्वित है कि संस्कृत साहित्य के पाश्चात्य तथा

---

१. निगमकल्पतरोर्गलितं फलं, शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः॥
भागवत पुराण १/१/३

प्राच्य इतिहासविद् इस पुराण को अष्टादश पुराणों के अन्तर्गत परिगणित नहीं करते तथा इसके निर्माता तथा इसकी निर्मिति-तिथि के विषय में अनेकानेक मत प्रस्तुत करते हैं। बहुत से विद्वान ईसा की त्रयोदश शताब्दी में उत्पन्न बोप देव को भागवत का कर्ता मानते हैं। म० म० डा० पी० वी० काणे महोदय का कथन है कि मिताक्षरा, अपरार्क, कल्पतरु तथा स्मृति-चन्द्रिका जैसे प्राक्कालीन निबन्धों ने भागवत से उद्धरण नहीं दिया अतः इसे ईसा की नवम् शताब्दी से प्राचीन मानना समीचीन नहीं है। विषयानन्तर होने से हम इस विवादास्पद विषय से विरत पर इतना निवेदन कर देना चाहते हैं कि विद्वानों ने सप्रमाण सिद्ध कर दिया है कि बोप देव प्रभृति भागवत के निर्माता नहीं हो सकते। अष्टम शताब्दी के आचार्य शंकर के पितामह-गुरू श्री गौड-पादाचार्य ने "उत्तर गीता" की अपनी टीका में तदुक्तं भागवते कहकर जब भागवत के श्लोक[1] को उद्धृत किया है तब कैसे इस प्रस्तुत पुराण का रचनाकाल त्रयोदश अथवा षोडश शताब्दीकालीन माना जाए। इस पुराण की दूसरी उल्लेखनीय विशेषता है कि यह प्रस्थानत्रयी के सदृश वल्लभ सम्प्रदाय तथा चैतन्य सम्प्रदाय वैष्णव-आचार्यों का उपजीव्य ग्रन्थ है। अनेक वैष्णव सम्प्रदायों ने स्वमतानुसार भागवत की व्याख्यात्मक टीकाएं लिखी हैं जिनमें रामानुज सम्प्रदाय की "शुकयक्षीण", माध्व-सम्प्रदाय की "पद रत्नावली", निम्बार्क का सिद्धान्तप्रदीय", बल्लभ की "सुबोधिनी" तथा श्रीधर स्वामी की "श्रीधरी" टीकाएं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यह निर्देश अनावश्यक प्रतीत होता है कि भागवत की समस्त वैष्णव सम्प्रदायगत टीकाएं इस तथ्य का यथेष्ट प्रमाण हैं कि यह पुराण पौराणिक साहित्य में सर्वोपरि वैशिष्ट्य से मण्डित है। इसकी तीसरी विशेषता है कि यह पुराण भक्ति-शास्त्र का ग्रन्थ है तथा १२ स्कन्धों में विभक्त है और इसके श्लोकों की संख्या १८००० है। रोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा सूत प्रवक्ता है और ब्रह्मवादी शौनक ऋषि श्रोता

---

१. श्रेयः स्रुति भक्तिमुदस्य ते विभो,
क्लिश्यन्ति ये केवल बोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते,
नान्यद् यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥
भाग० १०

हैं। प्रथम स्कन्ध में भगवद् भक्ति का माहात्म्य, विष्णु के अवतारों, देवर्षि नारद का पूर्व चरित, श्रीकृष्ण का द्वारिका-गमन, महाराज परीक्षित की दिग्विजय तथा श्री शुकदेव जी का आगमन का वर्णन किया गया है। इसमें १९ अध्याय हैं। द्वितीय स्कन्ध से महाराज परीक्षित तथा शुकदेव का संवाद प्रारम्भ होता है। परीक्षित जिज्ञासु प्रश्नकर्ता हैं और शुकदेव ज्ञानी प्रवक्ता। इस स्कन्ध का प्रमुख विषय सृष्टि का वर्णन है। तृतीय स्कन्ध में महात्मा विदुर, भगवान् मैत्रेय के समीप जाते हैं तथा विदुर की जिज्ञासा व्यक्त करने पर मैत्रेय विराट की उत्पत्ति, सृष्टि-क्रम का वर्णन, मन्वन्तरादि काल-विभाग का वर्णन, हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष की कथा, कर्दप तथा देवहूति के संयोग से भगवान् कपिलदेव का अवतार आदि का वर्णन है। इस स्कन्ध का प्रधान विषय अष्टाङ्गयोग की विधि तथा काल की महिमा का वर्णन है। चतुर्थ स्कन्ध में भक्त प्रवर ध्रुव की कथा विस्तार से वर्णित है। पंचम स्कन्ध में ऋषभदेव तथा भरत का चरित का वर्णन है। इस स्कन्ध का महत्व ज्योतिष शास्त्रीय है जिसमें सूर्य की गति, ग्रहों की स्थिति गति, शिशुभार चक्र का वर्णन है। षष्ठ स्कन्ध में अजामिला का उपाख्यान, दक्षप्रजापति, इन्द्र द्वारा वृषासुर-वध एवं चित्रकेतु की कथा वर्णित है। सप्तम स्कन्ध का प्रधान प्रतिपाद्य विषय भक्त प्रवर प्रह्लाद का चरित विस्तृत से प्रस्तुत किया गया है। अष्टम स्कन्ध का प्रारम्भ गजेन्द्र मोक्ष से होता है। इस स्कन्ध का प्रमुख विषय समुद्र-मन्थन, मन्वन्तरों का वर्णन तथा बलि और भगवान् वामन की कथा है। नवम स्कन्ध में इक्ष्वाकु वंशीय नरेशों—सगर, भगीरथ तथा विशेष रूप से भगवान् राम की लीलाओं का वर्णन है। राजर्षियों के वंशानुचरित में अनु, द्रुत्यु, तुर्वसु, यदु तथा विदर्भ वंश-चरित विशेष रूप से उल्लेखनीय है। श्रीमद्भागवत का सर्वस्व इसका दशम स्कन्ध है। प्रस्तुत स्कन्ध पूर्वाध तथा उत्तरार्ध दो भागों में विभक्त है। यह सभी स्कन्धों में गुण तथा परिमाण दोनों दृष्टिकोण से श्रेष्ठ है। इसमें ९० अध्याय हैं इसमें भगवान् श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं तथा विविध चरित का वर्णन है। श्रीकृष्ण को भागवतकार ने पूर्ण भगवान् के रूप में चित्रित किया है। "कृष्णास्तु भगवान् स्वयम्"। जिस प्रकार भागवत का सर्वस्व दशम स्कन्ध है उसी प्रकार दशक स्कन्ध का प्राण—श्रीकृष्ण की गोपियों के साथ रास क्रीड़ा है जिसका वर्णन पांच अध्यायों में हुआ और जो वैष्णव सम्प्रदायों में रास पंचाध्यायी के नाम से प्रसिद्ध है। यह अनेकानेक संस्कृत वाङ्मय भारतीय विविध लोक भाषाओं के कवि-महाकवियों के काव्यों का उपजीव्य

है। एकादश स्कन्ध का महत्व ज्ञान-निरूपण के दृष्टिकोण से विशेष रूप से है। ज्ञान योग, कर्म योग तथा भक्ति योग का वर्णन तथा भक्ति के सर्वोपरि वैशिष्ट्य का प्रतिपादन ही इस स्कन्ध का प्रमुख प्रतिपाद्य है। द्वादश स्कन्ध में प्रतिसर्ग—चार प्रकार के प्रलय का वर्णन पुराणों के दश लक्षणों की चर्चा, भागवत की विषय-सूची, विभिन्न पुराणों की श्लोक संख्या तथा भागवत के माहात्म्य का सविस्तृत वर्णन है तथा इसी से ग्रन्थ की परिसमाप्ति हो गई है। भगवत्तत्व की उपलब्धि का सुगम उपाय बतलाना श्रीमद्भागवत का सर्वोत्कृष्ट वैशिष्ट्य है। प्रस्तुत पुराण की प्रयोजन भक्ति-तत्व का निरूपण है। वेदों को व्यासीकरण, शत-साहस्त्री-संहिता वेदार्थोपबृंहित विपुल काल महाभारत की रचना तथा पौराणिक साहित्य के प्रणयन के उपरान्त भी महर्षि वेद व्यास को शान्ति नहीं मिली तब उनका हृदय भक्ति-प्रधान भागवत की रचना से परम तृप्ति का लाभ प्राप्त करता है। भागवत के अनुसार भक्ति ही मोक्ष का प्रमुख साधन है। भक्ति, ज्ञान और कर्म दोनों से श्रेष्ठ हैं। ज्ञान, कर्म परम्परया साधक है साक्षाद रूप से नहीं। इनकी सार्थकता भक्ति के उदय होने पर ही है। श्रीमद्भागवत में भगवत्तत्व की संस्तुतियों की एक महनीय विशेषता है। इन स्तुतियों में—ध्रुव, प्रह्लाद, गजेन्द्र, ब्रह्मा की स्तुतियां विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमें दार्शनिक तत्वों की मीमांसा बड़े पाण्डित्यपूर्ण रूप से की गई है तथा दार्शनिक गुत्थियों को भागवतकार ने इस रहस्यात्मक ढंग से पिरो-कर रखा है कि उनका विमोचन पाण्डित्य का निकष है।

पद्म पुराण :

यह पुराण परिमाण में स्कन्ध पुराण को छोड़कर अद्वितीय है। इसके श्लोकों की संख्या ५०,००० बतलाई जाती है। इस प्रकार से इसे महाभारत का आधा और भागवत पुराण से तिगुना परिणाम में समझना चाहिए। इसके दो संस्करण उपलब्ध होते हैं। (१) बंगाली संस्करण और (२) देवनागरी संस्करण। बंगाली संस्करण तो अभी तक अप्रकाशित हस्तलिखित प्रतियों में पड़ा है। देवनागरी संस्करण में छः खण्ड हैं—(१) आदि (२) भूमि (३) ब्रह्मा, (४) पाताल, (५) सृष्टि और (६) उत्तर खण्ड। परन्तु भूमि खण्ड से ही पता चलता है कि छः खण्डों की कल्पना पीछे की है। मूल में पांच ही खण्ड थे जो बंगाली संस्करण में आज भी उपलब्ध होते हैं।

"प्रथमं सृष्टि खण्डं हि, भूमिखंडं द्वितीयकम् ।
तृतीयं स्वर्गखंडं च, पातालञ्च चतुर्थकम् ।।
पंचमं चोत्तरं खंडं, सर्वपापप्रणाशनम् ।

अब इन्हीं मूलभूत पांच खण्डों का वर्णन क्रमशः किया जा रहा है ।

(१) सृष्टि खण्ड :

इसमें ८२ अध्याय हैं । इसके प्रथम अध्याय (श्लोक ५५-६०) से पता चलता है इसमें ५५,००० श्लोक थे तथा यह पुराण पांच पर्वों में विभक्त था — (१) पौष्कर पर्व---जिसमें देवता, मुनि, पितर तथा मनुष्यों की ९ प्रकार की सृष्टि का वर्णन है । (२) तीर्थ पर्व---जिसमें पर्वत, द्वीप तथा सप्त सागर का वर्णन है । (३) तृतीय पर्व--जिसमें अधिक दक्षिणा देने वाले राजाओं का वर्णन है । (४) राजाओं का वंशानुकीर्तन है । (५) मोक्ष पर्व में मोक्ष तथा उसके साधन का वर्णन किया गया है । इस खण्ड में समुद्र-मंथन, पृथु की उत्पत्ति, पुष्कर तीर्थ निवासियों का धर्म कथन, वृत्रासुर-संग्राम, वामनावतार, मार्कण्डेय की उत्पत्ति, कार्तिकेय की उत्पत्ति, राम चरित, तारकासुर वध आदि कथाएं विस्तार के साथ दी गई हैं ।

(२) भूमि खण्ड :

इस खन्ड के आरम्भ में शिव कर्मा नामक ब्राह्मण की पितृभक्त के द्वारा स्वर्गलोक की प्राप्ति का वर्णन है । राजा पृथु के जन्म और चरित्र का वर्णन है । किसी छद्‌मवेशधारी पुरुष के द्वारा जैन धर्म का वर्णन सुनकर वेन उन्मार्ग गामी बन जाता है । तब सप्तर्षियों के द्वारा उसकी भुजाओं का मन्थन होता है जिससे पृथु की उत्पत्ति होती है । नाना प्रकार के नैमित्तिक तथा आभ्युदयिक दानों के अनन्तर सती सुकला की पातिव्रत सूचक कथा बड़े विस्तार के साथ दी गई है । ययाति और मातलि के अध्यात्म-विषयक सम्वाद में पाप और पुण्य के फलों का वर्णन और विष्णुभक्ति की प्रशंसा की गई है । महर्षि च्यवन की कथा भी बड़े विस्तार के साथ दी गई है । यह पद्‌म पुराण विष्णु-भक्ति का प्रधान ग्रन्थ है । परन्तु इसमें अन्य देवताओं के प्रति अनुदार भावों का प्रर्दशन कहीं भी किया गया है । शिव और विष्णु की एकता के प्रतिपादक ये श्लोक कितने महत्वपूर्ण हैं :

शैवं च वैष्णवं लोकमेकरूपं नरोत्तम ।
द्वयोश्चाप्यन्तरं नास्ति एकरूपं महात्मनो : ।।
शिवाय विष्णु रूपाय विष्णवे शिवरुपिणे ।
शिवस्य हृदये विष्णुः विष्णोश्च हृदये शिवः ।।
एकमूर्तिस्त्रयो देवाः ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
त्रयाणामन्तरं नास्ति, गुणभेदाः प्रकीर्तिताः ।।

(३) स्वर्ग-खण्ड :

इस खण्ड में देवता, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष आदि के लोकों का विस्तृत वर्णन है । इसी खण्ड में शकुन्तलोपाख्यान है जो महाभारत के शकुन्तलोपाख्यान से सर्वथा भिन्न है, परन्तु कालिदास के "अभिज्ञान-शाकुन्तलम्" से बिलकुल मिलता-जुलता है । इससे कुछ विद्वानों का कहना है कि कालिदास ने अपने सुप्रसिद्ध नाटक की कथावस्तु महाभारत से न लेकर इसी पुराण से ली है । "विक्रमोर्वशीयम्" के सम्बन्ध में भी यही बात है ।

(४) पाताल खण्ड :

इसमें नागलोक का विशेष रूप से वर्णन है । प्रसंगतः रावण के उल्लेख होने से पूरे रामायण की कथा इसमें कही गई है । इसमें विशेष बात यह है कि कालिदास के द्वारा "रघुवंशम्" में वर्णित राम की कथा से यह कथा मिलती-जुलती है । रावण के वध के अनन्तर सीता-परित्याग तथा रामाश्वमेध की कथा भी इसमें सम्मिलित है । यह कथा भवभूति के 'उत्तररामचरितम्' में वर्णित रामचरित से बहुत-कुछ मिलती है । इस पुराण में व्यासजी के द्वारा १८ पुराणों के रचे जाने की बात उल्लिखित है जिसमें भागवत पुराण की विशेष रूप से महिमा है ।

(५) उत्तर खण्ड :

पाँचवें खण्ड में विविध प्रकार के आख्यानों का संग्रह है । इसमें विष्णु भक्ति की विशेष रूप के प्रशंसा की गई है । "क्रियायोगसार" नामक इसका एक परिशिष्ट अंश भी है जिसमें यह दिखलाया गया है कि विष्णु भगवान् व्रतों तथा तीर्थों के सेवन से विशेष रूप से प्रसन्न होते हैं ।

पद्म पुराण विष्णु भक्ति का प्रतिपादक सबसे बड़ा पुराण है। भगवान् का नाम कीर्तन किस प्रकार सुचारु रूप से किया जा सकता है? कितने नामापराध है? आदि प्रश्नों का उत्तर इस पुराण में बड़ी प्रामाणिकता से दिया गया है। इसीलिये अवान्तरकालीन वैष्णव-सम्प्रदाय के ग्रन्थों ने इसका महत्व बहुत अधिक माना है। साहित्यिक दृष्टि से भी यह बहुत सुन्दर है। पुराणों में तो अनुष्टुप् का ही साम्राज्य रहता है, परन्तु इस पुराण में अनुष्टुप् के अतिरिक्त अन्य बड़े छन्दों का भी समावेश है। भगवान् की स्तुति के ये दोनों पद्य कितने सुन्दर है :

संसारसागरमतीव गम्भीरपारं,
दुःखोर्मिभिर्विविधिमोहमयैस्तरगैः।
सम्पूर्णमस्ति निजदोषगुणस्तु प्राप्तं,
तस्मात् समुद्धर जनार्दन मां सुदीनम् ॥
कर्माम्बुदे महति गर्जति वर्षतीव,
विद्युल्लतोल्लसति पातकसंचयैर्मे।
मोहान्धकारपटलैर्मयि नष्टदृष्टे,
दीनस्य तस्य मधुसूदन देहि हस्तम् ॥

वराह पुराण :

विष्णु ने वराह रूप धारण कर पृथ्वी का पाताल लोक से उद्धार किया था। इस कथा से मुख्यतः सम्बन्ध रखने के कारण इस पुराण का नाम वराह पुराण पड़ा है। हेमाद्रि (१३ वीं शताब्दी) ने अपने "चतुर्वर्ग चिन्तामणि" में इस पुराण में वर्णित बुद्ध द्वादशी का उल्लेख किया है तथा गौड नरेश वल्लालसेन ने "दान सागर" नामक ग्रन्थ में इस पुराण से अनेक श्लोक उद्धृत किये हैं। अतः यह पुराण १२वीं शताब्दी से प्राचीन अवश्य हैं। इस पुराण के दो पाठ-भेद उपलब्ध होते हैं। (क) गौड़ीय (ख) दाक्षिणात्य। इनमें अध्यायों की संख्याओं में भी अन्तर हैं। आजकल गौड़ीय पाठवाला संस्करण ही अधिक प्रसिद्ध है। इस पुराण में २१८ अध्याय तथा श्लोकों की संख्या २४,००० है। परन्तु कलकत्ते की एशियाटिक सोसाइटी से इस ग्रन्थ का जो संस्करण प्रकाशित हुआ है उसमें केवल १०,७०० श्लोक हैं। इससे ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ का बहुत बड़ा भाग अब तक नहीं मिला है। इस

पुराण में विष्णु से सम्बद्ध अनेक व्रतों का वर्णन है। विशेषकर द्वादशी व्रत—भिन्न-भिन्न मासों की द्वादशी व्रत का विवेचन मिलता है तथा इन द्वादशी व्रतों का भिन्न-भिन्न अवतारों से सम्बन्ध दिखलाया गया है जो निम्नांकित हैं।

मास	शुक्ल द्वादशी का नाम
चैत्र	वामन द्वादशी
वैशाख	परशुराम ,,
ज्येष्ठ	राम ,,
आषाढ़	कृष्ण ,,
श्रावण	बुद्ध द्वादशी
भाद्रपद	कल्कि ,,
आश्विन	पद्मनाभ द्वादशी
कार्तिक	—
अगहन	मत्स्य ,,
पौष	कूर्म ,,
माघ	वराह द्वादशी
फाल्गुन	नरसिंह ,,

इस पुराण में दो अंश विशेष महत्व के हैं—मथुरा माहात्म्य जिसमें मथुरा के समग्र तीर्थों का विस्तृत वर्णन दिया गया है। यह मथुरा का भूगोल जानने के लिए बड़े ही उपयोगी हैं। नचिकेतोपाख्यान—जिसमें नचिकेता का उपाख्यान विस्तार के साथ दिया गया है। इस उपाख्यान में स्वर्ग तथा नरकों के वर्णन पर ही विशेष जोर दिया गया है कठोपनिषद् की आध्यात्मिक दृष्टि इस उपाख्यान में अनुपलब्ध है।

गरुड़ पुराण :

सात्त्विक वैष्णव पुराणों में गरुड़ पुराण षष्ठ स्थानीय है। पुराणों की जो

सूचियाँ पुराणों में उपलब्ध हैं, उनमें सर्वत्र प्रस्तुत पुराण की परिगणना है।[१] इन निर्देशों से यह सिद्ध हो जाता है कि पौराणिक क्षेत्र में यह पुराण प्रसिद्ध है। निवन्धकारों एवं दार्शनिकों के द्वारा बहुशः स्मृत होने के कारण भी इस पुराण की प्रसिद्धि का अनुमान किया जा सकता है। निवन्धकारों ने बहुलतया इस प्रस्तुत पुराण के लिए "गरुड़" शब्द का प्रयोग किया है। गारुड़ का अर्थ है--गरुड़ के द्वारा प्रोक्त। तार्क्ष्य और वैनतेय (पुराण) भी शब्द भी कहीं कहीं मिलता है। ये दोनों शब्द—तार्क्ष्य और वैनतेय—गरुड़ के नामान्तर हैं। इस पुराण के प्रवक्ता स्वयं भगवान विष्णु हैं। गरुड़ प्रष्ट्रा हैं। जिज्ञासा प्रकट करने पर पूछे जाने पर भगवान् गरुड़ के निमित्त इस पुराण का प्रकाशन करते हैं। इस पुराण में श्लोकों की संख्या १९००० है। ऐसा नारदीय पुराण में उल्लेख है।[२] मत्स्य पुराण के अनुसार इस पुराण में १८००० श्लोक हैं,[३] आज मुद्रित उपलब्ध गरुड़ पुराण में ८८०० श्लोकों की सत्ता कही गई है।[४] यह पुराण दो भागों में विभक्त है—(१) पूर्व खण्ड तथा (२) उत्तर खण्ड। दोनों खण्डों में २६४ अध्याय हैं। पूर्व खण्ड में व्यावहारिक उपयोगी नाना विद्याओं की चर्चा है। पुराण का प्रारम्भ भगवान् विष्णु तथा उनके

---

१. मत्स्य पुराण, ५३ अध्याय, मार्कण्डेय पुराण, १३७ अध्याय, देवी भागवत पुराण, १/३/२-१२, भागवत पुराण, १२/७/२३-२४, विष्णु पुराण, ३/६/१५-२४, ब्रह्मवैवर्त पुराण ४/१३१/२०, अग्नि पुराण, २७२ अध्याय, नारदीय पुराण, १/१०८ पद्म पुराण, ६/२१९/२७, लिङ्ग पुराण, १/३९/६१-६३, गरुड़ पुराण, १/२१५/१३-२०, कूर्म पुराण, १/१३-१५, स्कन्ध पुराण, ३५/६९-७२,

२. मरीचे शृणु वंच्म्यद्य पुराणं गारुडं शुभम्।
गरुडायाब्रवीत् पृष्टो भगवान् गरुडासनः॥
एकोनविंश-साहस्रं तार्क्ष्यकल्प कथानिवतम्॥
नारदीय पुराण, १/१०८/१-२

३. तदष्टादशकं चैव सहस्त्राणीह पठ्यते।
मत्स्य पुराण ५३/५३
यज्ञवल्क्य स्मृति--दान प्रकरण--अपरार्क टीका

४. गारुड़ं चाष्ट साहस्रं विष्णूक्तं तार्क्ष्यकल्पेक
अग्नि पुराण २७२/२१

अवतारों के माहात्म्य वर्णन से होता है। पूर्व खण्ड में २२९ अध्याय हैं— जिसमें क्रमशः सर्ग संक्षेप, सूर्यादि पूजन विधि, दीक्षाविधि, नवव्यूहार्चन, विष्णुध्यान, सूर्यपूजा, मृत्युन्जयार्चन, शिवार्चन, गोपाल पूजा विष्णु-अर्चा, पंचतत्वार्चा, चक्रार्चा, देव पूजन, दुर्गार्चा, माहेश्वरी पूजा इत्यादि विविध देवों की पूजन विधि का पृथक्-पृथक् अध्यायों में वर्णन है। तदनन्तर वास्तु विद्यान्तर्गत वास्तुमान, प्रासाद लक्षण तथा देव प्रतिष्ठा का वर्णन ४६वें व ४८वें अध्यायों में किया गया है। ४९वें अध्याय से ५८वें अध्याय तक अष्टाङ्ग-योग, दान धर्म, प्रायश्चित्त, विधि क्रिया, द्वापेश, नरक, सूर्यव्यूह इत्यादि की चर्चा है। ५९वें से लेकर ६४वें अध्याय तक ६ अध्यायों में ज्योतिष शास्त्र का विस्तृत वर्णन है। नारदीय पुराण में केवल दो अध्यायों में इस शास्त्र का वर्णन उपलब्ध होता है। ६५वें तथा ६६वें दो अध्यायों में सामुद्रिक हस्त विद्या की चर्चा है। ६७वें अध्याय में स्वर ज्ञान का वर्णन मिलता है। नाना प्रकार के रत्नों की परीक्षा जैसे मोती की परीक्षा (अध्याय ६९), पद्मराग की परीक्षा (अध्याय ७०), मरकत, इन्द्रनील, वैदूर्य, पुष्पराग, करकेंतन, भीष्मरत्न, पुलक, रुधिराख्य रत्न, स्फटिक तथा विद्रुभ की परीक्षा (अध्याय ७१-८० तक) क्रमशः की गई है। राजनीति शास्त्र का वर्णन विस्तार के साथ अध्याय १०८ से ११५ तक उपलब्ध होता है। आयुर्वेद शास्त्रीय विज्ञान तथा चिकित्सा का कथन अनेकों अध्यायों (अध्याय १५०-१८१) में किया गया है। नाना प्रकार के रोगों को दूर करने के लिए औषधि व्यवस्था भी अध्याय १७०वें से १९६वें अध्याय तक की गई है। इस पुराण का राजनीति विषयक अंश "नीतिसार" तथा "वृहस्पति संहिता" के नाम से पृथक् रूप से निर्दिष्ट किया गया है। इस दिशा में प्रसिद्ध अमेरिकन संस्कृत विद्वान डा० लुड्विक स्टर्नबाख का गवेषणात्मक अनुसन्धान प्रशंसनीय है। इस पुराण की आयुर्वेदीय सामग्री आयुर्वेद शास्त्रीय ग्रन्थों से संकलित है। स्वनामधन्य आयुर्वेद शास्त्रज्ञ वाभेट की "अष्टाङ्गहृदयसंहिता" से सम्भवतः सात अध्याय —१५२ से लेकर १५९वें अध्याय तक अक्षरशः मिलते हैं। इस पुराण के १९७वें अध्याय में पशु-चिकित्सा का वर्णन पाया जाता है जो समधिक महत्वपूर्ण है। इस प्रकार इस पुराण में आयुर्वेद के प्रतिपादक लगभग ५० अध्याय हैं। यदि इस अंश का पृथक् रूप से प्रकाशन हो जाता है, तो आयुर्वेद के अन्य शास्त्रीय ग्रन्थों के साथ इसका पठन-पाठन तथा अनुशीलन सम्भव हो जाता। २०३वें तथा २०४वें अध्यायों में व्याकरण-शास्त्र तथा ६ अध्यायों में छन्दः शास्त्र की चर्चा है। धर्म शास्त्रीय

विषयों—जैसे सदाचार, स्नान विधि, तर्पण, वैश्वदेव, सन्ध्या-वन्दन, पार्वण-कर्म, नित्य-श्राद्ध, सपिण्डीकरण, धर्मसार अधनिष्कृति (प्रायश्चित) इत्यादि का विवरण यथेष्ठ मात्रा में कई अध्यायों में अर्थात् अध्याय २०५ से २१४वें अध्याय तक है। सांख्य-योग का भी इसके अध्याय २३० और अध्याय २४३ में वर्णन है। अध्याय २४२ में गीता सारांश दिया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि गरुड़ पुराण का पूर्व खण्ड अपने २२९ अध्यायों में अग्नि पुराण के समान ही समस्त जीवनोपयोगी विद्याओं का संग्रह प्रस्तुत करता है। इसीलिए यह पुराण पौराणिक विश्व कोष कहलाता है।

इस पुराण के उत्तर खण्ड में ४५ अध्याय हैं। यह खण्ड "प्रेत कल्प" भी कहलाता है। प्रेतत्व-प्राप्ति के उपरान्त मानवीय जीव की क्या गति होती है। वह किन-किन योनियों में अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार परिभ्रमण करता है। उन योनियों में जीव को कौन-कौन भोग प्राप्त होती है। इस सब विषयों की चर्चा इस खण्ड का प्रधान प्रतिपाद्य विषय है। अन्य पुराणों में भी इन विषयों का वर्णन है, परन्तु इस पुराण का यह वैशिष्टय है कि यह इस विषय का अत्यन्त विस्तृत तथा साङ्गोपाङ्ग वर्णन प्रस्तुत करता है। आधुनिक हिन्दू समाज में इस पुराण के इस खण्ड अर्थात् प्रेत कल्प का वाचन तथा श्रावण का प्रचलन है इस उत्तर खण्ड का भाषान्तर अनुवाद जर्मन भाषा में भी हो गया है।

तृतीय अध्याय

ऋग्वेद से लेकर समस्त भारतीय आस्तिक तथा नास्तिक दार्शनिक साहित्य में सृष्टि-प्रक्रिया का संक्षिप्त विवेचन का प्रस्तुतीकरण

इस अध्याय में वैदिक वाङ्मय में वर्णित सृष्टि-वर्णन को संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाएगा। वैष्णव पुराणों ने ही नहीं बल्कि समस्त अष्टादश महापुराणों ने सर्ग अर्थात् सृष्टि-वर्णन को सर्वाधिक प्रमुख स्थान अपने प्रतिपाद्य विषयों के अन्तर्गत प्रदान किया है।[1] भारतीय वाङ्मय में ही नहीं अपितु समग्र विश्व के गणमान्य साहित्यों में, वैदिक साहित्य तथा विशेष रूप से ऋग्वेद की प्राचीनता सर्वविदित तथा सर्वमान्य है। दूसरा उल्लेखनीय प्रासङ्गिक तथ्य है कि समस्त भारतीय ज्ञान-विज्ञान, साहित्य एवं दर्शन का उपजीव्य ऋग्वेद संहिता है। ऋग्वेद में सन्निहित मूल तथ्यों का विशदीकरण भारतीय साहित्य में हुआ है। पौराणिक साहित्य तो वैदिक वाङ्मय का पूरक साहित्य है। इस साहित्य का प्रधान प्रतिपाद्य वैदिक सूक्तों की रहस्यात्मक गुत्थियों को सलीलतम ढंग से लौकिक संस्कृत के माध्यम से सर्वसाधारण के सम्मुख प्रस्तुत करना है। इसीलिए यह उपवृंहण साहित्य कहलाता है। इस परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के सृष्टि-वर्णन के सर्वांगीण अवगति हेतु यह परम आवश्यक है कि वैष्णव पुराणों की सृष्टि-प्रक्रिया की विवेचना वैदिक साहित्य के सम्बद्ध प्रासङ्गिक वर्णनों से प्रारम्भ की जाए। वैदिक ऋषियों की प्रातिभ मनीषा ने इस विषय का वर्णन किया है। ऋग्वेद में सम्भवतः दशाधिक सूक्त हैं जिनमें सृष्टि-प्रक्रिया की दार्शनिक मीमांसा की गई है। प्रसिद्ध पाश्चात्य संस्कृत विद्वान डॉ० आर्थर ए० मैकडानेल ने उल्लेख किया है कि ऋग्वेदीय सृष्टि-विषयक ये सूक्त दार्शनिक विवेचना से रहित हैं। इनमें पुरातन काल्पनिक कथाओं तथा सिद्धान्तों का सम्मिश्रण है।[2] यहां हम एतावन्मात्र सविनय निवेदन कर देना पर्याप्त समझते हैं कि डॉ० मैकडानेल का यह उल्लेख

---

१. कूर्म पुराण, १/१/१२
२. ए० ए० मैकडानेल : ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर, पृ० १३१

विषय ही सम्यक् विवेचना तथा पर्यालोचना से शून्य है। इसका स्पष्टीकरण इस अध्याय की परिसमाप्ति पर्यन्त हो जाएगा। ऋग्वेदीय सृष्टि-विषय-सम्बद्ध सूक्तों में पुरुष-सूक्त[१] महनीय गौरव से मण्डित है। इस सूक्त के प्रारम्भ में ही यह उल्लेख है कि विराट, समग्र चराचर सतात्मक है और मूल तत्व पुरुष और विराट दोनों अभिन्न हैं। पुरुष, सहस्त्र शिरों, सहस्त्र नेत्रों तथा सहस्त्र पादों से युक्त है।[२] सहस्त्र शब्द अभिद्येयार्थ का व्यंजक नहीं है प्रत्युत यह उस पुरुष की अपरिमेय सार्वभौम सत्ता का द्योतक है। वह पुरुष, वर्तमान, भूत तथा भविष्य समस्त जगत् के साथ अभिन्न है।[३] वह पुरुष अमरत्व का परमेश है। वह अपनी अव्यक्त करुणावस्था का परित्याग कर अपने को जगत् की कार्यावस्था में अभिव्यक्त करता है। इस अभिव्यक्ति में उसका एक मात्र उद्देश्य यही है कि जगत् के प्राणी अपने शुभाशुभ कर्मों के परिणामों का भोग कर लें। इस परिप्रेक्ष्य में यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि वह पुरुष ही उद्पादक और उत्पादित दोनों है। पुरुष, भूत, भव्य तथा वर्तमान कालावच्छिन्न जगत् मात्र ही नहीं है समस्त चराचर जगत् उसका पाद अर्थात् चतुर्थांश हैं।[४] चतुर्थांश का तात्पर्य यही है कि उस अनन्त अपरिमेय मूलभूत तत्व पुरुष की तुलना में यह जगत् अत्यन्त नगण्य तथा लघुतम मात्र है। नित्य-प्रवहात्मक गतिशील रूप से उस पुरुष का अंश का आविर्भाव और तिरोभाव होता रहता है। इस कार्य में उस मूल पुरुष की अविभाज्य अनिर्वचनीय शक्ति माया माध्यम बनती है।

---

१. ऋग्वेद, १०/९०

२. सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रापात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।
ऋग्वेद १०/९०/१

३. पुरुष एवेदं सर्व यद्भूत यच्च भव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥
ऋग्वेद संहिता १०/९०/२

४. एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पुरुषः।
पदोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥
वही १०/९०/३

उस पुराण का शेष तृतीय-चतुर्थ भाग अविनाशी तथा अमृतत्व से युक्त है। यह भाग जन्म-मृत्यु की परिधि से परे है। पुरुष से विराट् का आविर्भाव हुआ। विराट् उसका अभिधान इस कारण है कि समस्त जगत् उसका शरीर है। विराट् के उपरान्त अधिपुरुष सत्ता में आया।[1] विराट् से ही उसकी उत्पत्ति हुई परन्तु दोनों एक दूसरे से पृथक् तथा भिन्न हैं। देवों तथा मर्त्यों के रूप में अधिपुरुष सत्ता समन्वित है। मूल पुरुष ही परम तत्व परमात्मा है जिसे वेदान्त-दर्शन माया के माध्यम से विराट् की उत्पत्ति का कारण बतलाता है। पुरुष, प्राणवायु के रूप से विराट् के शरीर में प्रविष्ट होकर अधिपुरुष का रूप धारण कर लेता है। तदनन्तर यज्ञ के माध्यम से सृष्टि-प्रक्रिया को बढ़ाने की इच्छा देवताओं के मन में उत्पन्न होती है, लेकिन सृष्टि हेतु भौतिक उपदानों के अभाव के कारण देवता अपने उद्देश्य के पूर्ति हेतु मानसिक यज्ञ सम्पादन का निश्चय कर ध्यानावस्थित हो जाते हैं। ध्यानावस्था में ही मानसिक रूप से देवता अधिपुरुष का हविष्य बनाकर समर्धित करते हैं। इस प्रकार अधिपुरुष देवों के सम्पादित मानसिक यज्ञ का आदर्श बलि बन जाता है।[2] जब यह उपर्युक्त यज्ञ सम्पन्न हो जाता है, उपभोगार्थ जागतिक उपादान ---ग्रावश्यकीय द्रव्यों के रूप में उत्पन्न होते हैं। मानवीय सृष्टि के क्रम में इसी मानसिक आध्यात्मिक यज्ञ से अधिपुरुष के मुख से ब्राह्मण, उसके बाहुओं से क्षत्रिय (राजन्य) उसके जघ्न स्थलों से वैश्य तथा चरणों से शूद्र की उत्पत्ति हुई।[3] उसके मन से चन्द्रमा, उसके सिर से आकाश, उसके पैर से पृथ्वी तथा उसके कर्णों से दिशाओं का आविर्भाव हुआ। इस प्रकार यह जगत् सत्ता में आया। यहां उल्लेखनीय है कि इस सूक्त से प्रेरित होकर कालान्तर

---

१. तस्माद् विराट जायत विराजो अधि पुरुषः।

ऋग्वेद संहिता ५

२. ब्राह्मणोस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
अरु तदस्य यद्वश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥

ऋग्वेद संहिता १०/९०/१२

३. यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञ मतन्वत।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं........... ॥

ऋग्वेद सं० १०/९०/६

में सांख्य दर्शन के पुरुष तत्व का विकास हुआ तथा इसी पुरुष-सूक्त के विराट् के आवश्यकीय तत्वों को अद्वैत वेदान्त ने समग्र रूप से स्वीकार किया। स्थानाभाव के कारण हम यहां दार्शनिक विवेचना से विरत हो जाते हैं। प्रसिद्ध पाश्चात्य संस्कृत विद्वान डॉ० मैकडानेल, भारतीय संस्कृति की मूल भावना के ज्ञानाभाव के कारण सृष्टि का कर्ता देवताओं को माना है तथा यज्ञ की वास्तविकता का उल्लेख किया है तथा उन्होंने दैत्य के शरीर से जगत् की निर्मिति की चर्चा की है। इस सन्दर्भ में इतना ही निवेदन कर देना पर्याप्त समझता हूं कि उस संस्कृतज्ञ ने इस ऋग्वेदीय सूक्त के रहस्यात्मक तथ्यों का विश्लेषण निष्पक्ष रूप से नहीं किया है। इसके विरुद्ध प्रजापति प्रमुख ऋषियों से युक्त देवों के मानसिक यज्ञ से इस सृष्टि-प्रक्रिया का प्रारम्भ हुआ। देव केवल मानसिक यज्ञ के कर्ता हैं सृष्टि के नहीं। मानसिक यज्ञ की सम्पन्नता के उपरान्त सृष्टि सत्ता में आई। मैंने ऊपर निर्देश कर दिया है कि इस मानसिक यज्ञ की परिसमाप्ति पर मूल पुरुष ने अपने को जगत् के रूप में व्यक्त कर दिया।

सृष्टि सम्बन्धी हिरण्यगर्भ-सूक्तीय विचारों की विवेचना :

सृष्टि विषयक ऋग्वेदीय सूक्तों में दशम मण्डल के १२१वें सूक्त हिरण्य-गर्भ का एक विशिष्ट स्थान है, क्योंकि इस सूक्त के विचारों का प्रभाव 'मनु संहिता' और पौराणिक साहित्य के निर्माताओं पर अत्यधिक रूप से पड़ा है। इस सूक्त की ऋचाएं, परम तत्व को, हिरण्यगर्भ का अभिधान प्रदान करती हैं। यहां परम ब्रह्म हिरण्य अण्डात्मक गर्भावस्था में विद्यमान चित्रित किया गया है। हिरण्यगर्भ को सूत्रात्मा की संज्ञा भी दी गई है। मायाध्यक्ष परम ब्रह्म के मन में सर्वप्रथम सृष्टि-उत्पत्ति की इच्छा जागृत होती है ओर परि-णाम स्वरूप हिरण्यगर्भ का आविर्भाव उससे होता है। यहां यह उल्लेख करना अनावश्यक नहीं प्रतीत होता है कि परम ब्रह्म और हिरण्यगर्भ दोनों एक और अभिन्न हैं। पंचभूत, हिरण्यगर्भ की उपाधियां हैं जिनकी उत्पत्ति परम ब्रह्म से होती है। हिरण्यगर्भ जन्म-मृत्यु की परिधि से परे हैं। पंच भौतिक उपाधियां ही सृष्टि की उत्पत्ति की उत्तरदायिनी हैं। हिरण्यगर्भ तो परमब्रह्म के सदृश अनन्त और आदि अन्त रहित है। तैत्तिरीय संहिता हिरण्यगर्भ और प्रजापति दोनों को एक कहती है, क्योंकि दोनों में समता है। प्रजापति अपने जन्म से समग्र विश्व का परमेश्वर है। वही पृथ्वी, स्वर्ग तथा अन्तरिक्ष को धारण करता है। इस प्रस्तुत सूक्त की प्रत्येक ऋचा के अन्त में "कस्मै देवाय हविषा

विधेय" उद्धृत है। "कस्मै" शब्द विवादास्पद है। भाष्यकार आचार्य सायण का मत है कि "कः" व्यक्ति अभिधान है इसके सम्प्रदान---विभक्ति का रूप "कस्मै" है। एतदर्थ उन्होंने इन्द्र और प्रजापति के उपाख्यान का उल्लेख किया है और उनके कथन का सार यही है कि प्रजापति की जिज्ञाया करने पर इन्द्र उनको "कः" कहते हैं और "कः" प्रजापति अथवा प्रजापति के लिए व्यवहृत होने लगा। जैसे अग्नि से ज्वाला निःसृत होती है वैसे ही आत्म-तत्व, हिरण्य-गर्भ से निर्गत हुआ। वही शक्तिदाता है। सभी चराचर तथा देव उसकी आज्ञा का पालन करते हैं अथवा सभी उसकी ही अभिव्यक्ति हैं। इस प्रकार सभी अपने सृष्टि-कर्त्ता की महिमा का प्रकाशन करते हैं। आप (जल) हिरण्यगर्भ के साथ उत्पन्न हुआ है। यह सर्व व्यापक था और पंचभूतों की उत्पत्ति हेतु उसने प्रजापति को जो गर्भावस्था में था—एक हिरण्य अण्ड में धारण किया है। तदुपरान्त उसी जल से हिरण्यगर्भ निकला जो प्राणियों का प्राण-वायु था। इसी सन्दर्भ में दो एक प्रश्न उभर कर सन्मुख आते हैं—(१) हिरण्यगर्भ के समसामयिक जल का निर्माता कौन है? (२) क्या कारण है जिससे प्रेरित होकर हिरण्यगर्भ उठकर बहिर्मुख हुआ? इस सूक्त की एक ऋचा यह उल्लेख करती है कि पृथ्वी, स्वर्गादि लोकों सहित जल का स्रष्टा हिरण्यगर्भ ही है।[१] अन्तिम ऋचा की स्पष्ट उद्घोषणा है कि प्रजापति जिसका अमर नाम हिरण्य-गर्भ भी है को छोड़कर दूसरा इस जगत का कर्ता नहीं हो सकता। पुराणों के निर्माता ने अक्षरशः इन ऋग्वेदीय सूक्तों के दार्शनिक विचारों का अनुसरण किया है। इसी हेतु सुदूर अतीत के गर्त में छिपे वैदिक ऋषियों के मनीषा में जो सृष्टि विषयक दार्शनिक विश्लेषण स्फुटित हुआ उसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति प्रस्तुत करने का प्रयास मैंने किया है। मनु ने अपने संहिता में उल्लेख किया है कि सृष्टि के प्रारम्भिक काल में परम तत्व, हिरण्यगर्भ की जगत-सृष्टि की इच्छा हुई और उसने अपने कलेवर से जल की रचना की। तत्पश्चात् उसने उस जल में बीज का प्रक्षेपण कर दिया, वह बीज अण्ड का रूप धारण कर

---

१. मानो हिसीज्जनिता यः पृथिव्या,
यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान।
यश्चापश्यन्द्रा बृहतीर्जजान,
कस्मै देवाय हविषा विधेत।
ऋग्वेद संहिता १०/१२१/९

लिया जो हिरण्य (स्वर्ण) सदृश निर्मल और पावन था। वह सहस्त्र रश्मियों से सूर्य के समान देदीप्यमान था।[1] उसी अण्ड में स्वयमेव हिरण्यगर्भ का आविर्भाव हुआ और उसी का ऊपर अभिधान ब्रह्म पड़ा जो चराचर प्राणियों का प्रजापति था। परम तत्व हिरण्यगर्भ उस अण्ड में एक वर्ष पर्यन्त निवास किया और उसकी ध्यानावस्था में वह अण्ड दो भागों में विभक्त हो गया।[2] उन्हीं दो भागों से हिरण्यगर्भ ने स्वर्ग और पृथ्वी तथा दोनों स्वर्ग और पृथ्वी के मध्य अन्तरिक्ष की सृष्टि की। जल को "नारा" कहते हैं क्योंकि नर (रूप परमात्मा) की सन्तान है। वह नारा (जल) परमात्मा का आश्रम (निवास, स्थान) बना, इस कारण से परमात्मा "नारायण" कहे जाते हैं।[3]

नासदीय सूक्त में सृष्टि वर्णन :

ऋग्वेदीय सूक्तों के सृष्टि-वर्णन का महत्व है कि यह विश्लेषण दार्शनिक विवेचना से परिपूर्ण है। ऋग्वेद के ऐसे सृष्टि-वर्णन-प्रधान सूक्तों में उसके दशम मण्डल का १२९वां नासदीय सूक्त का दार्शनिक दृष्टिकोण से सृष्टि-वर्णन करने का एक विलक्षण वैशिष्ट्य है। यदि यह कहा जाए कि वैदिक ऋषियों की दार्शनिक मनीषा सृष्टि-वर्णन के मीमांसा के सम्बन्ध में इस नासदीय सूक्त में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच गई थी, तो इस कथन में कोई अतिशयोक्ति दृष्टिगत नहीं होती। नासदीय सूक्ति समस्त वैदिक वाङ्मय में गाम्भीर्य और तात्त्विक विवेचन कें लिए अत्यन्त विख्यात है। जिस वैदिक

---

१. अप एव ससर्जाऽदौ तासु बीजमवासृजत्।
तद्दण्डमभवद्धैमं सहस्रांशु सभ प्रभम्।
तस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोक पितामह॥

मनुस्मृति १/८-९

२. तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम्।
स्वयमेवाऽऽत्मनो ध्यानात्तद्दण्डमकरोद्द्विधा॥

वही १२

३. आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्व तेन नारायणः स्मृतः॥

मनुस्मृति १/१०

ऋषि के प्रातिभ चक्षु ने इस सूक्त का साक्षात्कार किया उसके समक्ष महत्वपूर्ण समस्या थी कि इस समग्र ब्रह्माण्ड या सृष्टि-संरचना का अन्ततोगत्वा मूल उद्‌गम स्रोत कौन है ? अपनी तार्किक ऊहापोहात्मक प्रक्रिया के अन्तर्गत इस सूक्त का ऋषि सर्वप्रथम इस विवेचना से प्रारम्भ करता है कि सृष्टि के आविर्भाव के पूर्व कैसी दशा रहती है? इस सूक्त की दार्शनिक महनीयता का प्रकाशन मेरे ऐसे क्षुद्र छात्र के लिए एक दुस्तर व्यापार है, फिर भी एक लघुतम प्रयास करता हूं कि—

"विदज्जन इसका समादर करेंगें, क्योंकि
"विद्वानैव जानाति विद्वज्जनसमादरम्"

इस दृश्यमान सृष्टि का आविर्भाव कैसे हुआ ? इस विविध भूतभौतिकभोक्तृ-भोग्यादिरूपविशिष्ट विसृष्टि का उपादान कारण क्या है ? इसका निमित्त-कारण कौन है ? इन उपर्युक्त प्रश्नों के समाधान के सम्बन्ध में नासदीयसूक्त की छठवीं ऋचा का स्पष्ट कथन है कि कौन पुरुष परमार्थतः इन्हें जानता है? इन प्रश्नों का समाधान विस्तार कौन पुरुष कर सकता है ?[1] अर्थात् कोई भी पुरुष इन्हें न जानता है न विस्तारपूर्वक इनके सम्बन्ध में कह सकता है। इसी सन्दर्भ में यह प्रश्न उठता है कि क्या देवगण इसको जानते हैं तथा इन प्रश्नों का समाधान कर सकते हैं ? क्योंकि वे सर्वज्ञ हैं और वे सब कह सकते हैं। ऋचा में निर्देश है कि देवगण इस भौतिक सृष्टि के बाद हुए अर्थात् देवगण अर्वाचीन हैं। सृष्टि देवों से पूर्व हुई।

"अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा"

अतः यह प्रश्न नहीं उठ सकता कि देवगण इस सृष्टि के रहस्यात्मक आविर्भाव को जान सकते हैं; क्योंकि पश्चात् उत्पन्न देव पूर्वकालीन-सृष्टि को कैसे जान सकते हैं ?

यह सृष्टि इस प्रकार से दुर्विज्ञानरूपा है। यह दुर्धर है। यह सृष्टि उपादानभूत परमात्मा से आविर्भूत हुई है। वही परमात्मा उसे धारण करता

---

१. को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत अजाता कुत इयं विसृष्टि।
ऋग्वेद, १०/१२९/६ अ

है दूसरा कोई भी इसे धारण करने में समर्थ नहीं हो सकता। इस सृष्टि का अध्यक्ष ईश्वर है। वह ईश्वर आकाश के सामान निर्मल स्वप्रकाशस्वरूप विशिष्ट ज्ञानस्वरूप आतमतत्त्व में अवस्थित है। वही ईश्वर इस सृष्टि के रहस्यात्मक उत्पत्ति को जानता है अन्य कोई नहीं। इस प्रकार हम देखते हैं कि नासदीय सूक्त के द्रष्टा ऋषि ने अपने प्रातिभचक्षु से साक्षात्कार किया कि यह सृष्टि दुर्बोध है दुर्धर है एवं दुर्विज्ञेय है।

सर्वप्रथम ऋषि समस्त प्रपंच से शून्य प्रलयावस्था का निरूपण करते हैं।

उस विश्वब्रह्माण्ड की प्रलयावस्था में इस सृष्टि का मूलकारण शशविषाण-वत् केवल काल्पनिक असत् नहीं था क्योंकि ऐसे असत् कारण से सतात्मक जगत् की उत्पत्ति नहीं सम्भव है। कार्यकारणभाव की अवस्थिति ऐसी विरोधात्मक वस्तुओं में नहीं हो सकती। सृष्टि की वास्तविकता अनुभव का विषय है। अतः इसकी उत्पत्ति असत् से नहीं सम्भव हो सकती। इसी प्रकार सृष्टि का मूल कारण आतमतत्त्व की भांति सत् भी नहीं कहा जा सकता। उस मूल कारण को सत् असत् दोनों नहीं कहा जा सकता, क्योंकि एक ही वस्तु सत् असत् दोनों एक साथ नहीं हो सकती। उस समय आकाश भी नहीं था। इस आकाश के अधस्तन पृथिवी पातालादि कुछ नहीं था। आकाश के ऊपर विद्यमान रहने वाले स्वर्ग सत्यादि लोक भी नहीं थे। इससे यह भी निषिद्ध होता है कि चतुर्दशभुवनगर्भ ब्रह्माण्ड की स्थिति नहीं थी। इस प्रकार एक वाक्य में कहा जा सकता है कि यह समस्त विश्वप्रपंच नहीं था। न आवश्यक था और न आवरणीय था। यह सृष्टि जीवों के उपभोगार्थ है। इसकी यही उपयोगिता है कि सृष्टि जीव को उनके किए हुए शुभाशुभ कर्मों के फलों को भोग का अवसर प्रदान करती है। प्रलयावस्था में जीव अपनी उपाधियों के विलयन के कारण नहीं था। अतः इस प्रकार भोग्यप्रपंच की तरह भोक्ता-प्रपंच का भी सर्वथा अभाव था। इस सन्दर्भ में यह प्रश्न उपस्थित है कि यद्यपि आवरण के साथ ब्रह्माण्ड के निषेध के अन्तर्गत जल तत्त्व का भी निषेध हो जाता है, तथापि तैत्तिरीय संहिता (७-१-५-१) में उद्धृत है कि सृष्टि के प्रारम्भ में जल विद्यमान था "आयो वा इदमग्रे सलिलमासीत्।" तब तो यह मानना ही पड़ता है कि प्रलयावस्था में जल की अवस्थिति थी। इसी संदेह के निराकरण हेतु नासदीय सूक्त की प्रथम ऋचा स्पष्ट संकेत करती है कि जल

प्रलयावस्था में नहीं था। उस समय दृष्प्रवेश अत्यगाध जल नहीं था।[1] तैत्तिरीय संहिता का निर्वचन केवल खण्ड प्रलयावस्था का निर्देश करता है जिसमें जल अपने सर्वव्यापक भाव में विद्यमान था। सम्पूर्ण प्रलयावस्था में नहीं।

अब एक प्रश्न उपस्थित है कि एसी उपर्युक्त प्रलयावस्था अवश्यमेव प्रकृतितः कार्य है आकस्मिक घटना नहीं है। अतः क्या इस सृष्टि का संहर्ता-मृत्यु विद्यमान था ? तो सूक्त की द्वितीय ऋचा में उल्लेख है कि मृत्यु नहीं था। जब मृत्यु नहीं था, तो क्या अमृतत्त्व था। मृत्यु के अभाव में अमृतत्त्व की भी कल्पना व्यर्थ है। सभी जीवों ने अपने परिपक्व भोग हेतु भूत कर्म का उपयोग कर लिया था, तब भोग के अभाव में निष्प्रयोजन यह जगत् की विनाश की इच्छा पर ब्रह्म परमेश्वर के मन में विद्मान थी। अतः उस परमेश्वर ने मृत्यु के साथ इस सृष्टि का विनाश कर लिया और प्रलयावस्था उपस्थित हो गई। मृत्यु ही समस्त जगत् का संहार करता है, तो क्या उस संहर्ता मृत्यु ने उसका अभाव कर दिया अथवा अमरण की अर्थात् अमृतत्त्व की अवस्था कैसे सम्भव हो सकती है। इसी प्रश्न को लक्ष्य में रख कर कठोपनिषद् का स्पष्ट कथन है कि—

"यस्य ब्रह्म च क्षत्रं चोभे भवत ओदनः ।
मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेदयत्रसः ॥"

(१.२.२५)

सम्पूर्ण धर्म को धारण करने वाले और सबके रक्षक होने पर भी ब्राह्मण और क्षत्रिय—ये दोनों जिस आत्मतत्त्व परब्रह्म के ओदन-भोजन हैं तथा सब का हरण करने वाला होने पर भी मृत्यु जिसका ओदन के लिए उपसेचन (शाकादि) के समान है अर्थात् भोजनार्थ पर्याप्त नहीं है। इस रहस्यात्मक आभिव्यक्ति का स्वारस्य है कि प्रलयावस्था में ब्रह्म समस्त जगत् के साथ मृत्यु की परिसमाप्ति कर देता है।

---

१. किमावरीवः कुह कस्य शर्मन् अम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ।
ऋग्वेद, १०/१२९/१

ऐसी स्थिति में सर्वाधिकरणभूत काल की सम्भावना की परिकल्पना नहीं की जा सकती; क्योंकि उस प्रलयावस्था के समय रात्रि और दिन का प्रज्ञान नहीं था क्योंकि रात्रि और दिन के हेतुभूत सूर्य और चन्द्र ही नहीं थे। इस सन्दर्भ में एक सारगर्भित प्रश्न उठ खड़ा होता है कि जब काल नहीं था तो इस सूक्त की प्रथम ऋचा में प्रयुक्त "तदानीम्" अर्थात् "उस समय" की क्या सार्थकता है ? विद्वेज्जनों की मनीषा इसका सम्यक् समाधान उपस्थित कर सकती है। मैं अपनी क्षुद्र बुद्धि से एतावन्भाव निवेदन कर सकता हूं कि जिस प्रकार इदानीन्तननिषेध का अवच्छेक काल है उसी प्रकार भाषा भी उसका अवच्छेद हेतु है। इस प्रकार अवच्छेकत्वसाम्य के कारण अकाल मेंगभी कालवाची "तदानीम्" का प्रयोग समझना चाहिए। समस्त निषेधों के उपरान्त यह उद्घोषित किया गया है कि परमार्थसत्त्व ब्रह्मतत्त्व आनीदवातम् अर्थात् उस प्रलयावस्था में था। "अन" धातु के भूतकालिक रूप "आनीत्" स्पष्ट सिद्ध कर देता है कि उस प्रलयावस्था के समय ब्रह्मतत्त्व था। ब्रह्म स्वधा के साथ था। "स्वस्मिन् धीयते आश्रित्य वर्त्तते इति स्वधा माया।" उस स्वधा अर्थात् माया के साथ एक अविभागापन्नरूप में ब्रह्म विद्यमान था। अब पुनः प्रश्न उपस्थित होता है कि चराचर समस्त सृष्टि प्रपंच का निषेध है तो ब्रह्म माया के साथ एक होकर कैसे अवस्थित था। क्योंकि माया भी तो सभी प्रपंच के समान थी। माया सांख्यदर्शन में प्रतिपादित मूल प्रकृति से अभिन्न है। सांख्य दर्शनशास्त्र यह स्वीकार करता है कि मूल प्रकृति सत् और त्रिगुणात्मिका है। ऐसी स्थिति में माया का निषेध सम्भव नहीं है। यह सत्य है कि ब्रह्म निरपेक्ष है सर्वथा पृथक् है। अतः माया के साथ उसके एक आविभागापन्न की कल्पना दुस्तर प्रतीत होती है। यद्यपि असंग ब्रह्म का माया के साथ सम्बन्ध सम्भव नहीं तथापि जिस प्रकार सूक्ति में रजत् का अध्यास सम्भव है उसी प्रकार ब्रह्म में माया अविधा का अध्यास सम्भव है। इसी से माया के सत्स्वरूप का प्रत्याख्यान किया गया है। उपर्युक्त विवेचन अनेकानेक दार्शनिक गुत्थियों से उलझा हुआ है। मैं केवल निर्देशमात्र कर देता हूं। समस्त गुत्थियों का समाधान सहज रूप से सूक्त के इस कथन से हो जाता है कि स्वधा (माया) के साथ एक ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था।

'तस्माद्धान्यान्न परः कि चनास'

यदि "प्रलयावस्था में जगन् नहीं था यह मान लिया जाए, तो इसकी

उत्पत्ति कैसे सम्भव हो सकी ? कार्यरूपा उत्पत्ति के अव्यवहित पूर्व की स्थिति अपरिहार्य है । यदि यह मान लिया जाय कि जगत् उत्पत्ति के पूर्व था, तो समस्त जागतिक प्रपंच के निषेध ही असिद्ध हो जाएगा । इसी जिज्ञासा के शमनार्थ इस सूक्त के तृतीय ऋचा में यह उद्घोषित किया गया है कि सृष्टि के पूर्व अथवा प्रलयावस्था में समस्त भूतभौतिक जगत् तम से अर्थात् माया से आच्छादित था--

तुच्छयेनाम्वपिहितं यदासीत् ।

जिस प्रकार रात्रि का अन्धकार समस्त प्रदार्थ को आवृत्त कर देता है । आत्म-तत्त्व का आवरक होने के कारण मायापरसंज्ञक भाव अज्ञानस्वरूप तम नाम से अभिहित है । इस प्रसंग में यह निर्देश करना सर्वथा समीचीन प्रतीत होता है कि अद्वैतवेदान्त दर्शनान्तर्गत माया की परिकल्पना मूलतः यहीं से ली गई है । यह नासदीय सूक्त वह आधारशिला है जिस पर इस अद्वैत वेदान्त दर्शन का प्रासाद निर्मित किया गया है । माया जगत् का उपादान कारण है—यह जगत् इसी माया के साथ अविभक्तरूप से विद्यमान था । अतः इसी हेतु इस कथन की सार्थकता है कि सृष्टि के पूर्व यह सृष्टि माया से आवृत्त थी । माया के आवरण के हट जाने पर प्रकाश में आने का नाम ही जगत् की उत्पत्ति है। यह स्पष्ट हो जाता है कि यह सूक्तीय ऋचा जगत् की उत्पत्ति उसकी पूर्वाव-स्थिति कौ स्वीकार करती है । माया आवश्यक है और सृष्टि अवरणीय अर्थात् आवरण का विषय है । जिस प्रकार दुग्ध से एकीभूत होने पर जल का पृथक्-करण कठिन है । जल पृथक्रूप से प्रतीत नहीं होता उसी प्रकार माया के साथ एकीभूत जगत् का पृथक रूप से दृश्यमान होने । माननीय बुद्धि की परिधि से परे था । जगत् की विविधता अनन्त और असीम है । ऐसी स्थिति अनन्त जगत् माया से आवृत्त था प्रलयावस्था में । यह कैसे सम्भव था और एतदर्थ जल का दुग्ध के द्वारा आवरकत्व का दृष्टान्त ठीक नहीं प्रतीत होता । यदि माया की शक्तियां दुग्ध के समान समझी जाय, तो सृष्टि के समय माया के द्वारा जगत् का प्रकाश में आना सम्भव नहीं हो सकता । माया न सत् है न असत् । इसकी तुलना अन्य जगत् की वस्तुओं से नहीं की जा सकती । इसके अतिरिक्त माया यथार्थ है और जगत् का उपादान कारण है ।

यद्यपि समस्त जगत् प्रपंच प्रलयावस्था में माया के साथ एकीभूत था तथापि ब्रह्म की महनीय तपस्या की असीम शक्ति से जगत् प्रपंच प्रकाश में आ गया ।

तपसस्तन्महिनाजायतैकम्

यह ब्रह्म की तपस्या केवल स्रष्टव्य जगत् प्रपंच की पर्यालोचनरूप मात्र थी।

"यः सर्वज्ञः सर्वविधस्य ज्ञानमयं तपः"

—मु० द० (१-१-९)

ब्रह्म का पर्यालोचन ही जगत् की उत्पत्ति में कारण है। अब प्रश्न यह उठता है कि यह पर्यालोचन क्यों ? सृष्टि की उत्पत्ति के अव्यवहित पूर्व ब्रह्म के मन में सृष्टि की रचना की इच्छा का आविर्भाव हुआ। ब्रह्म की इस इच्छा की उत्पत्ति का क्या कारण है ? प्रलयावस्था में मन-अन्तः करण सम्बन्धी वासना समग्र रूप में माया में विलीन थी। सामान्यायेक्षा के कारण एक वचन का प्रयोग किया गया है। अर्थात् वह अन्तःकरण सम्बन्धी वासना समस्त प्राणियों में समवेत थी। इसके द्वारा आत्मा के गुणाधारत्व का प्रव्याख्यान किया गया। अतीत कल्प में प्राणियों के द्वारा किया हुआ पुण्यात्मक कर्म ही भावी प्रपंच का प्रथम बीज है (रेतः) जिस कारण से सृष्टि हुई यह प्राणियों के द्वारा पूर्व कल्प में किया हुआ है। महाप्रलयावस्था में मन अर्थात् अन्तःकरण भी समाप्त हो जाता है और माया में समाहित हो जाता है। प्राणियों के द्वारा पूर्वजन्म के किए गए शुभाशुभ कर्म इसी मन अथवा अन्तःकरण में सन्निहित रहता है। वस्तुतः यही मन अर्थात् अन्तःकरण जिसमें प्राणि पूर्वजन्सकृत शुभा-शुभ कर्म समाविष्ट है और जो माया में लीन हो जाता है—भावी सर्ग का बीज बनता है। कथन का तात्पर्य यह है कि जब प्राणियों द्वारा पूर्व जन्म में सम्पादित कर्म परिपक्वावस्था में पहुंच कर सुख-दुःख फलप्रदेयावस्था को प्राप्त हो जाता है, तो ब्रह्म के मन में सृष्टि की इच्छा का आविर्भाव होता है। तदनन्तर ब्रह्म स्रष्टव्य वस्तु का ध्यान करता है। ब्रह्म की इच्छा और ध्यान दोनों परस्पर सम्बद्ध है। सृष्टि की इस प्रक्रिया का वर्णन तैत्तिरीय आरण्यक में पौनःपुन्येन किया गया है। तत्स्थानीय उदाहरण का उल्लेख इस प्रसंग में समीचीन समझता हूं। "सर्वप्रथम ब्रह्म, अगणित प्राणियों के रूप में अभिव्यक्त होने की इच्छा करता है। एतदर्थ वह तपस्या में निरत होता है और तपस्या

के माध्यम से ब्रह्म जगत् की सृष्टि करता है ।[१] योगीजन भी अपने प्रातिभचक्षुः से इसका साक्षात्कार करते हैं । ऐसा नासदीयसूक्त की चतुर्थ ऋचा में उल्लेख है ।[२] पूर्णरूप समाधिस्थ होकर योगियों ने साक्षात्कार किया कि समस्त जगत् शुभाशुभ कर्मों के बन्धन से आबद्ध है । कहने का सारांश यह है कि भौतिक जगत् की सर्ग स्थिति कर्माधीन है और वही इसका नियामक है । यह कर्म ही इस जगत् का अव्यक्त कारण है । जिस प्रकार सूक्ष्म बीज के अभ्यन्तर विशाल-वृक्ष की उत्पत्ति सन्निहित होती है उसी प्रकार कर्म में जगत् की रचना समाहित रहती है; लेकिन जब तक कर्म, माया में लीन रहता है तब तक वह जगत् अव्यक्त कारण कहलाता है । इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के उपरान्त हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि माया, मनः संकल्प तथा शुभाशुभ कर्म ही इस जगत् की सृष्टि के कारण हैं । इन तीनों की कार्यान्वयन प्रक्रिया बड़ी दुर्बोध और दुर्गम है । इतनी द्रुतगति से ये तीनों कारण परस्पर समन्वित होकर जगत् को उत्पन्न करते हैं कि मानवीय बौद्धिक चेतना से अत्यन्त दूर है । ऋषियों ने इसकी तुलना सौर प्रकाश की गति से की है अर्थात् जिस प्रकार सूर्य मण्डल से निःसृत प्रकाश क्षणमात्र में समस्त विश्व को व्याप्त कर लेता है उसी प्रकार मुहूर्तमात्र में ये तीनों उपर्युक्त निर्दिष्ट कारण इस भौतिक जगत् को प्रस्तुत कर देते हैं । विद्युत् सदृश जगत् की सृष्टि की गति है । अतः मानवीय मस्तिष्क की परिधि के परे यह है कि वह निर्णय कर सके कि पृथ्वी, आकाश तथा अन्तःरिक्ष इन तीनों की रचना में पूर्वापर सम्बन्ध क्या है? यह एक रहस्यात्मक गुत्थी है जिसका समाधान विवेकशून्य बुद्धि से नहीं हो सकता । सृष्टि में आविर्भूत तत्त्वों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—(१) शुभाशुभ कर्मों के फलों के भोक्ता के रूप में आत्मतत्त्व और (२) सुखदःखात्मक भोज्य् के रूप में पंचभूत ।[३] विवेचना का सस्वारस्य

---

१. सो कामपत बहुः स्यांप्रजायेयेति स तपो तप्यत
स तपस्तप्त्वेदं सर्वमसृजत यदिदं किं च ।
तैत्तिरीय आरण्यक, ८/६

२. हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ।
ऋग्वेद, १०/१२९/४

३. रेतोधा आसन्महिमान आसन् ।
ऋग्वेद, १०/१२९/५

यही है कि परमतत्त्व ब्रह्म ने जगत् की रचना की और रचना के उपरान्त सृष्टि में प्रविष्ट हो गया और अपने को भोक्ताआत्मतत्त्व और भोज्य पंचभूतों के रूप में अभिव्यक्त कर दिया। इसका उल्लेखात्मक समर्थन तैत्तिरीय आरण्यक ने की है।[1] इस सन्दर्भ में ज्ञातव्य यह तथ्य है कि भोज्य पंच भौतिक तत्त्वों की अपेक्षा भोक्ता आतमतत्व महत्तर तथा उच्चतर है।[2] नासदीयसूक्त के साक्षात्कर्त्ता ऋषि ने यह बार-बार उद्घोषित किया है कि जगत् सृष्टि रहस्यात्मक दुर्बोधगम्य पहेली है जिसका समाधान मानवीय बुद्धि की सीमा से परे है। यह एक ऐसी गुत्थी है कि स्वर्गादिक देवता भी इस सम्बन्ध में घोर अन्धकार में हैं, क्योंकि देवों का आविर्भाव पंच भूतों के अनन्तर हुआ। अतः पाश्चात्वर्त्ती होने के कारण देवता भौतिक जगत् के निमित्त और उपादान कारणों के विषय में बुद्धिसंगत समाधानात्मक विश्लेषण प्रस्तुत नहीं कर सकते। इस प्रस्तुत सूक्त की अन्तिम ऋचा स्पष्ट निर्विवादात्मक उल्लेख करती है कि ब्रह्म ने इस सृष्टि की रचना की। वही इसका स्थिति कर्त्ता और संरक्षण प्रदाता है। अतः वही इस सृष्टि का निमित्त और उपादान दोनों कारण हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि सांख्यदार्शनिकों तथा मीमांसा-समीक्षकों ने जिस बीज तत्त्व को पल्लवित तथा पुष्पवित कर अपने विवेचनात्मक उधान की निर्मिति की वही बीज इसी ऋग्वेदीय सूक्त में सन्निहित था। सांख्य प्रभृति दार्शनिकों की सृष्टि विषयक समीक्षा का निरूपण मैं आगे प्रस्तुत करने का प्रयास करूंगा।

ऋग्वेदीय लघुसूक्तों में सृष्टि-तत्त्व की समीक्षा

अदिति-सूक्त--ऋग्वेद के दशम मण्डल का ७२वां सूक्त है जो वैदिक वाङ्मय में अदिति-सूक्त के नाम से प्रख्यात है। यह सूक्त देवों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रकाश डाला है जो विचारणीय है। इस सूक्त में यह उल्लेख है कि समस्त देव-समुदाय की सृष्टि अदिति ने की। अदिति, दक्ष की दुहिता थी। इस देव-सृष्टि-प्रक्रिया में ब्रह्म उपादान कारण बना। यहां ब्रह्म, असत्

---

१. तत्सृष्टवा तदेवानुप्राविशद्।
तै० आ०, ८/६ (तैतिरीय आरण्यक)

२. प्रकृतिश्च प्रैज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्
ब्रह्मसूत्र, १/८/२३

प्रतीत होता है, क्योंकि वह नामरूपविभेद से शून्य है। अपर पक्ष में देव-गण नामरूप-उपाधियों से युक्त हैं। अतः यहां एक विरोधाभास उत्पन्न होता है कि असत्, सत् का उपादान कैसे हो सकता है? सत्तात्मक का आविर्भाव असात्तात्मक से कैसे? छान्दोग्य-उपनिषद के ऋषियों ने इस प्रश्न पर विवेचना प्रस्तुत की है जो इस प्रसंग में उद्धरणीय है।[1] यह असत् अथवा असत्तात्मक जिसका निर्देश उपर्युक्त सूक्त में किया गया है—अभेदावस्था अथवा भेदोपाधि विहीनता का परिचायक है। यदि इसे सत्य स्वीकार किया जाए तो अदिति से देवगण की सृष्टि कैसे सम्भव है? समाधान स्पष्ट है। अदिति मूलाधार हैं जिस आधार से देवों का आविर्भाव हुआ। असंगति दूर करने के लिए यह भी निर्देश किया गया है कि अदिति, ब्रह्म से आविर्भूत हुई और अदिति से समस्त देव समूह। तदनन्तर सृष्टि-प्रक्रिया चल पड़ी। दूसरे क्रम में विविध दिशाएं अस्तित्व में आई तथा तत्पश्चात् "वृक्ष-वनस्पतियां वृक्षों से पृथ्वी और पृथ्वी से विभिन्न दिशाओं का आविर्भाव हुआ। एक स्थान पर दिशाओं का अदिति से दूसरे स्थान पर उनका आविर्भाव पृथ्वी से वर्णित है। यहां कथन में विरोध तथा असंगति अवगत होती है और यह विरोधाभासात्मक उल्लेख अपनी परम पराकाष्ठा पर तब पहुंच जाता है जब यह कहा जाता है कि दक्ष की उत्पत्ति अदिति से और अदिति का आविर्भाव दक्ष से हुआ। यहां बौद्धिक विश्लेषण आवश्यकीय प्रतीत होता है, क्योंकि कर्मवाद के सिद्धान्त में एक कार्य है दूसरा कारण है और दोनों कार्यकारणभाव से आबद्ध है। सुप्रसिद्ध निरुक्तकार महर्षि यास्क ने अपने निरुक्त में इस विरोधाभास के समाधान की चेष्टा की है। उनका कथन है कि इस ऋचा का दो पक्षीय कथन है—

(१) अदिति दक्ष से, और

(२) दक्ष से अदिति का आविर्भाव।

अदिति, नित्य विश्वात्मक आत्म तत्त्व का प्रतिनिधित्व करती है और दक्ष, उस परम तत्त्व की प्रतिमूर्ति है। अतः दोनों के जन्यजनक भाव की संगति बैठ जाती है। दूसरे शब्दों में दोनों अदिति और दक्ष एक नित्य परम ब्रह्म तत्त्व है। मेरा वैयक्तिक यही विनम्र निवेदन है कि वैदिक वाङ्मयीय विरोधाभासात्मक

---

१. "सत्तवेव सोम्येदमग्र आसीत्"

छान्दो० उप०, ६/२/२

कथनों तथा गुत्थियों का समाधान आध्यात्मिक पृष्ठभूमि पर किया जा सकता है तार्किक बौद्धिक विश्लेषणों से नहीं ।

ऋग्वेदीय दशम मण्डल के लघु सूक्तों में १९०वां सूक्त का एक विशिष्ट महत्व है । यह सूक्त ऋत-सूक्त के नाम से प्रसिद्ध है । इस सूक्त की विशेषता यह है कि इसमें बड़ी सूक्ष्मता के साथ सृष्टि-प्रक्रिया का वर्णन प्रशंसनीय रूप से प्रस्तुत किया गया है । जगत् के आविर्भाव हेतु परम ब्रह्म घोर तपस्या में निरत होता है । तैत्तिरीय आरण्यक भी यह उल्लेख करता है कि ब्रह्म, तपस्या के उपरान्त इस जगत् की सृजन करता है ।[1] तपस्या के तुरन्त उपरान्त ऋत और सत्य का आविर्भाव होता है । ऋत, सन्निष्ठ मानसिक ध्यान का द्योतक है, तो सत्य, वाचिक सत्योच्चारण का । यह ऊपर निर्देश कर दिया गया है कि सृष्टि-सृजन-प्रक्रिया में तपस्या का सम्बन्ध सृजन के क्रम में आने वाले सम्भाव्य आवश्यकीय तत्त्वों के मानसिक चिन्तन से है । आरण्यक और उप-निषद् भी अपने उल्लेखों से इसका समर्थन करते हैं ।[2] दूसरी व्याख्या यह है कि ऋत और सत्य का आविर्भाव स्वयं प्रकाश ब्रह्म से हुआ—जो भौतिक जगत् का उपादान कारण है । इस विवेचना का विशदीकरण इस सन्दर्भ में किया गया है । विकास-क्रमानुसार दिन और रात्रि की उत्पत्ति हुई । तदनन्तर समुद्र और अन्तःरिक्ष अस्तित्व ग्रहण किए । तत्पश्चात् काल का सृजन हुआ । कालोपरान्त चराचर जगत् की उत्पत्ति हुई । इस सूक्त में यह स्पष्ट उद्घोषणा की गई है कि ब्रह्म ही परम तत्त्व और वही सभी का नियामक है । अन्ततो-गत्वा परमब्रह्म ने सूर्य और चन्द्रमा का सृजन पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा स्वर्ग के साथ किया । यह उल्लेखनीय है कि उसी ब्रह्म के नियन्त्रण में ही भावि सृष्टि-प्रक्रिया का चक्र गतिशील होता है । प्रत्येक प्रतिसर्ग के बाद होने वाली सृष्टि में तथा वर्तमान सृजन में पूर्ण साम्य रहता है । समस्त विश्व का नियन्ता ब्रह्म भव्य सृष्टि में किसी प्रकार की नवीनता का संचार नहीं कर सकता है ।

ऋग्वेद के दशम मण्डल का ८१वां सूक्त तथा ८२वां सूक्त भी जगत् की

---

१. "तपस्तप्त्वेदं सर्वमसृजत"

तैत्तिरीय आरण्यक, ८/६

२. "यस्य ज्ञानमयं तपः"

मुण्डक उप०, १/१/९

सृष्टि के विषय में पूर्ण प्रकाश डालते हैं। ये सूक्त देव विश्वकर्मा को समर्पित है, अतः उन्हीं के नाम से आख्यात हैं। यहां विश्वकर्मा शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है—

(१) विश्वकर्मा प्रसिद्ध वैदिक ऋषि, भुवन के पुत्र थे।
(२) विश्वकर्मा, ब्रह्म हैं जिन्होंने जगत् की संरचना की है।

भुवन के पुत्र विश्वकर्मा ने समस्त जगत् को यज्ञीय हविष्य के रूप में अग्नि को समर्पित कर दिया। तदनन्तर विश्वकर्मा स्वयमेव अग्नि में प्रविष्ट हो गया। वही दृश्यादृश्य जगत् का निर्माणकर्त्ता था। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि विश्वकर्मा द्विविध शरीर धारण किया था। एक शरीर को अग्नि में यागिक हवि के रूप समर्पित किया और दूसरे शरीर से जगत् की संरचना।

विश्वकर्मा स्वर्ग के रूप वसु की अभिलाषा की और जगत् के द्वारा अग्नि को व्याप्त कर दिया। तत्पश्चात् जगत् में प्रविष्ट हो गया और उसे स्वयं हवि के रूप में अग्नि को समर्पित कर दिया। कहने का तात्पर्य कि विश्वकर्मा का जगत् में प्रविष्ट होना ही उसका अग्नि में प्रविष्ट होने के सदृश है। अब विश्वकर्मा, ब्रह्म के रूप में सुप्त सृष्टि प्रक्रिया को प्रलयावस्था में नष्ट कर देता है। यह भी सृष्टि का विनाश यज्ञीय अग्नि में हवि-समर्पण के समान ही है। वह विश्वकर्मा संहार कर्त्ता और सृष्टा दोनों है। वह अद्वितीय है। सृष्टि के प्रारम्भ में उसे, एक अपने को अनेक के रूप में व्यक्त करने की इच्छा जागृत हुई। उसके अन्तःचेतना में भोगेच्छा उठी। अतः वह अपने द्वारा निर्मित जीवों में प्रविष्ट हो गया और उसी को संज्ञा जीवात्मा हो गई। इसका उल्लेख तैत्तिरीय आरण्यक ने किया है।[1]

प्रस्तुत सूक्त का सारांश यह है कि परमब्रह्म, विश्वकर्मा प्रलयकाल में समस्त सृष्टि का संहार कर देता है। तदनन्तर सृष्टि हेतु दैवी प्रेरणा के कारण वह सृष्टि-प्रक्रिया का सूत्रपात करता है। अन्तिम स्तर पर वह जगत्

---

१. सोऽकामयत बहुः स्यां प्रजायेयेति स तपोऽतपत स तपस्तप्त्वेदं
सर्वमसृजत यदिदं किं च तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्।
तैत्तिरीय आरण्यक, ८/६

में प्रविष्ट हो जाता है और जीवात्मा के रूप में व्यक्त हो जाता है। इस प्रसंग में एक विचारणीय संदेहात्तक प्रश्न उपस्थित होता है कि बिना आधार तथा सृष्टि-निमित्त-उपादानात्क तत्त्वों के परमब्रह्म विश्वकर्मा सृष्टि संरचना कैसे कर सकता है ? स्थूल जगत् में यह दृष्टिपथ में आता है कि कुम्भकार घट- निर्मित के लिए एक निश्चित स्थान पर आसन ग्रहण कर मिट्टी से घड़ा बनाता है। ठीक उसी प्रकार जब विश्वकर्मा द्यावापृथ्वी अन्तरिक्ष की निर्मिति के लिए प्रवृत्त होता है तब कहां स्थान ग्रहण करता है ? उस समय निर्माण के उपादान तत्त्व कौन होते हैं ? उपादान तत्त्व अस्तित्व में कैसे आए ? यह सत् था या असत् ? ये दोनों उपपत्तियों परस्पर विरुद्ध हैं। यदि इसे सत् स्वीकार किया जाता है, तो यह वैदिक सूक्तों में स्वीकृत मान्यता प्राप्त अद्वैतवाद के विरुद्ध पड़ता है और यदि असत् माना जाए, तो उपादान तत्त्वों को असत् स्वीकार करना पड़ेगा जग उनसे निर्मित पृथ्वी-अन्तरिक्ष-स्वर्गादि प्रत्यक्षतः सन् रूप में भासित होते हैं। यह कर्मवाद का सर्व-स्वीकृत सिद्धान्त है कि प्रकृति और विकृति में अर्थात् कारण और कार्य में पूर्ण साम्य है। उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न वैदिक ऋषियों के मस्तिष्क में स्फुरित हुए थे। अतः इस सूक्त में उन्होंने इन प्रश्नों का बौद्धिक विश्लेषण प्रस्तुत करने का श्लाघनीय प्रयास किया है। यह बार-बार उल्लिखित है कि परमब्रह्म, विश्वकर्मा विश्वात्मा स्वरूप है।[1] दृश्यादृश्य जगत् उस दैवी शक्ति की अभिव्यक्ति है। इस परिप्रेक्ष्य में कुम्भकार अथवा कलाकार से उसकी तुलना कथमयि समीचीन नहीं प्रतीत होती। अतः इसी तथ्य से ऊपर निर्दिष्ट संदेहास्पद प्रश्नों का समाधान हो जाता है। इस सूक्त में यह वर्णित है कि उस ब्रह्म के चक्षु, मुख, बाहु एवं पाद सर्वत्र विद्यमान है।[2] और वही सर्वव्यापक इस जगत् का रचयिता तथा संहर्त्ता है। यहां यह उल्लेखनीय है कि यह जगत् जो ब्रह्म से निःसृत होता है उसी में सन्निहित रहता है। सृजन-प्रक्रिया को विस्तृति प्रदान करने के लिए वह अन्तरिक्ष को गतिशील बनाता है। वह पृथ्वी के बाह्याभ्यन्तर विद्यमान है। वही पृथ्वी स्वर्गादि की सृष्टि करता है उसका कोई सृष्टा नहीं है। कुम्भकार के दृष्टान्त के बाद एक ऋचा में विश्वकर्मा की तुलना शिल्पकार (काष्ठनिर्माता) से प्रस्तुत कर पृष्ठभूमि में यह समस्या

१, ऋग्वेद, १०/८१/३

२. वही।

उपस्थित की गई है कि जब व्यक्ति विशेष को विशाल भवन का निर्माण करना होता है तो वन से एक विशाल वृक्ष की व्यवस्था करता है। वृक्ष को वह स्तम्भों का रूप प्रदान करता है जिन पर समस्त भवन की आधारशिला स्थापित की जा सके। इस विचार से प्रेरित पुनः निम्नलिखित प्रश्न उठ खड़े होते हैं—

> वह कौन सा वन था जिसने पृथ्वी आदि के निर्माण के लिए वृक्ष लाया गया ?
> वह कौन सा वृक्ष था जो निर्माण का आधार बना ?
> इत्यादि इत्यादि ।

इन प्रश्नों का समाधान तैत्तिरीय ब्रह्मण में प्रस्तुत किया गया है। "ब्रह्म ही वन था। ब्रह्म ही वृक्ष था जिससे उसने पृथ्वी आदि का निर्माण किया।"[1] उपर्युक्त कथन का तात्पर्य यही है कि परमब्रह्म ही जगत् का निमित्त और उपादान दोनों कारण है। यह निर्विवादात्मक तथ्य है कि मकड़ी के शरीर से जाल की उत्पत्ति होती है और वह जाल अन्ततोगत्वा मकड़ी के शरीर में समाहित हो जाता है जिससे निर्गत हुआ। एक ही मकड़ी के शरीर से की निर्गति और उसमें उसका समावेश यह सिद्ध कर देता है कि मकड़ी का शरीर ही जाल का निमित्त और उपादान दो कारण हैं। सांख्य दर्शन और अद्वैत वेदान्त की यह आधार चिन्तन प्रक्रिया है कि जो वस्तु विशेष अपने उपादान कारण से उत्पन्न होती है और विनाशावस्था में उसी कारण में लीन हो जाती है। अतः कार्य की उत्पत्ति और विनाश दोनों उपादान कारण से आबद्ध हैं। निमित्त कारण उस कार्य को मात्र संरक्षण प्रदान करता है। औपनिषदिक ऋषियों ने यह बार-बार उद्घोषणा की है कि सृष्टि के समय यह जगत् परब्रह्म से निःसृत होता है और प्रलयावस्था में उसी में लीन हो जाता है। श्रीमद्भागवतगीताकार ने भी इसका समर्थन किया है।[2] इस प्रकार मकड़ी

---

१. "ब्रह्म वनं ब्रह्म स वृक्ष आसीत्
यतो द्यावापृथिवी निस्टतक्षुः ।"

तैत्तिरीय ब्राह्मण, २/८/९/६.

२. सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ।

—गीता, ९/७.

और उसके जाल के दृष्टान्त पर ब्रह्म को जगत् का निमित्त और उपादान कारण कहा गया है। वैदिक ऋषियों ने इसी दृष्टान्त को ध्यान में रखकर रहस्यात्मक रूप से ब्रह्म को ही जगत् का दोनों कारण निर्धारित किया है।

सृष्टि के प्रारम्भ में विश्वकर्मा ने जल का सर्वप्रथम सृजन किया। इस कथन का समर्थन तैत्तिरीय संहिता[1] तथा मनु संहिता[2] ने समर्थन किया है। द्वितीय चरण पृथ्वी और स्वर्गादि लोकों की सृष्टि की जो जल के सतह पर संतरण करते थे। तत्पश्चात् उसने इन्हें एक स्थूल पिण्ड में परिवर्त्तित कर दिया और उनकी विस्तृति प्रारम्भ हो गई। इस सूक्त के ऋषि ने उल्लेख किया है कि अन्य वस्तुओं की सृष्टि के पूर्व जल ने परमब्रह्म, विश्वकर्मा को गर्भाण्ड में वहन किया। वह गर्भाण्ड समस्त देवताओं का सामुदायिक प्रतिनिधित्व करता था। उस अजन्मा विश्वकर्मा के नाभि में एक अण्ड था और उसी में सभी प्राणी सन्निहित थे। उपर्युक्त कथन की नयी व्याख्या भी प्रस्तुत की गई कि जन्मरहित ब्रह्म जल की सतह पर शयनावस्था में विद्यमान था। उसी जल में अण्ड रूप में समस्त प्राणियों के आश्रय स्थान जगत् को स्थापित किया गया। इस वर्णन की समता हिरण्यगर्भसूक्त से पूर्ण रूप से है। मनुसंहिताकार ने भी अपने सृष्टि वर्णन में लिखा है।[3] यह उल्लेखनीय तथा स्मरणीय तथ्य है कि विश्वकर्मा परमब्रह्म हैं जिसने इस जगत् की रचना की, क्योंकि यह शब्द विश्वकर्मा पौराणिक साहित्य में भी आया है। पुराणों में उल्लेख है कि विश्वकर्मा, ब्रष्टा के पुत्र हैं और महत्तम भवन निर्माता है। वैदिक वाङ्मय के पाश्चात्य विद्वान डॉ० मैकडानेल ने विश्वकर्मा की तुलना एक साधारण भवन निर्माता से की है।[4] यह सर्वथा असमीचीन है, क्योंकि वे विद्वान् भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि के अभाववश, वैदकिसूक्तों में अनुस्यूत दार्शनिक रहस्यात्मक गुत्थियों को नहीं सुलझा सके। ऋग्वेदीय सूक्तों में

---

१. "आपो वैदभग्रे"

—तैत्तिरीय संहिता, ७/१/५/१.

२. अप एव ससर्जादौ।

— मनु० सं०, १/८.

३. मनु स्मृति, १/८/६.

४. वैदिक माइथालजी, ए० ए० मैकडानेल, पृष्ठ ११.

ऋषियों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि जगत् संरचना नहीं है प्रत्युत परमब्रह्म की दैवी अभिव्यक्ति है। वह अद्वितीय है। अद्वितीय ब्रह्म ही जगत् का निमित्त और उपादान दोनों कारण हैं। इसके अतिरिक्त जगत् नश्वर और क्षणभंगुर है। जगत् असत् है। यही कारण है कि वैदिक ऋषियों ने इस असत् जगत् को कम महत्व प्रदान किया और इसी कारण जगत् की सृष्टि के सम्बन्ध वेदों में परस्पर विरुद्ध विरोधात्मक भिन्न-भिन्न विवेचन मिलते हैं जिनका समाधान दार्शनिक प्रक्रिया से होना चाहिए। यही मेरा नम्र निवेदन है।

अथर्ववेदीय-सृष्टि-विषयक विवेचना

इस परिच्छेद में हम अथर्ववेदीय सूक्तों में विचारित सृष्टि सम्बन्धी विवेचना को प्रस्तुत करेंगे। यहां यह उल्लेख करना युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि प्रसिद्ध पाश्चात्य जर्मन संस्कृत विद्वान् डॉ० एम० विन्टरनित्स अपने ख्याति-प्राप्त-पुस्तक "ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिट्रेचर" में अथर्ववेद की सृष्टि विषयक दार्शनिक विवेचना का बड़ा अवमूल्यन किया है,[1] लेकिन वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। स्थानाभाव के कारण थोड़े में हम इसका दिग्दर्शन कराने का प्रयास करेंगे।

अथर्ववेद के २०वें काण्ड के ५३वां सूक्त काल की महिमा का वर्णन करता है। इसी हेतु यह कालसूक्त के नाम से प्रसिद्ध है। इस सूक्त के ऋषि का कथन है कि काल ही परब्रह्म है।[2] अतः उसी काल से जगत् का आविर्भाव हुआ है। यहां काल, परब्रह्म से जगत् के आविर्भाव का तात्पर्य यह है कि जगत् उसकी अभिव्यक्ति है। काल की गति कल्पनातीत है, अतः रहस्यात्मक ढंग से इसकी तुलना सूर्य और अश्व से की गई है। काल ने चराचर प्राणियों को जन्म दिया। उसी ने पृथ्वी, स्वर्गादि विविध लोकों का सृजन किया। वही काल भूत-भव्य जगत् का आधार है। काल ही प्रजापति ब्रह्मा का जन्म-

---

१. द्रष्टक—विन्टरनित्स "ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिट्रेचर"
पृष्ठ १४९-५०

२. अथर्व० १९/५३

दाता है। काल से ही जल की उत्पत्ति हुई। भारतीय धर्मशास्त्रों के निर्माताओं ने इसका अक्षरशः अनुसरण किया है। अथर्ववेदीय सूक्तों की विवेचना क्रम से यह स्पष्ट है कि ऋग्वेद तथा मनुसंहिता से इस वर्णन का पूर्ण साम्य है। अथर्ववेद ऋषियों की इस विचारधारा-काल ने जगत् की सृष्टि की—का प्रभाव बड़ा दूरगामी सिद्ध हुआ। कालानन्तर में विकसित होने वाले विविध साहित्यों तथा दार्शनिक चिन्तन की सम्प्रदाय गत धाराओं पर इस विचार का पूर्ण प्रभाव पड़ा। महाभारतकार ने यह उच्च स्वर से उद्घोषित किया है कि काल अनादि है, अनन्त है और इसी से जगत् का आविर्भाव हुआ। इस जगत् की सर्गस्थितिसंहृति काल में समाहित है।[1] काल शाश्वत और सर्वव्यापक है। यह जगत् नित्यप्रवाहरूप में गतिशील काल के चक्र से आवद्ध है। अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित है। श्रीमद्भागवद्गीता के एकादश अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि "मैं काल हूं। मैं सम्पूर्ण जगत् का सृजन, पालन और संहार करने वाला साक्षात् परमेश्वर हूं। इस समय मुझको तुम इन सबका संहार करने वाला साक्षात् काल समझो"।[2] वैदिक तथा पौराणिक साहित्य के अतिरिक्त भारतीय दर्शन की विविध शाखाओं ने अथर्ववेदीय इस काल की महिमा का साक्षात्कार अपने दार्शनिक विवेचन की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया। वैशेषिक दर्शन का कथन है कि काल समस्त कार्य का निमित्त कारण है और जागतिक परम्परा का यही स्थितिकारक आधार है। मीमांसा दर्शन काल को चेतन ब्रह्म और माया के बीच कड़ी के रूप में स्वीकार करता है। योगदर्शनानुयायी काल की स्वतन्त्र सत्ता मानते हैं। जिसकी मूल प्रकृति असत् है। काल सत् है या असत्? भारतीय दार्शनिक प्रासाद की निर्मिति में इसकी क्या भूमिका है? यह मेरे शोध-प्रबन्ध की परिधि के बाहर है। अतः हम इसकी विवेचना में प्रवेश नहीं करते, पर कथन का तात्पर्य एतावन्मात्र है कि भारतीय दर्शन की विविध समस्याओं का मूल

---

१. महाभारत शान्तिपर्व, १३९/४९-५९

२. "कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान् सह समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।

भगवद्गीता, ११/३२

अहमेवाक्षयः कालो धाताऽहं विश्वतोमुखः॥

वही, १०/३३

उद्गम स्रोत वैदिक साहित्य है। अतः उससे पृथक् होकर किसी दार्शनिक समस्या का विवेचन समीचीन नहीं है और न वह विद्वज्जन समादर का पात्र नहीं हो सकता है।

अथर्ववेद के रोहित-सूक्त में भी जगत् की उत्पत्ति की दार्शनिक विवेचना प्रस्तुत की गई है। 'रोहित' वह देव विशेष है जो उदीयमान सूर्य सदृश द्योतमान है अथवा रोहित, सूर्य देव की प्रमुख गति का बोधक है जिसमें देवता विशेष अधिष्ठित हैं। यहां भी रोहित, परब्रह्म का प्रतीक है औ उसीसे इस जगत् की उत्पत्ति हुई है। सभी देवी शक्तियां उसी रोहित में प्रतिष्ठित हैं। पाश्चात्य संस्कृत विद्वान् डॉ० विन्टरनित्स को यह बड़ी असंगति प्रतीत होती है कि विविध देवों को जगत् की उत्पत्ति का कारण स्वीकार किया जाए।[१] यह बड़े दुःख के साथ निवेदन करना पड़ता है कि उन पाश्चात्य संस्कृत विद्वानों के मतानुयायी कुछ भारतीय विद्वान् भी इस भ्रामक मत का पोषण करते हैं, लेकिन आज आधुनिक संस्कृत साहित्य के समीक्षकों में आमूल परिवर्तन हुआ है और वे वैदिक सूक्तों में सन्निहित दार्शनिक तथ्यों के मूल्यांकन में प्रवृत्त हो गए हैं।

ऋग्वेदीय तथा अर्थ अथर्ववेद के सूक्तों में वर्णित सृष्टि-प्रक्रिया का विवेचन करने के उपरान्त प्रमुख ब्राह्मण-ग्रन्थों और उपनिषद् साहित्य के दार्शनिक विश्लेषण से समन्वित सर्ग वर्णन को प्रस्तुत करना हम सर्वथा युक्तिसंगत् समझते हैं अतः इसी उच्छेद में उसी को प्रस्तुत करेंगे। यद्यपि वैदिक संहिताओं और ब्राह्मणों में सृष्टि-वर्णन के सम्बन्ध में प्रत्यक्षतः विरुद्ध प्रतीत होने वाले विवेचनों को प्रस्तुत किया गया है, परन्तु हम यहां निवेदन कर देना सर्वथा समीचीन समझते हैं कि उन विवेचनों में आभास मात्र है वस्तुतः विरोध नहीं है। शतपथ-ब्राह्मण का वर्णन हिरण्यगर्भ सूक्त से बड़ी समता रखता है। शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि सृष्टि से पूर्व समस्त जगत् जल के साथ अभिन्न था अथवा उसी में सन्निहित था। जल ने जगत् और उसके वासियों को आच्छादित कर रखा था। जल में अधिष्ठित देव के मन में सर्वप्रथम

---

१. द्रष्टव्य—विन्टरनित्स "ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिट्रेचर" पृष्ठ १५३

विभिन्न विविधा से युक्त जगत् के रूप में अभिव्यक्त होने की अभिलाषा जागृत हुई। अविच्छिन्न अभिलाषा ने उनके मन में विश्रान्ति उत्पन्न कर दी। देवता भावि सृष्टि से सम्बद्ध आवश्यक वस्तुओं के मानसिक चिन्तन के रूप में तपस्या में रत हो गए। परिणामस्वरूप एक स्वर्ण अण्ड का आविर्भाव हुआ और वह अण्ड एक वर्ष पर्यन्त जल के ऊपर संतरण करता रहा। तत्पश्चात् पुरुष रूप में प्रजापति का जन्म हुआ। प्रजापति ने उस स्वर्ण अण्ड को दो भागों में विभक्त कर दिया। प्रजापति आश्रयहीन हो गया और पुनः द्वितीय वर्ष पर्यन्त जल में तैरता रहा। एक वर्ष व्यतीत हो जाने पर प्रजापति ने भूः, भुवः एवं स्वः तीनों शब्दों का उच्चारण किए और ये शब्द पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं स्वर्ग में परिवर्त्तित हो गए। तदनन्तर सृष्टि-प्रक्रिया गतिशील हो गई। पुनः वे तीन उपर्युक्त उच्चरित शब्द पांच ऋतुओं का रूप धारण कर लिए। एक वर्ष के बाद प्रजापति ने उस स्वर्ण-अण्ड का परित्याग कर दिया और पृथ्वी अन्तरिक्ष तथा स्वर्गादि का आश्रय ग्रहण कर जल से ऊपर उठ खड़ा हो गया। दूसरे स्तर में उस प्रजापति को अन्य चेतन प्राणियों के सृजन की अभिलाषा जागृत हुई। उन्होंने स्रष्ट्व्ययोजना का मानसिक चिन्तन प्रारम्भ कर दिया। प्रजापति शान्त हो गए। तत्पश्चात् अपने मुख से देवी-देवताओं की सृष्टि की जो स्वर्ग के वासी बने। अपने शरीर के अधोभाग से दानवों का सृजन किया और वे पृथ्वी के निवासी बने। अवान्तरीय क्रम से उन्होंने दिन, रात्रि और वर्ष को उत्पन्न किया उसके बाद अग्नि और अन्य देवों को बनाया।

वर्णन की अपेक्षा वैदिक सात्यि-संहिताओं, ब्राह्मणों एवं उपनिषदों-की सृष्टि-विवेचना वैदिक ऋषियों के दार्शनिक आध्यात्मिक चिन्तन की पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित हैं। विस्तृत विधि-विधानों से युक्त वैदिक यज्ञों के स्थूल सम्पादन की तुलना उनके मानसिक चिन्तन से की गई है। यह उद्घोषणा स्पष्ट रूप से की गई है कि स्थूल से वैदिक यज्ञों के सम्पादन से जिस आध्यात्मिकता की उपलब्धि होती है उसकी प्राप्ति उन यज्ञों के ज्ञान और मानसिक चिन्तन से भी होती है। मानसिक ध्यानात्मक चिन्तन की प्रक्रिया में यज्ञीय द्रव्यों की अनिवार्यता अपरिहार्य थी। अध्वर्यु राजा अथवा यजमान ध्यानात्मक चिन्तन में अपने को समस्त सृष्टि-क्रम से अभिन्न अनुभव करने लगे। यहां तक यागीय वलिपशु भी समस्त जगत् के प्रतीक के रूप में समझे जाने लगे। वैदिक

यज्ञ के इस आध्यात्मिक पक्ष की विवेचना बड़े विस्तृत रूप से बृहदारण्यक उपनिषद के प्रारम्भ में दी गई है। यज्ञों में इसी जागतिक चिन्तन की प्रक्रिया को सुगम बनाने के लिए वैदिक साहित्य में सृष्टि-प्रक्रिया का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। सृष्टि-वर्णन के विषय में उपनिषदों में दो सिद्धान्त मिलते हैं—

(१) भौतिक, तथा
(२) आध्यात्मिक ।

भौतिक पक्षानुसार औपनिषदिक ऋषियों ने जगत्-सृष्टि, भौतिक तत्त्वों—

(१) जल (आप्)[1]
(२) वायु[2]
(३) अग्नि[3]
(४) आकाश[4]
(५) पृथ्वी[5]
(६) मूल अण्ड, और
(७) प्राण-वायु ।

से बताई है। आध्यात्मिक मतानुसार—

(१) परब्रह्म अथवा आत्म-तत्त्व, तथा
(२) परमेश अर्थात् शिव

को इस सृष्टि का निमित्त और उपादान कारण बताया गया है। प्रत्यक्षतः विरुद्ध प्रतीत होने वाला इस वैदिक ऋषियों के वर्णन ने पाश्चात्य वैदिक विद्वानों तथा उनके मतानुयायियों को आश्चर्य में डाल दिया है। ऋषियों ने इस वर्णन का बौद्धिक विश्लेषण नहीं किया है। उनका प्रधान प्रतिपाद्य आत्म-तत्त्व के साथ परमब्रह्म के एकीकरण का प्रत्यक्षीकरण करना था। जगत् की नश्वरता तथा असतात्मकता का प्रतिपादन उपनिषद् दर्शन का प्रमुख विषय है। परब्रह्म सत् है। इसके अतिरिक्त जगत् प्रकृतितः असत् और नश्वर है। अतः

---

१. बृहदारण्यक उप०, ५/५/१.
२. छान्दोग्य उप०, ४/३/१
३. कठोपनिषद्, २/५
४. छान्दोग्य उप०, १/९/१
५. तैत्तिरीय उप०, २/७

वैदिक दार्शनिक ने इस असत् क्षणभंगुर जगत् के कारण के निर्धारण को पर्याप्त प्रश्रय नहीं दिया। कारण है कि चिन्तन की प्रासंगिक प्रक्रिया में औपनिषदिक ऋषियों ने जगत् की उत्पत्ति विभिन्न कारणों से बतलाई है। उन्होंने इस प्रश्न को यथेष्ठ महत्व न प्रदान दिया। अतः उनके विविध सृष्टि-विवेचन को समन्वयात्मक रूप देने का प्रयास करना समीचीन नहीं प्रतीत होता।

सांख्य-सृष्टि-प्रक्रियाः

वैदिक ऋषियों की सृष्टि-विषयक विचारधारा को प्रस्तुत करने का मैंने लघुतम प्रयास पूर्व अनुच्छेदों में किया है। थोड़े में औपनिषदिक चिन्तन प्रक्रिया पर भी प्रकाश डाला है। मैंने बार-बार उल्लेख किया है कि प्राचीन वैदिक मनीषियों के सृष्टि-सम्बन्धी विचार तथा चिन्तनों को यथावत् वर्णन कर देना आधुनिक युग के दार्शनिक तथा वैज्ञानिक की जिज्ञासा को शान्त नहीं कर सकता है। आज के विद्वान् तथा वैज्ञानिक जिस प्रक्रिया से किसी विषय विशेष विचार करते हैं, वैदिक मनीषा की प्रक्रिया सर्वथा भिन्न है। सृष्टि के विषय में उन लोगों ने भिन्न प्रकार से चिन्तन तथा मनन किया है। मैंने उल्लेख किया है कि वैदिक ऋषियों ने समग्र जगत् के साथ व्यक्ति के एकीकरण का चिन्तन किया है। उन्होंने बतलाया है कि आध्यात्मिक चिन्तन का प्रमुख लक्ष्य है कि व्यक्ति अपने को जगत् के साथ एक करके चिन्तन करें। अतः उन्होंने इसी चिन्तन के साथ सृष्टि वर्णन को जोड़ दिया है। अतः स्पष्ट है कि उन ऋषियों ने सृष्टि-प्रक्रिया पर पृथक् रूप से विचार यथा चिन्तन नहीं किया है। सृष्टि वर्णन को उन लोगों ने मानवीय जीवन के परम लक्ष्य, परब्रह्म के साक्षात्कार के सहायक विषय के रूप में लिया है। इसे प्रधान विषय नहीं बनाया है।

भारतीय दर्शन की प्रत्येक आस्तिक तथा नास्तिक सम्प्रदायगत शाखा ने सृष्टि पर अपने विचार प्रस्तुत किया है। सांख्य, मीमांसा, वेदान्त, न्याय, वैशेषिक, योग प्रभृति आस्तिक दर्शनों तथा बौद्ध, जैनादि नास्तिक दर्शनों ने बड़े विस्तार से अपनी चिन्तन-प्रक्रिया में सृष्टि वर्णन विषय पर अपने-अपने मत प्रकाशित किए हैं। यहां यह उल्लेख करना अनावश्यक प्रतीत है कि सभी दर्शनों के मतों में इस सृष्टि वर्णन के सम्बन्ध में मूलरूप से बड़ा सैद्धान्तिक मतभेद है। सृष्टि-प्रक्रिया के विषय में सांख्य दर्शन का विचार बड़ा बौद्धिक

तथा वैज्ञानिक है। इस दर्शन के मत में तथा आधुनिक वैज्ञानिकों की चिन्तन में बड़ा वैचारिक साम्य है। सबसे बड़ी विलक्षण बात तो यह है कि हमारे पौराणिक साहित्य के निर्माता इस सांख्य दर्शन की सृष्टि विषयक विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित हुए हैं। यदि कह दिया जाए कि पुराण रचयिता सृष्टि के सम्बन्ध में एकमात्र इसी दार्शनिक चिन्तनधारा से प्रभावित हुए हैं अन्य से नहीं तो यह भी कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। इसी हेतु मैं भारतीय दर्शन की आस्तिक तथा नास्तिक सम्प्रदाय गत मतों को प्रस्तुत करते समय सर्वप्रथम स्थान सांख्य विचारधारा को दिया है और उसी को सबसे पहले प्रस्तुत करने का प्रयास करता हूं; क्योंकि पौराणिक सृष्टि वर्णन को समझने के लिए सांख्य दर्शन के द्वारा निर्दिष्ट सृष्टि विद्या को मूल से समझना अत्यन्त अपरिहार्य है। सांख्य का प्रभाव पुराणों के ऊपर विशेष रूप से पड़ा है जिसका प्रत्यक्षीकरण प्रत्येक आलोचक को अल्प प्रयास से सुलभ हो सकता है।

सांख्य दार्शनिक अपनी चिन्तन प्रक्रिया में यथार्थवादी है। वे जगत् को असत् में स्वीकार नहीं करते हैं। इसके विपरीत उन्होंने जगत् को सत् रूप में स्वीकार किया है। अतः उन दार्शनिकों ने सृष्टि के चिन्तन के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया है। यही उन चिन्तकों की जगत् के अविर्भाव के विषय में आधारभूत मूल सिद्धान्त है। इस दर्शन के विचारकों ने इस समस्या के समाधान हेतु बड़ा कठोर श्रम किया है। अपने गवेषणा के क्रम में सांख्य दार्शनिकों का मत है कि समग्र जागतिक सृष्टि, सत्व, रज तथा तम इन तीन परस्पर विरुद्धात्मक गुणों के समन्वय से हुई है। ये तीन गुण एक दूसरे से सर्वथा विरुद्ध हैं और इनका विरोध-क्रम अविच्छिन्न है। इन तीनों में पारस्परिक अन्योन्याश्रित संबंध है। यद्यपि ये परस्पर विरुद्ध प्रकृति के हैं, तथापि किसी वस्तु विशेष की सृष्टि के लिए इनका पारस्परिक समन्वयात्मक सहयोग अपेक्षित तथा अनिवार्य है। यह जागतिक सृष्टि-प्रक्रिया अभिव्यक्त होती है, प्रवाहित होती तथा स्थिरत्व को प्राप्त करती है। परिणामस्वरूप सांख्य दार्शनिकों ने यह संकेत किया है कि तीनों गुण का धर्म जिसके कारण जगत् तीनों उपर्युक्त स्थितियों से प्रवाहित होता रहता है। तीनों गुणों की साम्यावस्था इस दर्शन में प्रकृति कहलाती है। सृष्टि का मूल कारण यही प्रकृति है। यह अविच्छिन्न रूप से जागतिक सृष्टि के रूप में प्रवाहित होती रहती है। सृष्टि की प्रारम्भिक अवस्था में परस्पर विरुद्ध गुणों साम्यावस्था में रहते हैं। दूसरे शब्दों

में प्रकृति, पूर्ण सन्तुलन रहती है। परिवर्तन प्रकृति का स्वभाव सिद्ध व्यापार है और उस अवस्था में वह परिवर्तित होती रहती है, लेकिन यह उल्लेखनीय है कि यह परिवर्तन जातिय है विजातीय नहीं। इसकी कोई व्यावहारिक उपयोगिता नहीं। यह प्रकृति का परिवर्तन पुरुष की सुख-दुःखात्मक अनुभूति को उपस्थित नहीं करता अथवा पुरुष के मोक्ष के हेतु नहीं होता। यह अचेतन के प्रेरणा से प्रेरित होता है। इसका दो उद्देश्य हैं प्रथम पुरुष की सुख-दुःखात्मक अनुभूति को सुलभ करना और द्वितीय पुरुष के मोक्ष को प्रस्तुत करना। यद्यपि प्रकृति अचेतन है, तथापि इसका प्रत्येक परिवर्तन इन्हीं उपर्युक्त दोनों अभिप्रायों की पूर्ति हेतु होता है :

सृष्टि के प्रारम्भ में प्रकृति की सन्तुलितावस्था अथवा साम्यावस्था में विक्षोभ उत्पन्न होता है। इस विक्षोभ के वाह्य कारण के विषय में सांख्य दार्शनिकों में मतैक्य नहीं है। इस विवादास्पद विषय में प्रवेश करना अप्रासंगिक होने के कारण समीचीन नहीं प्रतीत है। विक्षोभावस्था में गुण विशेष शेष गुणों दो को अभिभूत कर देता है। और पणिामस्वरूप चौबीस तत्त्वों का आविर्भाव होता है। प्रकृति का कोई कारण नहीं है, लेकिन यह कारणों का कारण है। अन्तिम कारण निष्कारण होता है। सृष्टि-प्रक्रिया का स्वरूप निम्नलिखित है—

प्रकृति की सर्वप्रथम विकृति महत् या बुद्धि तत्त्व है। यह तत्त्व समस्त सृष्टि को व्याप्त कर लेता है और इसमें सत्व गुण का प्राधान्य रहता है। इसके अनन्तर अहं तत्त्व की अभिव्यक्ति दो स्तरों में होती है। इसी अहंतत्त्व से शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध पंच तन्मात्राओं और एकादश इन्द्रियों का आविर्भाव होता है। एकादश इन्द्रियों में पांच ज्ञानेन्द्रियों, पांच कर्मेन्द्रियों तथा संकल्प विकल्पात्मक मन सम्मिलित हैं। पंच तन्मात्राएं, पंचभूतों—आकाश, वायु, अग्नि, वायु एवं पृथ्वी—की विकृतियाँ हैं। इन्हीं चौबीस तत्त्वों की आधारशिला पर सांख्य-दर्शन का प्रसाद खड़ा किया गया है और यही इस दर्शन के मूल स्तम्भ हैं। इन चौबीस तत्त्वों के अतिरिक्त एक अन्य आत्म तत्त्व है जो पुरुष इस अभिधान से अभिहित है। पुरुष चेतन है। प्रकृति जड़ है। दोनों का संयोग इसीलिए होता है कि पुरुष यह साक्षात्कार कर ले कि प्रकृति मुझसे भिन्न है। यही भिन्नता का साक्षात्कार अथवा दर्शन पुरुष का कैवल्य है।[1]

---

१. साँख्य कारिका

प्रकृति सुकुमार लज्जाशील रमणी है जब उसे यह अनुभूति हो जाती है कि पुरुष ने मेरे स्वरूप का साक्षात्कार कर लिया तो वह उसके सन्मुख उपस्थित नहीं होती।[1] पौराणिक साहित्य पर इस सांख्य दर्शन का सृष्टि वर्णन के सम्बन्ध अत्यधिक प्रभाव पड़ा है जिसका सिंहावलोकन अग्रिम परिच्छेदों में होगा। समस्त पुराण साहित्य पर इस दर्शन का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। वस्तुतः पुराणों का सृष्टि वर्णन सांख्य दर्शन की छाया मात्र है।

न्याय-दर्शन में सृष्टि-मीमांसा

ईश्वर न्याय दर्शन का मौलिक तत्त्व है। जिसके आधार पर न्याय दर्शन के आधार तथा धर्म का विशाल दुर्ग अवस्थित है। ईश्वर इस जगत् की रचना, पालन तथा संहार करने वाला है। ईश्वर अणुओं से जगत् की संरचना करता है। ईश्वर जगत् में व्यवस्था का आधपक स्वयं है। इस प्रकार न्याय-दर्शन की मान्यता है कि ईश्वर, जगत् का निमित्त कारण ही है उपादान कारण नहीं है। वेदान्त दर्शन से यह मत भिन्न पड़ता है। वेदान्त ईश्वर को निमित्तकारण और उपादान कारण दोनों ही एक साथ मानता है। न्याय दर्शन के अनुसार ईश्वर की इच्छा बड़ी प्रबल है। ईश्वर इच्छा के बल पर इस जगत् की रक्षा करता है। ईश्वर जब देखता है कि जगत् में पाप का अधिक्य तथा पुण्य का अभाव हो रहा है, तब वह इसका संहार कर डालता है। विश्व के सृजन में ईश्वर का एक नैतिक तथा आध्यात्मिक उद्देश्य के अभाव में ईश्वर विश्व का विनाश कर देता है। ईश्वर जीवों के कर्मपत्तों का दाता भी है। अतः वह नैतिक अध्यक्ष और शासक है।

ईश्वर को निमित्तकारण रूप से जगत् का सृष्टा बतलाकर न्याय दर्शन ईश्वर में मानवीय भावों के दौर्बल्य का उपस्थापन कर दिया है। नैयायिक दर्शन लौकिक कर्ता के अनुरूप कल्पित किया गया है। जिस प्रकार बढ़ई अपने हथियारों से काठ को काट-पीट कर कुर्सी, टेबल आदि बनाता है, तथा जिस प्रकार दुकान में बैठा लोहार-स्वर्णकार लोहे और स्वर्ण से भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुओं और आभुषणों को बनाता है, ठीक उसी प्रकार ईश्वर परमाणुओं से

---

१. सांख्य कारिका।

जगत् की सृष्टि किया करता है।[1] ईश्वर न्याय दर्शन के अनुसार इस सृष्टि कार्य के लिए उपादान कारणों के ऊपर अवलम्बित रहता है। यह एक विवादास्पद शास्त्रीय प्रश्न है कि उपादानों की सत्ता पर अवलम्बित रहने वाला ईश्वर सर्वशक्तिमान तथा परमस्वतन्त्र कैसे स्वीकार किया जाएगा। वेदान्त दर्शन ने ईश्वर को जगत् का उपादान और निमित्तकारण दोनों एक साथ मानकर इस अनुपत्ति को दूर कर दिया है, परन्तु न्याय में इस दोष का निराकरण कथनीय नहीं किया जा सकता।

अन्य दार्शनिकों की तरह वैशेषिकों ने भी जगत् की उत्पति के विषय में विचार किया है। वास्तववाद के सिद्धान्त के अनुयायी दर्शनों ने परमाणु को जगत् का उपादान कारण बतलाते हैं; क्योंकि उनकी दृष्टि में इसी मूलभूत पदार्थ से इस नानात्मक जगत् की सृष्टि हुई है। प्रशस्तपाद ने अपने भाष्य में परमाणुओं से जगत् की उत्पत्ति का वर्णन किया है।[2]

अणु परिमाण-विशिष्ट परमाणुओं के संयोग से द्वयणुक की उत्पत्ति होती है। तीन द्वयणुकों के संयोग से त्र्यणुक अथवा त्रसरेणु तथा चार त्रसरेणुओं के योग से चतुरणुक की उत्पत्ति होती है। तदनन्तर जगत् की सृष्टि होती है। प्रत्येक द्रव्य की सृष्टि में इसी क्रम का अनुसरण माना गया है। वैशेषिक मत में परमाणु स्वभावतः शान्त निष्पन्द

---

१. न्याय दर्शन के मूर्धन्य दार्शनिक उदयनाचार्य ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ न्याय-कुसुमंजलि' में यह उल्लेख किया है कि जगत् के समस्त पदार्थ परमाणुजन्य सावयव तथा अवान्तर महत्त्व विशिष्ट हैं। कार्य के लिए कर्त्ता की सत्ता मानना औचित्यपूर्ण है। जैसे घट की उतपत्ति तदुत्पादक कुलाल की सत्ता के बिना न्यायसंगत नहीं है। सृष्टि के अवसर पर परमाणुद्वय के संयोग से द्वयणुक की उत्पत्ति होती है। परंतु जड़ परमाणुओं का एक साथ आयोजन होना स्वयं सिद्ध नहीं हो सकता है। इसके लिए किसी चेतन पदार्थ की कल्पना नितान्त तर्कयुक्त है।

कार्यायोजनधृत्यादेः पदात् प्रत्ययतः श्रुतेः
वाक्यात् संख्या विशेषाच्च साध्यो विश्वविदव्ययः।

२. प्रशस्तपाद भाष्य, पृष्ठ संख्या—१९-२२.

हैं। प्राचीन वैशेषिक दार्शनिकों की मान्यता है कि प्राणियों के धर्मा-धर्म रूप अदृष्ट परमाणुओं में परिस्पन्द उत्पन्न करता है। अदृष्ट की सहायता से ईश्वर की इच्छा से परमाणुओं में स्पन्दन तथा तज्जन्य सृष्टि-क्रिया मानी है।[1] अदृष्ट के स्थान पर महेश्वर की सत्ता कारण मानी गई है जब प्राणियों के कर्म फलोन्मुख होते हैं तथा अदृष्ट कार्य करता है, तब महेश्वर की सृष्टि करने की इच्छा से आत्मा और परमाणु का संयोग उत्पन्न होता है जिसके परिणाम-स्वरूप परमाणुओं में कर्म की उत्पत्ति होती है और क्रमशः सृष्टि का आविर्भाव होता है।[2]

अद्वैत वेदान्त दर्शन में सृष्टि-विवेचना

जिस प्रकार कोई जादूगर अपनी मायाशक्ति के द्वारा विचित्र सृष्टि करने में समर्थ होता है वही दशा ईश्वर की भी है।[3] न्याय दर्शन ईश्वर को जगत् का केवल निमित्तकारण मानता है, परन्तु वेदान्त दर्शन के अनुसार ईश्वर ही जगत् का उपादान कारण भी है जगत् की सृष्टि इच्छापूर्वक है। इक्षापूर्वक सृष्टि व्यापार करने वाला ईश्वर निमित्तकारण निःसन्देह है। ईश्वर जगत् का उपादान कारण भी है। मुण्डकोपनिषद् (३/१/३) ब्रह्म को "योनि" शब्द से अभिहित करता है। अतः वेदान्त दर्शन की मान्यता है कि ईश्वर इस जगत् का निमित्त तथा उपादान दोनों कारण है। मृत्तिका की तरह जिस प्रकार कुम्भकार मिट्टी से नाना प्रकार के मिट्टी के बर्तनों को तैयार करता है, उसी

---

१. प्रस्तपादभास्य, पृष्ठ संख्या—२० तथा न्यायकुसुमांजलि, पृष्ठ—५२-६३.

२. वैशेषिक दर्शन में "तदवचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् तथा "अस्मद्-विशिष्ट" ये दो वैशेषिक सूत्र ईश्वर की सत्ता का संकेत करते हैं। प्रशस्तपाद से लेकर अवान्तर कालीन ग्रन्थकार ईश्वर की सिद्धि एक-मत से स्वीकार करते हैं। प्रशस्तपाद ने अपने भाष्य के आदि तथा अन्त में महेश्वर को प्रमाणभूत माना है। सृष्टिकाल में ईश्वर की सिसृक्षा से ही जड़ परमाणुओं में आध स्पन्दन उत्पन्न होता है।

३. मायावीव विजृम्भयत्यपिमहायोगीव स्वेच्छया।

—दक्षिणामूर्तिस्तोत्र श्लोक-२

प्रकार ईश्वर भी अपने ही में से जगत् को स्वयं वनाता है। ईश्वर मायोपाधिक ब्रह्म है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब ब्रह्म माया से आवृत रहता है तब उसकी संज्ञा ईश्वर है। ईश्वर चेतन भी है। चैतन्य पक्ष से ब्रह्म जगत् का निमित्तकारण है और उपाधि (माया) पक्ष से वही ब्रह्म उपादान कारण है। इस प्रकार ब्रह्म का एक साथ ही जगत् का उपादान और निमित्त कारण होना युक्तिसंगत है। अतः ब्रह्म की जगत्-सृष्टि में माया को ही प्रधानतया कारण माना जाता है।

चतुर्थ अध्याय

विष्णु पुराण में सृष्टि-वर्णन

विष्णु पुराण के प्रथम अंश के प्रथम अध्याय में मुनिवर मैत्रेय पराशर से जिज्ञासा-समन्वित होकर निम्नलिखित प्रश्न पूछते हैं—

हे धर्मज्ञ ! मैं आपसे सुनना चाहता हूं कि इस जगत् की उत्पत्ति कैसे हुई ? पुनः दूसरे कल्प के प्रारम्भिक काल में जगत् का आविर्भाव किस प्रकार होता है ? इस जगत् का उपादान कारण क्या है ? यह सम्पूर्ण चराचर जगत् किससे उत्पन्न हुआ है। सृष्टि से पूर्व प्रलयावस्था में यह जगत् किसमें सन्निहित था और पुनः किसमें लीन होगा ? पराशर ने प्रत्युत्तर में अपने पितामह श्री वसिष्ठ तथा महर्षि पुलह के ज्येष्ठ भ्राता पुलस्त्य के उपाख्यान को प्रस्तुत कर उपर्युक्त प्रश्नों का समाधान किया है। उसी उपाख्यान के आधार पर हम सृष्टि-वर्णन को प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं। पराशर का कथन है कि हे मैत्रेय ! पितामह के मतानुसार इस जगत् की उत्पत्ति विष्णु से हुई है। यह जगत् उन्हीं में स्थित है। इसकी स्थिति और लयकर्त्ता विष्णु ही हैं तथा विष्णु ही जगत् हैं।[1] भगवान् विष्णु ही परब्रह्म हैं। वह विकार-रहित हैं, शुद्ध, अविनाशी परमात्मा, सर्वथा एकरस, भगवान् वासुदेव हैं। वे सर्वत्र हैं और उनमें समस्त विश्व विद्यमान हैं।" अतः विद्वान् उन्हें वासुदेव कहते हैं।[2] परब्रह्म वासुदेव का प्रथम रूपे पुरुष है। अव्यक्त अथवा प्रकृति तथा व्यक्त

---

१. विष्णोः सकाशादुद्भूतं जगत्तत्रैव च स्थितम् ।
स्थितिसंयमकर्त्ताऽसौ जगतो स्य जगच्च सः ॥
—विष्णु पु०, १/१/३१

२. सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः ।
ततः स वासुदेवेति विद्वद्भिः परिपठ्यते ॥
—विष्ण पु०, १/२/१२

अर्थात् महदादि उसके अन्य रूप हैं। परब्रह्म ही व्यक्त कार्य है तथा अव्यक्त कारण है एवं काल महाकारण रूप से विद्यमान है। अव्यक्त तथा व्यक्त अर्थात् प्रकृति तथा महदादि को काल क्षोभित करता है अतः यह परब्रह्म का परमरूप है।[१] परब्रह्म प्रधान, पुरुष, व्यक्त और काल सबसे परे है। पण्डितजन उस ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं और वही भगवान् विष्णु का परम पद है।[२] भगवान् विष्णु व्यक्त, अव्यक्त, पुरुष और काल रूप से स्थित होकर जगत् के आविर्भाव, पालन और संहार के प्रकाश तथा उत्पादन में पृथक्-पृथक् रूप से कारण है। अव्यक्त, प्रधान तथा सूक्ष्म प्रकृति हैं। यह अव्यक्त सूक्ष्म प्रकृति सदसद्रूप तथा नित्य है। यह कारणशक्ति विशिष्ट है तथा सदा एकरस विद्यमान रहती है। यह क्षयरहित है। इसका कोई अन्य आधार नहीं है। यह अप्रमेय, अजर, निश्चल, शब्द-स्पर्शादि शून्य तथा रूपादिरहित है।[३] यह अव्यक्त—सूक्ष्म प्रकृति त्रिगुणात्मिका है और त्रिगुणमयी होने के कारण जगत् का कारण है।[४] यह स्वयं अनादि, उत्पत्ति एवं लय से रहित है। यह सम्पूर्ण जगत्-प्रपंच प्रलयकाल से लेकर सृष्टि के आदि तक उसी प्रकृति से व्याप्त था। ऋग्वेद के दशम मण्डल के नासदीय सूक्त के समान विष्णुपुराण के रचयिता सृष्टि के अव्यहित पूर्व प्रलयावस्था का वर्णन करते हुए उल्लेख करते हैं कि "प्रलयकाल के समय न दिन था न रात्रि थी, न आकाश था, न पृथिवि थी, न अन्धकार था, न प्रकाश था और न इसके अतिरिक्त कुछ और ही था। श्रोत्रादि इन्द्रियों और बुद्धि आदि का

---

१. तदेव सर्वमेवैतद्व्यक्ताव्यक्तास्वरूपवत्।
तथा पुरुषरूपेण कालरूपेण च स्थितम्॥
विष्णु पु० १/२/, १४

२. तदविष्णोः परमं पदम
—वही, १६

३. प्रोच्यते प्रकृतिः सूक्ष्मा नित्य सदसदात्मकम्
—वही, १९

४. त्रिगुणं तज्जगद्योनिरनादिप्रभवाप्ययम्।
—विष्णु पु०, १/२/२१ अ

अविषय एक प्रधान ब्रह्म और पुरुष ही था।"[1] विष्णु के उपाधि परम स्वरूप से प्रधान तथा पुरुष ये दो रूप हुए। जब दोनों प्रधान और पुरुष संयुक्त होते हैं तो सृष्टि होती है अर्थात् सृष्टि के समय प्रधान और पुरुष संयुक्त हो जाते हैं और प्रलयावस्था में ये दोनों एक दूसरे से विमुक्त हो जाते हैं। उपाधिरहित विष्णु के परम स्वरूप का एक अन्य तीसरा रूप है। यह रूपान्तर काल नाम से अभिहित है। यही विष्णु का काल रूप प्रधान और पुरुष की सृष्टि के समय संयुक्त करता है तथा प्रलयावस्था में दोनों को विमुक्त करता है।[2] विष्णु कालरूप यह भगवान् और अनादि है यह अनन्त है अतः जगत् प्रपंच की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय भी निरन्तर गतिशील है। यह प्रवाहरूप से अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होता रहता है कभी नहीं रुकता है। विष्णु के परम उपाधिरहित स्वरूप का रूप प्रधान ही प्रकृति है। बीते हुए प्रलयकाल में यह व्यक्त जागतिक प्रपंच इसी प्रधान-प्रकृति में लीन रहता है इसी हेतु जगत् प्रपंच के इस प्रलय को प्राकृत प्रलय कहा जाता है। प्रलयकाल में प्रधान अर्थात् प्रकृति साम्यावस्था में स्थित होती है तथा पुरुष से पृथक् रहता है। अतः विष्णु भगवान् का कालरूप प्रधान प्रकृति और पुरुष को संयुक्त करने के लिए दोनों को धारण करने के लिए प्रवृत्त होता है। तदनन्तर सवर्गकाल उपस्थित होने पर उस परब्रह्म परमात्मा जो विश्वरूप सर्वव्यापी तथा सर्वेश्वर परमेश्वर है—को इच्छा उत्पन्न होती है और वह प्रधान और पुरुष में प्रविष्ट हो जाता है। प्रधान विकारी है तथा पुरुष अविकारी है। परब्रह्म, प्रधान और पुरुष में समाहित होकर उनको क्षोभित करता है। परमेश्वर अपने सान्निध्य मात्र से प्रधान और पुरुष को प्रेरित करता है। परमेश्वर स्वयं क्रियाशील नहीं रहता उसका सन्निधिमात्र ही संक्षोभ के लिए प्रर्याप्त है जिस प्रकार क्रियाशील न रहने पर भी गन्ध अपनी सन्निधिमात्र से मन को क्षुभित करता रहता है। पुरुषोत्तम ही इनको क्षोभित करने वाला है और प्रधान (प्रकृति) तथा पुरुष

---

१. ना हो रात्रिर्न नभो न भूमि
नासीत्तभोज्योतिरभच्च नान्यत्।
श्रोत्रादिर्बुद्ध्यानुलभ्यमेकं
प्राधानिक ब्रह्म पुमांस्तदासीत्,
विष्णु पु० १/२/२३

२. वही, २४

क्षुब्ध होते हैं। संकोच अर्थात् साम्य तथा विकास अर्थात् क्षोभ युक्त प्रधान के रूप में पुरुषोत्तम विष्णु ही अवस्थित रहता है। विष्णु, ब्रह्मादि समस्त ईश्वरों का ईश्वर है। वह समष्टि-व्यष्टि रूप में, ब्रह्मादि जीवरूप एवं महत्तत्त्व रूप से स्थित रहता है। जब सृष्टि का समय उपस्थित होता है और तीनों गुणों —सत्तव, रज और तम की साम्यावस्था रूप प्रधान, क्षेत्रज्ञ विष्णु से अधिष्ठित हो जाता है, तो उससे महत्तत्त्व की उत्पत्ति होती है। उत्पन्न महान् अर्थात् महत्तत्त्व को प्रधान आवृत्त कर देता है और यह महत्तत्त्व सात्त्विक राजस और तामस के भेद से तीन प्रकार का होता है। जिस प्रकार बीज अपने त्वचा (छिलका) से समभाव से आवृत्त रहता है, वैसे ही त्रिविध महत्तत्त्व, प्रधान तत्त्व से सब ओर से व्याप्त तथा आच्छादित रहता है। तदनन्तर महत्तत्त्व से भूतादि अहंकार की उत्पत्ति होती है। महत्तत्त्व त्रिविध है अतः तीनों सात्त्विक, राजस और तामस महत्तत्त्व से क्रमानुसार त्रिविध वैकारिक (सात्त्विक), तेजस (राजस) और तामस भूतादि अहंकार तत्त्व की उत्पत्ति होती है। प्रधान से जैसे महत्तत्त्व व्याप्त रहता है वैसे ही महत्तत्त्व से अहंकार आवृत्त रहता है। अहंकार त्रिगुणात्मक है अतः भूतों तथा इन्द्रियों का आदि कारण भी है। तामस अहंकार से विकृत होकर शब्द-तन्मात्रा और उससे आकाश की रचना होती है जिसका गुण शब्द है। शब्दगुणयुक्त आकाश तत्त्व तामस अहंकार से व्याप्त रहता है। आकाश विकृत होकर स्पर्श-तन्मात्रा को जन्म देता है और स्पर्श-तन्मात्रा से वायु उत्पन्न होता है जो स्पर्शगुण से युक्त और बलवान् है। आकाश वायु को व्याप्त कर रखता है। विकृत होकर वायु रूप-तन्मात्रा को उत्पन्न करता है। रूप-तन्मात्रा से तेज उत्पन्न होता है। उस तेज का गुण रूप है। स्पर्श-तन्मात्रारूप वायु ने रूप-तन्मात्रा वाले तेज को आवृत्त किया है। पुनः रूप तन्मात्रा निष्ठ तेज विकृत होकर रस-मात्रा को जन्मदेता है। उस रस-मात्रा से रस-गुणवाला जल उत्पन्न होता है। रस-तन्मात्रा वाले जल को रूप-तन्मात्रामय तेज ने आवृत्त किया है। जल विकृत होकर गन्ध-तन्मात्रा की सृष्टि करता है तथा उससे पृथ्वी उत्पन्न होती है जिसका गुण गन्ध माना जाता है। आकाशादि भूतों में तन्मात्रा है अतः उनका अभिधान तन्मात्रा भी है। तन्मात्राओं में विशेष भाव नहीं है अतः इनको, अविशेष भी कहा जाता है। ये अविशेष तन्मात्राएं शान्त, घोर अथवा मूढ़ नहीं है अर्थात् उनका अनुभव सुख-दुःख अथवा मोह रूप में नहीं होता है। इस प्रकार तामस अहंकार से भूत-तन्मात्रारूप सर्ग का आविर्भाव होता है।

पंच कर्मेन्द्रियां तथा पंच ज्ञानेन्द्रियाँ अथवा दस इन्द्रियां, तेजस अर्थात् राजस अहंकार से उत्पन्न होती है तथा इन दश इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवताओं का जन्म वैकारिक अर्थात् सात्त्विक अहंकार से होता है। इस हेतु दश इन्द्रियों के दश देवता और एकादश मन ये सात्विक अर्थात् वैकारिक हैं। त्वक्, चक्षु, नासिका, जिह्वा और श्रोत्र ये पंच ज्ञानेंद्रियां हैं जो बुद्धि के साहाय्य से शब्दादि विषयों का ग्रहण करते हैं। गुदा, लिंग, हस्त, पाद और वाक् ये पंच कर्मेन्द्रियाँ हैं। जिनका कर्म मल-मूत्र का त्याग करना, शिल्प, गति और वचन है। आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी ये पंच भूत हैं जो क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध पंच गुणों से युक्त हैं। ये ही पंच आकाशादि भूत शान्त, घोर और मूढ़ हैं अर्थात् सुख, दुःख और मोह युक्त हैं। अतः ये विशेष कहलाते हैं। परस्पर मिलने से ये सभी भूत शान्त, घोर और मूढ़ प्रतीत होते हैं, पृथक्-पृथक् तो पृथिवी और जल शान्त है, तेज और वायु घोर हैं तथा आकाश मूढ़ हैं। इन पंच भूतों में पृथक्-पृथक् नाना शक्तियाँ हैं। अतः वे परस्पर पूर्णतया मिले विना जगत् की सृष्टि नहीं कर सकते। ये पंचभूत परस्पर मिलकर प्रधान तत्त्व के अनुग्रह से अण्ड की उत्पत्ति करते हैं।[१] यह अण्ड—जो जल के बुद्बुद् के सामान क्रमशः पंचभूतों से बुद्धि को प्राप्त हुआ था—ब्रह्म, हिरण्यगर्भरूप विष्णु का प्राकृत आधार बना। उस महान् अण्ड में अव्यक्त विष्णु व्यक्त हिरण्यगर्भरूप से विराजमान हुआ। उस व्यक्त हिरण्यगर्भ का सुमेरू पर्वत उल्व, अन्य पर्वत जरायु अर्थात् गर्भाशय एवं समुद्र गर्भाशयस्थित रस बने। उसी अण्ड में पर्वत, द्वीपों सहित समुद्र, ग्रहगणसहित समस्त लोक, एवं देव, असुर तथा मनुष्यादि विविध प्राणिवर्ग प्रकट हुए। वह अण्ड पूर्वपूर्व की अपेक्षा दशदश गुण अधिक जल, अग्नि, वायु, आकाश और भूतादि अर्थात् तामस अहंकार से आवृत है तथा भूतादि महत्तत्त्व ने आच्छादित

---

१. नानावीर्याः पृथग्भूतास्ततस्ते संहतिं विना।
नाशक्नुवन्प्रजाः स्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः॥
... ...
पुरुषाधिष्ठित तत्वाच्च प्रधानानुग्रहेण च।
महदाद्या विशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति ते।
—विष्णु पुराण, १/२/५३-५४

हैं । महत्तत्त्व, अव्यक्त प्रधान से आवृत है । जिस प्रकार नारिकेल फल का आभ्यन्तिक बीज बाह्यदलों से आच्छादित रहता है, उसी प्रकर ब्रह्म हिरण्य-गर्भरूप विष्णु का प्राकृत आधार वह महान् अण्ड सात प्राकृत आवरणों से आवृत हैं ।[१] उस अण्ड में स्थित होकर विश्वेश्वर विष्णु, ब्रह्मा वनकर रजोगुण का आश्रय ग्रहण कर जगत् की रचना में प्रवृत्त होता है । तदनन्तर अतुल पराक्रमी विष्णु सत्वोगुण का आलम्बन का उस जगत् का कल्पान्तपर्यन्त युग-युग में पालन करता है । तत्पश्चात् जब कल्प की परिसमाप्ति होती है, तो जनार्दन विष्णु ही भयंकर रूद्र रूप धारण कर तमोगुण का आश्रय लेकर समस्त जगत् का विनाश कर सम्पूर्ण भूतों का भक्षण कर लेता है । भूतों के भक्षण के उपरान्त जगत् को जलमय करके परमेश्वर विष्णु, शेष-शय्या पर शयन करता है । जागृत होकर प्रबुद्धावस्था में परमेश्वर विष्णु, ब्रह्मारूप होकर जगत् की पुनः रचना करता है ।[२] वह एक ही भगवान् जनार्दन विष्णु, जगत् की संरचना, स्थिति (पालन) और संहार हेतु ब्रह्मा, विष्णु और रूद्र (शिव) इन तीन पृथक्-पृथक् संज्ञाओं को धारण करता है ।[३] वस्तुतः वह परमेश्वर विष्णु सृष्टा ब्रह्मा वन कर अपनी ही सृष्टि करता है, पालक विष्णु वनकर पाल्यरूप अपना ही पालन करता है और अन्त में प्रलयावस्था में स्वयं ही संहारक शिव बनकर तथा स्वयं उपसंहृत लीन हो जाता है ।[४] वस्तुतः समस्त पृथ्वी, जल तेज, वायु और आकाश तथा इन्द्रिय-समुदाय एवं अन्तः-

---

१. एभिरावरणैरण्डं सप्तभिः प्राकृते र्वृतम् ।
नारिकेलफलस्यान्तबीजं बाह्यदलैरिव ।

विष्णु पु० १/२/६०

२. प्रबुद्धश्च पुनः सृष्टिं करोति ब्रह्मरूपधृक् ।

—विष्णु पु०, १/२/६५

३. सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्माविष्णुशिवात्मिकाम् ।
स संज्ञा याति भगवानेक एव जनार्दनः ॥

—वही, ६६

४. सृष्टा सृजाति चात्मानं विष्णुः पाल्यं च पाति च ।
उपसंह्रियते चान्ते संहर्ता च स्वयं प्रभुः ॥

—वही, ६७

करण—जितना जगत् है वह सब पुरुष रूप परमेश्वर विष्णु है; क्योंकि वह अव्यय विष्णु ही विश्वरूप है, वही समस्त भूतों के अन्तरात्मा है। अतः ब्रह्मादि प्राणियों में स्थित सर्गादिक भी उसी विष्णु के उपकारक है। कथन का तात्पर्य है कि जिस प्रकार ऋत्विजों द्वारा अग्नि में प्रदत्त हवन यग्जमान का उपकारक होता है, उसी प्रकार परमेश्वर विष्णु द्वारा रचित समस्त प्राणियों द्वारा सम्भूत सृष्टि भी उसी विष्णु का उपकारक होती है। वे विष्णु सर्वस्वरूप हैं। वे श्रेष्ठ हैं। वरदायक तथा वरेण्य हैं। वे ही ब्रह्मादि अवस्थाओं द्वारा रचने वाले हैं, वे ही रचे चाते हैं, वे ही पालते हैं, वे ही पालित होते हैं तथा वे ही संहार करते हैं अर्थात् स्वयं ही संहृत होते हैं[1]।

सृष्टि के सम्बन्ध में मुनिवर मैत्रेय, वेदवेदांगसकल धर्मशास्त्र के अध्ययन में निष्पात पराशर से एक चिन्तनीय प्रश्न पूछते हैं कि जब ब्रह्म निर्गुण तथा अप्रमेय है, तो वह सर्गादि का कर्त्ता कैसे सिद्ध हो सकता है। मुनिश्रेष्ठ पराशर उत्तर में निवेदन करते हैं कि हे मैत्रेय। समस्त भाव पदार्थों की शक्तियां अचिन्त्यज्ञान का विषय हैं। उनमें कोई बौद्धिक विश्लेषण या तार्किक युक्ति काम नहीं कर सकती है। जैसे अग्नि की उष्णता स्वाभाविक शक्ति है, उसी प्रकार ब्रह्म की सर्गादि रचनारूप शक्तियां स्वाभाविक हैं। नारायण नामक लोक पितामह भगवान् ब्रह्मा नित्य उपचार से ही उत्पन्न हुए कहलाते हैं। काल-स्वरूप विष्णु भगवान् से ब्रह्मा तथा पृथ्वी, पर्वत, समुद्र आदि चराचर जीव की आयु को परिणाम किया जाता है। अतीत कल्प के अवसान पर रात्रि में सोकर उठने पर सत्त्वगुण के उदरेक से युक्त होकर भगवान् ब्रह्मा ने सम्पूर्ण लोकों को शून्यमय देखा। भगवान् नारायण पर हैं, अचिन्त्य हैं, ब्रह्मा, शिव आदि ईश्वरों के ईश्वर हैं, ब्रह्मस्वरूप हैं, अनादि हैं और सब के उत्पत्ति स्थान हैं। मनु आदि स्मृतिकारों नारायण को जगत् की उत्पत्ति और लय का स्थान

---

१. स एव सृज्यः स च सर्गकर्त्ता
स एव पात्यत्ति च पाल्यते च।
ब्रह्माधवस्थाभिरशेणर्भूति
विष्णुर्वरिष्ठो वरदो वरेण्यः ॥
—विष्णु पु०, १/२/७०.

कहा है। नर अर्थात भगवान् पुरुषोत्तम से उत्पन्न होने के कारण जल को "नार" कहते हैं; वह नार (जल) ही उन भगवान् पुरूषोत्तम का प्रथम अयन है निवास-स्थान है। अतः भगवान् को नारायण कहते हैं। सम्पूर्ण जगत् जलमय हो रहा था। इसलिए प्रजापति ब्रह्मा ने अनुमान से पृथ्वी को जल भीतर जानकर उसे बाहर निकालने की इच्छा से एक दूसरा शरीर धारण किया। जैसे अतीत कल्पों में मत्स्य, कूर्म आदि शरीर धारण किए थे वैसे ही इस वाराह कल्प के आरम्भ में वेदयज्ञमय वाराह शरीर ग्रहण किया और सम्पूर्ण जगत् की स्थिति में तत्पर हो सबके अन्तरात्मा और अविचल रूप वे परमात्मा प्रजापति ब्रह्मा जल में प्रविष्ठ हुए। पृथ्वी को धारण कर परमात्मा वाराह ने उसे शीघ्र ही उठाकर अपार जल के ऊपर स्थापित कर दिया। उस जल समूह के ऊपर वह पृथ्वी एक विशाल नौका के समान है और आकृति की विस्तृति के कारण उस महान् जलौघ में निमग्न नहीं हुई। तद-नन्तर अनादि परमेश्वर ने पृथ्वी को समतल किया उस पर जहां तहां पर्वतों को विभाग कर स्थापित कर दिया। सत्य संकल्प भगवान् ने अपने अमोध प्रभाव से पूर्व कल्प के अन्त में दग्ध हुए समस्त पर्वतों को पृथ्वी जल पर यथास्थान रच दिया। तत्पश्चात् सप्तदीयादि की रचना की गई तथा भूर्लो-कादि चारों लोकों की कल्पना पूर्ववत् हुई। पुनः उस भगवान् हरि ने रजोगुण से युक्त हो चतुर्मुखधारी ब्रह्मा का धारण किया और सृष्टि की रचना में प्रवृत्ति की। सृष्टि की रचना में भगवान् केवल निमित्तमात्र है; क्योंकि उसका प्रधान कारण तो सृज्य पदार्थों की शक्तियां ही हैं। वस्तुओं की रचना में निमित्त का ही प्राधान्य है अन्य किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं होती। वस्तु विशेष अपनी ही परिणाम शक्ति से वस्तुता अर्थात् स्थलरूपता को प्राप्त हो जाती है।[१] सर्ग के आदि में ब्रह्मा ने सर्वप्रथम पूर्ववत् सृष्टि का चिन्तन किया। असावधानी से अबुद्धिपूर्वक चिन्तन के परिणामस्वरूप तमोगुण सृष्टि का आविर्भाव हुआ। ब्रह्मा से तम, मोह, महामोह, तामिस्त्र और अन्धतामिस्त्र नामक पंचपर्वा अर्थात् पांच प्रकार की अविद्या उत्पन्न हुई। ब्रह्मा के ध्यान से

---

१. निमित्तमात्रं मुक्त्वैवं नान्यत्किंचिदपेक्षते।
नीयते तपतां श्रेष्ठ स्वशक्त्या वस्तु वस्तुताम्॥
—१/५/५२.

बाहर-भीतर से तमोमय ज्ञानशून्य और जड़ नगादि--वृक्ष, गुल्म-लत वीरूत्-तृण-रूप पांच प्रकार का सर्ग हुआ। भगवान् वराह ने सर्वप्रथम इसे स्थापित किया था अतः नागादि को मुख्य कहा गया है। अतः यह सर्ग भी मुख्य सर्ग कहलाता है। इस सर्ग को पुरुषार्थ का असाधक देखकर ब्रह्मा ने अन्य सर्ग का ध्यान किया, तो तिर्यक्-स्रोत सर्ग का आविर्भाव हुआ है। इस सर्ग की गति वायु के समान है अतः इसे तिर्यक् स्रोत कहा जाता है। इसमें पशु, पक्षी सम्मिलित हैं। प्रायः तमोमय, विवेकशून्य, अनुचित मार्ग का अवलम्बन करना तथा विपरीत ज्ञान को ही यथार्थ ज्ञान मानना इस सर्ग की विशेषता है। इस सर्ग के सभी अहंकारी, अभिमानी, अट्ठाईस[1] वंधों से युक्त, आन्तरिक सुख आदि को ही पूर्णतया समझने वाले और परस्पर एक दूसरे की प्रवृत्ति को न जानने वाले होते हैं। उस तिर्यक-स्रोत सर्ग को भी पुरुपार्थ का असाधक देखकर ब्रह्मा पुनः चिन्तन में प्रवृत्त हुए और चिन्तन के परिणामस्वरुप एक अन्य सर्ग का आविर्भाव हुआ। यह सात्विक सर्ग था अतः इसकी संज्ञा ऊर्ध्व-स्रोत भी है और इस सर्ग की अवस्थिति ऊपर के लोकों में हुई। इस सत्वप्रधान ऊर्ध्व-स्रोत इस सर्ग की विशेषता यह थी कि इसके सभी प्राणी विषय-सुख के प्रेमी, वाह्य और आन्तरिक दृष्टि सम्पन्न तथा बाह्य और आन्तरिक ज्ञान युक्त थे। यह सर्ग देवसर्ग के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस सर्ग के आविर्भाव से ब्रह्मा सन्तुष्ठ तथा प्रसन्न हुए।

पुनः इन मुख्यादि उपर्युक्त तीन सर्गों के प्राणियों को पुरुषार्थ असाधक समझ ब्रह्मा एक अन्य साधक सर्ग के चिन्तन प्रवृत्त हुए। उस सत्यसंकल्प

---

१. सांख्यकारिका में अट्ठाईस बधों का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

एकादशेन्द्रियवधाः सह बुद्धिर्वधरशक्तिरूछिष्टा।
सप्तदश वधा बुद्धेर्विपर्ययात्तुष्टिसिद्धीनाम् ॥
आध्यात्मिक्यश्चतस्रः प्रकृत्युपादानकालभाग्याख्याः।
बाह्या विषयोपरमात् पंच च नव तुष्टयो भिमताः ॥
ऊहः शब्दो ध्ययनं दुःखविधातास्त्रयःसुहृत्प्राप्तिः।
दानंच सिद्धयो ष्टौ सिद्धेः पूर्वो क शास्त्रिविधा ॥
सांख्यकारिका (४९-५१.)

ब्रह्मा के इस प्रकार के चिन्तन के परिणामस्वरूप व्यक्त प्रकृति से एक नूतन सर्ग का आविर्भाव हुआ है। यह सर्ग अर्वाकस्रोत के नाम से अभिहित हुआ। इस सर्ग के सभी प्राणि पुरुषार्थ के साधक निकले। इसके प्राणियों की अवस्थिति अधः पृथ्वी पर हुई अतः वे अर्वाक्स्रोत कहलाए। इनमें सत्व, रज और तम तीनों ही गुणों की अधिकता रही। अतः वे प्राणि दुःख बहुल, अत्यन्त क्रियाशील एवं बाह्य-आभ्यान्तर ज्ञान से युक्त और साधक निकले। इसके सर्ग के प्राणि मनुष्य हुए।

उपर्युक्त सर्ग-प्रक्रिया का विश्लेषण करते हुए पराशर कहते हैं कि "हे मुनिश्रेष्ठ। इस प्रकार मैंने छः सर्गों का वर्णन किया है जो निम्न प्रकार है-- महत्तत्त्व, ब्रह्मा का प्रथम सर्ग है। द्वितीय भूतसर्ग है जिसमें तन्मात्राओं का आविर्भाव हुआ। तृतीय वैकारिक सर्ग है जो इन्द्रिय सम्बन्धी होने के कारण ऐन्द्रि सर्ग भी कहलाता है। यह बुद्धिपूर्वक उत्पन्न हुआ। अतः प्राकृत सर्ग के नाम से भी अभिहित है। चतुर्थ मुख्य सर्ग है जिसमें पर्वत-वृक्षादि स्थावर सम्मिलित हैं। पंचम तिर्यक-स्रोत है और इसमें तिर्यक्-योनि के कीट पतेंगादि आदि आते हैं। षष्ठ ऊर्ध्व-स्रोत-सर्ग है जिसमें देव-गण सम्मिलित हैं अतः इसे देव-सर्ग भी कहते हैं। सप्तम अर्वाक्-स्रोत है। यही मनुष्य-सर्ग है। अष्टम अनुग्रह-सर्ग है। यह सात्विक तथा तामसिक है। इन आठ सर्गों में प्रथम से तृतीय सर्ग अर्थात् प्रथम तीन सर्ग प्राकृत सर्ग कहलाते हैं और अन्तिम चतुर्थ से लेकर अष्टम पर्यन्त पांच सर्ग वैकृत अर्थात् विकारी कहलाते हैं। नवम कौमार-सर्ग है यह प्राकृत और वैकृत दोनों प्रकार का है। इस प्रकार ब्रह्मा के द्वारा विरचित सर्ग प्राकृत और वैकृत के वैभेविध्य से युक्त मूलभूत नौ प्रकार के हैं।

सम्पूर्ण प्रजा अपने पूर्व जन्म कृत अदृष्ट शुभाशुभ कर्मों से युक्त है; अतः सृष्टि की परिसमाप्ति पर प्रलय काल में सबका लय होने पर भी प्राणि अपने संस्कारों से मुक्त नहीं होते। ब्रह्मा के सृष्टि-कर्म में प्रवृत्त होने पर देवताओं से लेकर स्थावर पर्यन्त चार प्रकार की सृष्टि हुई। यह केवल मानस सृष्टि है। पुनः देवता, दैत्यों, पितृगण और मनुष्यों इन चारों की तथा जल की सृष्टि हेतु ब्रह्मा ने अपने शरीर का उपयोग किया। जब प्रजापति ब्रह्मा सृष्टि रचना के लिए दत्तचित्त हुए, तो तमोगुण का आधिक्य हुआ अतः सर्वप्रथम उनके जघन स्थल से दैत्यों की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा ने अपने तमोगुण

प्राधान्य-युक्त शरीर का परित्याग कर दिया और परिव्यक्त तमोमय शरीर ही रात्रि में परिवर्त्तित हो गया। पुनः सृष्टि की इच्छा से ब्रह्मा अन्य शरीर में स्थित होकर बड़ा प्रसन्न हुआ और उनके मुख सत्त्वगुणसम्पन्न देवताओं का आविर्भाव हुआ। तत्पश्चात् ब्रह्मा ने उस शरीर का भी परित्याग कर दिया और वह त्याग किया हुआ शरीर सत्वस्वरूप दिन का रूप धारण कर गया। अतः यह मूलभूत कारण है कि रात्रि में आसुरी प्रवृत्ति से युक्त असुर बलवान् होते हैं, तो दिन में सत्वगुण सम्पन्न देवगण को विशेष बल होता है[1]। तदनन्तर प्रजापति ब्रह्मा ने आंशिक सत्वमय शरीर का धारण किया और स्वयं को पिता स्वीकार कर अपने धृत शरीर के पार्श्व भाग से पितृगणों की सृष्टि की। पितरों की रचना कर ब्रह्मा ने उस आंशिक सत्वमय शरीर का भी परित्याग कर दिया और वह परित्यक्त शरीर ही दिन और रात्रि के मध्य में अवस्थित सन्ध्या का रूप धारण कर लिया। तत्पश्चात् ब्रह्मा ने आंशिक रजोमय अन्य पृथक् शरीर ग्रहण किया जिससे रजः प्रधान मानव का आविर्भाव हुआ। फिर शीघ्र ही उन्होंने उस देह को भी छोड़ दिया और वही ज्योत्स्ना हुआ जिसे पूर्व-सन्ध्या अर्थात् प्रातःकाल कहते हैं। यही कारण है प्रातःकाल के आने पर मानव अपने को बलवान् अनुभव करते हैं और सन्ध्या-समय पितर बलवान् होते हैं। इस प्रकार रात्रि, दिन, प्रातः और सान्ध्य ये चारों प्रभु ब्रह्मा के ही शरीर हैं और तीनों गुणों--सत्व, रज और तम के उपाश्रय हैं।[2] पुनः ब्रह्मा ने एक अन्य रजोमात्रात्मक देह ग्रहण किया जिससे क्षुधा उत्पन्न हुई और क्षुधा से काम का आविर्भाव हुआ। तदनन्तर ब्रह्मा प्रजापति अन्धकार में स्थित हो गए क्षुधा से युक्त सृष्टि की संरचना की। उस सृष्टि से कुरूप श्मश्रुल मनुष्य उत्पन्न हुए जो ब्रह्मा को भक्षण करने के लिए उन्हीं की ओर दौड़ पड़े। उन मनुष्यों में से जिन्होंने यह कहा कि "ऐसा मत करो ?

---

१. त्यक्ता सापि तनुस्तेन सत्वप्रायमभूदिनम्।
ततो हि बलिनो रात्रावसुरा देवता दिवा ॥

—विष्णु पु०, १/५/३४.

२. ज्योत्स्ना राभ्यहनी सन्ध्या चत्वार्येतानि वे प्रभोः।
ब्रह्मणस्तु शरीराणि त्रिगुणोयाश्रयाणि तु।

—विष्णु पु० १/५/४०.

इनकी रक्षा करो ?" वे राक्षस कहलाए और जिन्होंने यह कहा कि "हम खायेंगे" वे भक्षण की वासना वाले यक्ष कहे गए। उनकी इस अनिष्ट प्रवृत्ति को देखकर ब्रह्मा के केश उनके सिर से गिर गए और पुनः उनके मस्तक पर आरूढ़ हो गए। अतः शरीर से हीन तथा ऊपर चढ़ने के कारण वे सर्प कहलाए और नीचे गिरने के कारण "अहि" कहे गए। तत्पश्चात् जगत्-रचयिता ब्रह्मा अत्यन्त क्रुद्ध हो गए और क्रोधावस्था में क्रोधयुक्त प्राणियों की सृष्टि की। उन प्राणियों का वर्ण कपिश था, वे अति उग्र स्वभाव के थे और मांसभक्षी थे। पुनः ब्रह्मा गायन में प्रवृत्त हो गए और गान करते हुए ब्रह्मा के शरीर से गन्धर्व उत्पन्न हुए। गन्धर्व, वाणी का उच्चारण करते हुए उत्पन्न हुए, अतः गन्धर्व कहलाए।

इन समस्त सृष्टि की रचना कर ब्रह्मा ने पक्षियों की स्वच्छन्दतापूर्वक अपनी आयु से रचना की। पक्षियों की संरचना में उनका पूर्व कर्म ही प्रेरक तत्त्व हुआ तथा उसी से प्रेरित रचयिता ने सृष्टि की। तदनन्तर ब्रह्मा ने अपने वक्षःस्थल से भेड़, मुख से अजा, उदर तथा पार्श्व भाग से गौ, पादों से अश्वों, गर्दभों, वनगायों, मृगों, ऊंटों, खच्चरों, एवं न्यंकु आदि पशुओं की रचना की। ब्रह्मा के शरीर के रोमों से फलमूलरुप औषधियां उत्पन्न हुईं। ब्रह्मा ने कल्प के आरम्भ में ही पशु और औषधि आदि की संरचना की तथा पुनः त्रेतायुग के प्रारम्भ में उन पशुओं और औषधियों को यज्ञादि कर्म में सम्मिलित कर लिया। गौ, अजा, पुरुष, मेष (भेड़), अश्व, अश्वतर, (खच्चर) और गर्दभ ये सब ग्राम्य पशु हुए तथा श्वापद (व्याघ्रादि हिंसक जन्तु), हस्ति, कपि, पक्षी, जलजन्तु एवं सीरिसृपादि वन्यपशु हुए। पुनः चतुर्भाव ब्रह्मा, रचना कार्य में प्रवृत्त होकर अपने पूर्व मुख से गायत्री, ऋक्, त्रिवुत्सोम, रथन्तर और अग्निष्येम यज्ञों की रचना की। दक्षिण मुख से यजु, भैष्टपछन्द, पंचदशस्तोम, ब्रहत्साम तथा उक्थ की सृष्टि की। पश्चिम मुख से साम, जगतीछन्द, सप्तदशस्मोम, वैरूप और अतिरात्र को उत्पन्न किया। उत्तर मुख से ब्रह्मा ने एकविंशतिस्तोम, अथर्ववेद, आप्तोर्यामाण, अनुष्टुपछन्द और वैराज की सृष्टि की।

इस प्रकार ब्रह्मा के शरीर से सभी ऊंच-नीच प्राणी उत्पन्न हुए। उस आदिकर्त्ता प्रजापति ब्रह्मा ने देव, असुर, पितृगण और मनुष्यों की सृष्टि कर

पुनः कल्प का प्रारम्भ होने पर यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अपसरागण, मनुष्य, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, मृग और सर्प आदि सम्पूर्ण नित्य एवं अनित्य स्थावर—जंगम जगत् की रचना की। उनमें से जिन प्राणी के जैसे-जैसे कर्म पूर्व कल्पों में थे पुनः पुनः सृष्टि होने पर उनकी उन्हीं में फिर प्रवृत्ति हो जाती है। उस समय हिंसा अहिंसा, मृदुता-कठोरता, धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य ये सब अपनी पूर्वभावना के अनुसार उन्हें प्राप्त हो जाते हैं, इसी से ये उन्हें अच्छे लगने लगते हैं[१]।

इस प्रकार वह ब्रह्मा ही प्रभु विधाता है। वही इन्द्रियों के विषयीभूतों और शरीरों की विभिन्नता और व्यवहार उत्पन्न करता है। उसी ने कल्प के प्रारम्भ में देवता और प्राणियों के वेदानुसार नाम और रूप तथा उनका कार्य-विभाग निश्चित किया है। ऋषियों तथा अन्य प्राणियों के भी वेदानुकूल नाम और यथायोग्य कर्मों को ब्रह्मा ही निर्दिष्ट करता है। जिस प्रकार भिन्न-भिन्न ऋतुएं आती हैं और जाती हैं उनके नाम-रूप में विभिन्नता नहीं आती उनके नाम-रूप आदि पूर्ववत् ही रहते हैं उसी प्रकार प्रत्येक युग में उसके अव्यवहित पूर्व युग के व्यतीत हो जाने पर तथा एक कल्प के बीत जाने पर दूसरे कल्प के आने पर उनके पूर्व-भाव भी दृष्टिगत होते हैं। सिसृक्षा-शक्ति अर्थात् सृष्टि-रचना की इच्छारूप शक्ति से युक्त ब्रह्मा सृज्य-शक्ति अर्थात् सृष्टि के प्रारब्ध की प्रेरणा से कल्पों के प्रारम्भ में बारम्बार इसी प्रकार सृष्टि की रचना किया करता है।[२]

---

१. तेषां ये यानि कर्माणि प्राक्सृष्टयां प्रतिपेदिरे।
तान्येव ते प्रपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः॥
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते।
तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते॥
—विष्णु पु०, १/५/६०-६१.

२. यथर्तुष्वृतुलिंगानि नानारूपाणि पर्यये।
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु॥
करोत्येवंविधां सृष्टिं कल्पादौ स पुनः पुनः।
सिसृक्षाशक्तियुक्तो सौ सृज्यशक्तिप्रचोदितः॥
—विष्णु पु०, १/५/६५-६६.

जगत्-रचना की इच्छा से युक्त सत्य-संकल्प ब्रह्मा के मुख से सर्वप्रथम सत्वप्रधान प्रजा उत्पन्न होती हैं। तत्पश्चात् ब्रह्मा के वक्षः स्थल से रजः प्रधान तथा जघनस्थल से रज और तमविशिष्ट सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ। अपने चरणों से ब्रह्मा ने एक तमः प्रधान प्रजा की सृष्टि की। यही ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य एवं शूद्र क्रमशः ब्रह्मा के मुख वक्षःस्थल, जानु और चरणों से उत्पन्न हुए।[1] ब्रह्मा ने यज्ञानुष्ठान के लिए ही यज्ञ के उत्तम साधनरूप इस सम्पूर्ण चातुर्वर्ण्य की रचना की थी।

१. ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च द्विज सत्तम।
पदोरूवक्षःस्थलतो मुखतश्च समुद्गताः।
यज्ञनिष्पत्तये सर्वमेतद ब्रह्मा चकार वै।
चातुर्वर्ण्यं महाभागं यज्ञसाधनमुत्तमम्॥
—वहीं, १/६/६-७.

पंचम् अध्याय

पद्म, वराह, गरुड़
एवं
नारदीय **पुराण**
में
सृष्टि-विवेचना

पद्म पुराण में सृष्टि-वर्णन

पद्मपुराण—सृष्टि, भूमि, स्वर्ग, ब्रह्म, पाताल और उत्तर—इन छः खण्डों में विभक्त है। सृष्टि खण्ड में सृष्टि विषयक चर्चा नहीं की गई। इस पुराण के द्वितीय भूमि खण्ड के ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति प्रकरण में जगत् की संरचना का वर्णन उपलब्ध होता है। शोनकादि, ऋषिगण, रोमहर्षण सूत से प्रश्न करते हैं कि "हे सूत ! यह सम्पूर्ण चराचर जगत् कहां से उत्पन्न हुआ ? किसके द्वारा इसका पालन किया जाता है और इसका विलय किसमें होता है ? इत्यादि। उत्तर में सूत निवेदन करते हैं कि हे ऋषिगण ! मैं अब आदि सर्ग का वर्णन करता हूं जिसके द्वारा सनातन भगवान् परमात्मा का ज्ञान होता है। इस संदर्भ में विचारणीय तथ्य है कि सूत के सृष्टि का वर्णन का प्रधान प्रयोजन यह है कि इसके माध्यम से परब्रह्म परमात्मा का ज्ञान होगा। भारतीय मनीषा ने पुरुषार्थ चतुष्ट्य में मोक्ष को सर्वोपरि स्थान प्रदान किया है तथा निर्धारित किया है कि अर्थ, धर्म काम समस्त ज्ञान विज्ञान साधन हैं तथा परब्रह्म परमात्मा का ज्ञान रूपी मोक्ष साध्य है। इस तथ्य का उद्घाटन सभी वैष्णव पुराण करते हैं तथा पद्मपुराण उसी परम्परा का अनुसरण करता है।[1]

तत्पश्चात् रोमहर्षण अपने वर्णन को अग्रसारित करते हुए कहते हैं "कि हे श्रेष्ठ द्विजगण ! इस जगत् के प्रलय के पूर्व कुछ भी नहीं था। केवल एक-मात्र ब्रह्म था तथा वह वैसी ज्योतिः थी जो सर्वकारक थी। वह ब्रह्मात्मक

---

१. आदिसर्गमहं तावत्कथयामि द्विजोत्तमाः।
ज्ञायते तेन भगवान् परमात्मा सनातनः।।
—पद्मपुराण, द्वितीय खण्ड ब्रह्माण्ड उत्पत्ति, ९.

ज्योति नित्य थी, निरंजन, परमशान्त, निर्मल, सर्वदा निर्मल आनन्द सागर अर्थात् आनन्द से पूर्णत: परिपूर्ण तथा नितान्त स्वच्छ थी जिसकी मोक्ष की कामना करने वाले पुरुष सदा इच्छा किया करते हैं।"[1] वह ज्योतिर्ब्रह्म सर्वज्ञ है। उसका स्वरूप ज्ञान रूप है। वह ऐसा है जिसका कभी भी अन्त नहीं होता है। वह अजन्मा है। वह अव्यय है। वह सर्व-व्यापक तथा महान् है। श्रीमद्भागवत के अष्टम् स्कन्ध के तृतीय अध्याय में गजेन्द्र भगवान् की स्तुति करते हुए कहता है कि प्रलय के समय लोक, लोकपाल और इन सबके कारण सम्पूर्ण रूप से नष्ट हो जाते हैं। उस समय केवल अत्यन्त घना और गहरा अन्धकार ही अन्धकार रहता है। परन्तु अनन्त परमात्मा उससे सर्वथा परे विराजमान रहता है। वे ही प्रभु मेरी रक्षा करें। उस परमात्मा की लीलाओं के रहस्य को जानना बहुत ही कठिन है।...न उनके जन्म-कर्म हैं और न नाम-रूप, इत्यादि।[2] इसी तथ्य का प्रकाशन ऋग्वेदीय नासदीय सूक्त की ऋचाओं में हुआ है जिसकी विवेचना इस शोध-प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में विस्तृत रूप से की गई है।

जिस समय इस विशाल विश्व के सृजन करने का समय उपस्थित होता है। अर्थात् जब भी उसकी इच्छा ऐसी होती है कि जगत् को समुत्पन्न किया जावे, तो वही ब्रह्मात्मक ज्योति जिसका कि केवल ज्ञान ही स्वरूप है अपने आप में लीन विकारों को जानकर इस विश्व की रचना करने का उपक्रम किया

---

१. जगत: प्रलयादूर्ध्वं नासीत्किंचिद् द्विजोत्तमा:।
ब्रह्मसंज्ञमभूदेकं ज्योति र्वै सर्वकारकम्॥
पद्म पुराण द्वितीय खण्ड ब्रह्माण्ड, उत्पत्ति २,

२. कालेन पंचत्वमितेषु कृत्स्नशोक्लोकेषु पालेषु च सर्वहेतुषु।
तमस्तदा सीद् गहनं गम्भीर यस्तस्य पारे भिराजके विभु:॥
... ...
न विधते यस्य च जन्म कर्म वा न नामरूपे गुणदोष एव वा॥
—श्रीमद्भागवत पु०, अष्टम स्कन्ध
तृतीय अध्याय ५ तथा ८.

करती है ।[1] उस समय उस ज्योतिर्ब्रह्म से सर्वप्रथम प्रधान का आविर्भाव होता है । उस अव्यक्त प्रधान से महत् उत्पन्न होता है जो सात्त्विक, राजस और तामस के भेद से तीन प्रकार को होता है । जिसमें सत्त्वगुण का प्रधान है वह सात्त्विक, रजोगुण होता है वह राजस और जिसमें तमोगुण का प्राधान्य होता है वह तामस कहा जाता है । इसी को त्रिगुणात्मिका प्रकृति कहते हैं ।[2] उस महत्तत्व (प्रकृति) से अहंकार आर्विभूत होता है । अहंकार भी तीन प्रकार का होता है ।[3] ब्रह्म से प्रधान, प्रधान से महत्, महत् से अहंकार की उत्पत्ति उस सृजन के समय में हुआ करती है । जिस प्रकार प्रधान से महत् आवृत होता है वैसे ही महत् से अहंकार समावृत हुआ करता है । महत् से आवृत अहंकार भूतादि की विकृति को करता हुआ सर्वप्रथम शब्दतन्मात्रा को जन्म देता है ।[4] शब्दतन्मात्रा आकाश का सृजन करता है जिसका गुण या लक्षण शब्द ही । भूतादि, शब्दतन्मात्रा और आकाश को समावृत करता है । शब्दतन्मात्रा तथा आकाश, स्पर्शतन्मात्रा का सृजन करते हैं । वायु प्रबल है और स्पर्श ही उसका प्रधान गुण है—ऐसी मान्यता है । आकाश, शब्दतन्मात्रा को समावृत करता है । पुनः विकार को प्राप्त वायु, रूपतन्मात्रा का सृजन किया करता है । उस वायु से ज्योति की समुत्पत्ति होती है जिसका गुण रूप ही होता है । स्पर्शतन्मात्रा और वायु, रूपतन्मात्रा को समावृत करते हैं । पुनः

---

१. सर्गकाले तु सम्प्राप्ते ज्ञात्वा तज्ज्ञानरूपकम् ।
आत्मलीनं विकारं च तत्स्रष्टुमुपचक्रमे ।।
पद्मपुराण, द्वि० खण्ड ब्रह्माण्ड उत्पत्ति ५

२. तस्मात्प्रधानमुद्भूतं तत्श्चापि महानभूत् ।
सात्विको राजसश्चैव तामसश्च त्रिधा महान् ।।
वही, ६

३. त्रिविधो यमहंकारो महत्तत्त्वाक्ष्जायत ।
वही, ८

४. यथाप्रधानेन महान्महता स तथावृतः ।।
भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दतन्मात्रकं ततः ।
ससर्ज शब्दतन्मात्रादाकांश शब्दलक्षणम् ।।
पद्मपुराण, २

ज्योति विकृत होता है और रसतन्मात्रा का सृजन करता है। इसके अनन्तर जल की समुत्पत्ति होती है जिसका गुण केवल रस ही है। रसतन्मात्रा तथा जल, रूपतन्मात्रा को समावृत किया करता है।

विकार को प्राप्त जल गन्धतन्मात्रा का सृजन करता है। इसी गन्धतन्मात्रा से पृथ्वी की उत्पत्ति होती है।[1] पृथ्वी में सभी भूतों के गुण विद्यमान रहते हैं अतः यह सब भूतों के गुणों वाली अधिक होती है। जिससे यह संघात होता है उसका गुण गन्ध है। उसमें जो तन्मात्राएं होती हैं वे उस-उसी से समावृत हुआ करती है। ये तन्मात्राएं अविशेष हैं। यह भूत तन्मात्राओं की सृष्टि तामस अहंकार से होती है। इन्द्रियां तेजस होती हैं और इनके वैकारिक दश अधिष्ठातृ देवता होते हैं। इन्द्रियां दश हैं तथा मन एकादश इन्द्रिय है। दश इन्द्रियों में पांच ज्ञानेन्द्रियां जिनसे भिन्न-भिन्न ज्ञान का अनुभव प्राप्त होता है। श्रवण, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और नासिका--ये पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं। पांच कर्मेन्द्रियां हैं जिनसे केवल कर्म किए जाते हैं।

शब्द आदि के ज्ञान के लिए पांच ज्ञानेन्द्रियां बुद्धि से संयुक्त होती हैं। आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी ये पांचों भूत शब्दादि पांचों गुणों से उत्तरोत्तर संयुक्त हुआ करते हैं। जब ये पृथक्स्वरूप वाले होते हैं तब संहति के बिना अनेक प्रकार के वीर्य वाले होते हैं।[2] पूर्णतया से समुत्पन्न होकर भी ये प्रजा का सृजन करने में समर्थ नहीं होते। सब आपस में मिलकर एक दूसरे से संयोग प्राप्त करके आश्रय ग्रहण किया करते हैं और एक संघ वाले तथा एक ही लक्ष्य वाले पूर्ण तथा प्राप्त होकर ही पुरुष के अधिष्ठाता होने पर तथा

---

१. विकुर्वाणानि चाम्भांसि गन्धमात्रं ससर्जिरे।
तस्माज्जाता मही चेयं सर्वभूतगुणाधिका॥
पद्मपुराण, २/२७-२८

२. भूतेभ्योऽण्डं महाप्राज्ञा वृद्धं तदुपकेशयम्।
प्राकृतं ब्रह्मरूपस्य विष्णोः स्थानमनुत्तमम्॥
तत्राव्यक्तस्वरूपोऽसौ विष्णुर्विश्वेश्वरः प्रभुः।
ब्रह्मरूप समास्थाय स स्वयमेव व्यवस्थितः॥
वही, १५

प्रधान के अनुग्रह को प्राप्त कर महत् आदि विशेष पर्यन्त ये सब अण्ड की सृष्टि किया करते हैं। केवल प्रधान, महत्, अहंकार, पांचतन्मात्राएं एवं पांच भूत सृजन के सामर्थ्य से वंचित रहते हैं। जब सब का संघ बन जाता है और पुरुष सबका अधिष्ठाता बनता है तभी इस जगत् की उत्पत्ति सम्भव होती है। अण्ड जल के बुद्बुदे के समान अवस्थित बढ़ता रहता है। भूतों से यह अण्ड वृद्धि को प्राप्त होता है। अण्ड का आश्रय जल है। ब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णु का यह अण्ड अत्युत्तम प्राकृत स्थान है। उस अण्ड पर अव्यक्त विष्णु, ब्रह्मरूप में स्वयं ही समास्थित रहता है। उस अव्यक्त विष्णु के स्वेदज अण्ड, जरायु महीधर, समुद्र गर्भोदक बने। इस प्रकार उसके महदादि स्वरूप हुए। अद्रि-द्वीप और समुद्र सहित वह ज्योति लोकों का संग्रह थी और उस अण्ड में ही देवासुर तथा मानव सबका आविर्भाव हुआ। उस अव्यक्त विष्णु का न तो कोई आदि है अर्थात् न आरम्भ काल है और न जिसका कभी निधन अर्थात् अन्त काल ही होता है। उस विष्णु के नाभि से पद्म की उत्पत्ति होती है जो भगवान् केशव की इच्छा से हैम पिण्ड में परिणत हो जाता है।

रजोगुण धारक परात्पर हरि स्वयं ही ब्रह्म का स्वरूप धारण कर जगत् की संरचना में प्रवृत्त होते हैं।[1] जगत की सृष्टि हरि करते हैं और जब तक कल्पों की विकल्पना रहती है हरि ही युगों के अनुरूप जगत् का पालन करते हैं। जब हरि को इच्छा होती, तो नारसिंह स्वरूप से या रूद्र से वही इसका संहार भी करते हैं।[2] वही महान् आत्मा प्रभु ब्रह्मरूप का परित्याग कर इस सम्पूर्ण जगत् की परिपालन की इच्छा से श्रीराम आदि का स्वरूप ग्रहण कर इसका संरक्षण तथा पोषण करते हैं। इस जगत का विनाश करने के लिए ही रूद्र रूप धारण करते हैं।[3]

---

१. रजोगुणधरो देवः स्वयमेव हरिः परः।
ब्रह्मरूपं समास्थाय जगत्स्रष्टुं प्रवर्तते॥

पद्मपुराण, २/३/३२

२. सृष्टं च पात्यनुयुगं यावत्कल्पविकल्पना।
नारसिंहादिरूपेण रूद्ररूपेण संहरेत्॥

पद्मपुराण २/३/-३३

३. स ब्रह्मरूपं विसृजन्महात्मा जगत्समस्त परिपातुभिच्छत्।
रामादिरूपं स तु गृहय पाति बभूवरूद्रोजगदेतदत्तुम्॥

वही, ३४

गरुड़ पुराण में सृष्टि-वर्णन

गरुड़ पुराण में सृष्टि का वर्णन भगवान् रूद्र की जिज्ञासा प्रकट करने पर श्रीहरि ने निम्न प्रकार से किया है—

हे रूद्र ! इस जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय —इन तीनों कार्यों को भगवान् विष्णु करते हैं। यह विष्णु की पुरातनी क्रीड़ा हैं।[१] भगवान् विष्णु नर नारायण, वासुदेव, निरंजन, परमात्मा तथा परब्रह्म है। वे ही इस जगत् जनिलयादि के कारण हैं।[२] वही यह सब व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप वाला है। वही पुरुष और काल रूप से अवस्थित है। विष्णु व्यक्त स्वरूप हैं तथा उन्हीं का अव्यक्त स्वरूप पुरुष और काल हैं। जिस प्रकार बालक क्रीड़ा करता है, उसी प्रकार विष्णु भी क्रीड़ारत है।[३] विष्णु धाता हैं। पुरुषोत्तम हैं। वे आदि और अन्त से रहित तथा अनन्त हैं। अव्यक्त-पुरुष और काल तथा आत्मा भी उन्हीं से उत्पन्न होते हैं।[४] उसी विष्णु से बुद्धि, मन, आकाश, वायु, तेज, जल एवं पृथ्वी सब की उत्पत्ति होती है।[५] हिरण्यमय अण्ड में विष्णु स्वयंमेव

---

१. सर्गस्थितिप्रलयान्तां विष्णोः क्रीडां पुरातनीम् ।

गरुड़ पु०, ४/२

२. नरनारायणो देवो वासुदेवो निरंजनः ।
परमात्मा परं ब्रह्म जगज्जनिलयादिकृत ॥

वही, ३

३. व्यक्तं विष्णुस्तथा व्यक्तं पुरुष काल एव च ।
क्रीडतो बालकस्येव चेष्टास्तस्य निशामय ॥

गरुड़ पु०, ५

४. तस्माद्भवति चाव्यक्तं तस्मादात्मापिजायते ।

वही, ६

५. तस्माद् बुद्धिर्मनस्तस्मात्ततः खं पवनस्ततः ।
तस्मात्तेजस्ततस्त्वापस्ततो भूमिस्ततो सृजत् ॥ वही, ७
तथाच यथार्चिषो ग्नेः सवितुर्गभस्तयो निर्यान्ति
संयान्त्यसकृत् स्वरोचिषः ।
तथा यतो यं गुणसम्प्रवाहो बुद्धिर्मनः खानि शरीरसर्गाः ॥

श्रीमद्भागवत पु०, ८/३/२३

विराजमान रहते हैं। प्रभु विष्णु सर्वप्रथम ऋषियों के लिए शरीर-ग्रहण करते हैं। चतुर्मुख ब्रह्मा रजोगुण की मात्रा की अधिकता के कारण शरीर ग्रहण करते हैं तथा सम्पूर्ण चर और अचर जगत् का सृजन करते हैं। सृष्टा ब्रह्मा अण्ड में विद्यमान समस्त अन्तर्जगत् की संरचना करते हैं जिसमें देव-असुर एवं मनुष्य सभी हैं। विष्णु आत्मा को तथा पालन करने योग्य का पालन तथा संरक्षण प्रदान करते हैं। अन्त में स्वयं ही हरि ही संहर्त्ता बन इस जगत् का उपसंहरण किया करते हैं। प्रभु, ब्रह्मा का स्वरूप धारण कर सृजन करते हैं-- हरि स्वयं ही विष्णु के रूप में पुनः इस जगत् का पालन करते हैं और कल्प के अन्त में वही प्रभु रूद्र के रूप में सम्पूर्ण जगत् का संहार किया करते हैं।[1] सृष्टि के प्रारम्भ में स्रष्टा ब्रह्मा पृथ्वी को जल के मध्य में गई हुई जानकर वराह के शरीर को धारण कर अपनी दाढ़ से पृथ्वी का उद्धार करते हैं।

सर्वप्रथम महत्तत्त्व के सर्ग का आविर्भाव होता है जो ब्रह्म का विरूप है। द्वितीय सर्ग के रूप में पंचतन्मात्राओं का प्राकट्य होता है जो भूतसर्ग के नाम से ज्ञातव्य है। तृतीय ऐन्द्रिक सर्ग होता है जिसका ऊपर अभिधान वैकारिक सर्ग भी है। इस प्रकार बुद्धिपूर्वक यह प्राकृत सर्ग सम्भूत होता है। चतुर्थ मुख्य सर्ग होता है और मुख्य स्थावर कहे गए हैं। तिर्यक् स्रोत ही तिर्यग्योग्य कहलाता है। उर्ध्व स्रोतों में षष्ठ देवसर्ग नाम से प्रख्यात है। देवसर्ग से ऊर्वाक् स्रोतों में सप्तम मानुष सर्ग है। अष्टम अनुग्रह सर्ग है। अनुग्रह सर्ग सात्विक तथा तामस दोनों होता है। इस प्रकार चतुर्थ से लेकर अष्टम् सर्ग तक पांच वैकृत सर्ग और तीन प्राकृत सर्ग कहे गए हैं। कौमार नवम सर्ग है जो प्राकृत और वैकृत दोनों प्रकार का होता है। सुरों से लेकर स्थावर पर्यन्त चार प्रकार की प्रजाएं होती हैं। सृष्टि की रचना करने वाले ब्रह्मा ने मानस पुत्रों का उत्पन्न किया। पुनः देव, असुर, पितृगण और मानुष इन चारों की

---

१. स्रष्टा सृजति चात्मानं विष्णुः पाल्यं च पातिच।
उपसंहरते चान्ते संहर्त्ता च स्वयं हरिः॥
ब्रह्माभूत्वासृजद् विर्ष्णुजगत् पाति हरिः स्वयम्।
रूद्ररूपी च कल्पान्ते जगत् संहरते प्रभुः॥

गरुड़ पु०, ४/१०-११

सृजन की इच्छा से ब्रह्मा ने अपनी आत्मा का पूजन किया। मुक्तात्मा प्रजापति की मात्रा में उद्रिक्ता हुई थी। सृजनेच्छुक ब्रह्मा के जघनस्थल से पहिले असुर उत्पन्न हुए। पुनः ब्रह्मा उस तमोमात्रात्मक शरीर का परित्याग कर दिया तथा तमोमात्रात्मक्त वह तनुशंकरा विभारी अर्थात् अंधेरी रात्रि हो गई।

ब्रह्मा के मन में पुनः अन्यदेह में स्थित होकर सृष्टि की इच्छा हुई और उनके मुख से सत्वगुण के उद्रेक वाले देवता समुत्पन्न हुए। उन्होंने उस सत्वोद्रिक्त शरीर का भी परित्याग कर दिया और वही ब्रह्मा का शरीर दिन में परिणत हो गया। उसी समय से असुर रात्रि में बलयुक्त हो गए और देवगण दिन में बलवान हुए। तदनन्तर दिन और रात्रि के मध्य में अवस्थित सन्ध्या उत्पन्न हुई। जब ब्रह्मा ने रजोगुण का ग्रहण किया तब उनके उस शरीर से मनुष्य उत्पन्न हुए। ब्रह्मा ने अपने अपने उस रजोगुणसम्पन्न शरीर का परित्याग कर दिया और वह शरीर ज्योत्स्ना में परिवर्तित हो गया जो प्राक्संध्या कही जाती है। ये ज्योत्स्ना, रात्रि, दिन और सन्ध्या सभी ब्रह्मा के शरीर ही हैं। ब्रह्मा के रजोगुण के आश्रयण से क्षुधा और क्रोध का आविर्भाव हुआ। क्रोध से भूतादि की समुत्पत्ति हुई। तदनन्तर गन्धर्व जन्मग्रहण किए। ये गायन करते हुए आविर्भूत हुए थे, अतः इनकी संज्ञा गन्धर्व पड़ी। उस प्रजापति ब्रह्मा ने अपने वक्षःस्थल से अवयों (भेड़ों) और मुख से अजों (बकरियों) का उत्पन्न किया। प्रजापति ने अपने उदर और पार्श्वभागों से गायों का सृजन किया। ब्रह्मा ने अपने पैरों से अश्व, हाथी, गर्दभ, उष्ट्र आदि को उत्पन्न किया और उनके रोमों से सम्पूर्ण औषधियों, फल और फूल उत्पन्न हुए। गौ, अज, मेष (भेड़), अश्व, अश्वतर और गर्दभ ये सभी ग्राम्य पशु हैं। श्वापद, हस्ती, कपि, पक्षी, जल-जन्तु एवं सरीसृप अरण्य पशु हैं। ब्रह्मा के पूर्वादि मुखों से ऋग्वेद आदि की समुत्पत्ति हुई। ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, उरूओं से वैश्य और चरणों से शूद्र उत्पन्न हुए। ब्राह्मणों का ब्रह्मलोक, क्षत्रियों का शक्रलोक, वैश्यों का मरुत् लोक और शूद्रों का गन्धर्वलोक स्थान बने। ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित ब्रह्मचारियों के लिए ब्रह्मलोक, गृहस्थों के लिए जो यथोक्त आश्रम के पालन करने में लगे हैं—प्रजापत्यलोक बने। सप्तर्षियों, वनवासियों, यतियों एवं यदृच्छागामियों के लिए अक्षयलोक हैं।

इन उपर्युक्त संस्थानों की रचना के अनन्तर ब्रह्मा ने मानस-प्रजा सर्ग की

सृष्टि की। जिसमें धर्म, रूद्र, मनु, सनक, सनातन, भृगु, सनत्कुमार, रूचि, शुद्ध, मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु, वसिष्ठ, नारद, बर्हिवद, पितृगण अग्निष्वात्तः कव्याद, आज्यय, सुकाली, उपहूत, दीप्य, तीन मूर्तियों से रहित और चार मूर्तियों से युक्त सम्मिलित हैं। इसके अनन्तर पद्मसम्भव ब्रह्मा ने अपने दक्षिण भाग से दक्ष को और वामांगुष्ठ से उसकी भार्या का सृजन किया। दक्ष ने अपनी उस पत्नी में परम शुभ दुहिताओं को जन्म दिया। उन सभी अपनी कन्याओं ने ब्राह्मण पुत्रों को दे दिया तथा सती को रुद्र के लिए दिया। सती और रूद्र से अगणित पुत्र उत्पन्न हुए। दक्ष ने ख्याति को भृगु को, श्री को हरि को दिया। इस प्रकार दक्ष प्रजापति के प्रयास सृष्टि प्रक्रिया उत्तरोत्तर वर्धनशील हुई।

वराह पुराण का सृष्टि वर्णन विष्णु पुराण तथा गरुड़ पुराण से अत्यधिक साम्य रखता है अतः पिष्ट पेषण के भय से उस वर्णन का कोई औचित्य न समझ कर मैं विरत हो जाता हूं।

नारदीय पुराण में सृष्टि वर्णन

नारदीय पुराण नारायण को परम तत्त्व अथवा परमब्रह्म के रूप में स्वीकार करता है, नारायण अविनाशी, अनन्त एवं सर्वव्यापी है। समस्त जगत् उसी से व्याप्त है। महाविष्णु, नारायण का अपर अभिधान है। सत्त्व, रज और तम—-इन तीनों गुणों का वही प्रेरक तथा निर्देशक है। सृष्टि के प्रारम्भ में तीनों गुणों के पारस्परिक विक्षोभ से परम तत्त्व निम्नलिखित रूपों को आविर्भाव में लाता है। अपने दैहिक विराट् अंग के दक्षिण भाग से सृष्टि के कर्त्ता के रूप में ब्रह्मा को वाम भाग से सृष्टि के संस्थापक तथा संरक्षक के रूप में विष्णु को एवं अन्ततोगत्वा उसी सृष्टि के संहृतिशक्ति से समन्वित संहर्त्ता के रूप में रूद्र को नारायण जन्म देता है। नारायण नाम से अभिहित परम तत्त्व वास्तविक स्वरूप में दार्शनिकों में बड़ा मतभेद है। कोई उसे शिव, कोई विष्णु एवं कोई उन्हें ब्रह्मा से अभिन्न मान्यता प्रदान करते हैं। कहा जाता है कि महा विष्णु अपनी वैयक्तिक पराशक्ति से युक्त है। यह देवी पराशक्ति विद्या और अविद्या के भेद से द्विविध प्रकार की है। यह देवी शक्ति परम तत्त्व में उसी प्रकार अवस्थित है जिस प्रकार अग्नि में उसकी ज्वलनशक्ति। यह जगत् का मूल कारण है। यह परम तत्त्व का अभिन्न अंग इसके पृथक्त्व की कल्पना

किसी प्रकार नहीं की जा सकती। यह अविद्या का प्रभाव है कि जगत्, परम तत्त्व महा विष्णु से पृथक रूप में प्रतिभासित होता है, लेकिन विद्या के प्रकाशित होने पर जगत् और परम तत्त्व की अभिन्नता के ज्ञान का साक्षात्कार हो जाता है। इस संदर्भ में उल्लेखनीय यह है कि उमा, लक्ष्मी, भारती, गिरिजा, अंबिका ब्राह्मी, माया और पार्वती उसी देवी परा शक्ति की विभिन्न अभिव्यक्तियां हैं। व्यक्ताव्यक्त रूप से महाविष्णु की भांति उसकी शक्ति भी जगत् में व्याप्त रहती है। प्रकृति, पुरुष और काल, नारायण की इसी अपृथक् शक्ति की वाह्य अभिव्यक्तियां हैं। नारायण, प्रकृतितः विशुद्ध और कूटस्थ है। वह निर्गुण तथा गुणातीत है। सर्वप्रथम नारायण के मानस में जगत् की सिसृक्षा का अविर्भाव होता है तथा इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु अपने को प्रकृति पुरुष और काल के रूप में अभिव्यक्त कर देता। तदनन्तर (प्रकृति का सन्तुलन संक्षुब्ध होता है) पुरुष की उपस्थिति के कारण प्रकृति के सन्तुलन में संक्षोभ उत्पन्न होता है। परिणामस्वरूप महत्तत्व का आविर्भाव होता है। महत्तत्व से अहंकार और उससे पंचतन्मात्राएं और एकादश दन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। पंचतन्मात्राएं— आकाश, अग्नि, जल, वायु और पृथ्वी—पंचभूतों को जन्म देती है। इस कारण कार्यात्मक संसृष्टि प्रक्रिया में पूर्व अक्षर का कारण होता है। तदुपरान्त ब्रह्मा-जिन्हें संरचना कार्य पूर्ण रूप से समर्पित किया गया है—अधोवर्गीय पशुओं से युक्त तामस सर्ग की सृष्टि करता है। दुःख सुखात्मक जीव की मुक्ति-प्राप्ति हेतु इस पशु-सृष्टि को अक्षम जानकर कमलोद्भव ब्रह्मा में सत्वगुण के प्राधान्य से युक्त देवों की संरचना की। तत्पश्चात् रजोगुण के वैशिष्टय से युक्त मानवों की तथा अपने चतुर्दश पुत्रों दक्षों को जन्म दिया जिन्होंने अपने को सृष्टि के कार्य में लगा दिया। यह जगत् ब्रह्मा की संतान—देवों, दानवों तथा मानवों से पूर्ण रूप से व्याप्त हो गई। इसी में भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः एवं सत्यम्—इन सात उपरि उपरि लोकों की संरचना भी समाविष्ट है तथा अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल एवं पाताल इन सप्त अद्योऽधः लोक भी इसी में समाहित हुए। ब्रह्मा ने इन सभी लोकों के निवासियों की सृष्टि की। उन्होंने पर्वतों तथा समस्त जीवन-यापन हेतु आवश्यकीय वस्तुओं को उत्पन्न किया। जगत् के मध्य में उन्होंने मेरू पर्वत को संस्थापित किया जो देवी शक्तियों का निवास-स्थल बना तथा पृथ्वी के दूसरे छोर पर लोकालोक पर्वत को प्रतिष्ठित किया। इसी मेरू तथा लोकालोक पर्वतों के मध्य—जम्बू, प्लक्ष, शालमली, कुश, क्रौंच, शाक, पुष्कर इत्यादि सप्त द्वीपों का संस्थापित

किया। यही सप्त द्वीप स्वर्गीय प्राणियों के निवास-स्थान बनें। ये द्वीप सप्त समुद्रों से आवृत्त किये गए जो लवण, परिष्कृत जल, दधि, दुग्ध तथा स्वादिष्ट जल से पूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त नारायण, महाविष्णु एवं वासुदेव ये तीनों अभिन्न एक है और परम तत्त्व हैं। वही अन्तिम लक्ष्य है तथा वही चरम ज्ञान का मूल स्थान है। यह जगत् अथवा यह संसृष्टि उसी की वाह्य—अभिव्यक्ति हैं। वही सृष्टिकर्त्ता, संरक्षक तथा संहर्त्ता के त्रिविध कार्यों का एक मात्र संपादक है।

नारदीय पुराण में सृष्टि का वर्णन बड़े विस्तृत रूप से किया गया है। यद्यपि श्रीमद्भागवत पुराण के सदृश इस पुराण का प्रधान पतिपाद्य मोक्ष है और मोक्ष हेतु जिस विषय विशेष की विस्तृति की आवश्यकता है, तथापि इसे ही ध्यान में रखकर नारदीय पुराण के रचयिता ने सृष्टि-वर्णन को बड़ी विस्तृति प्रदान की है। अतः वर्तमान अनुच्छेद में इसी उपर्युक्त विषय की विवेचना प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता है। इस विवेचना की अपनी अलग विशिष्टता है कि जहां अन्यत्र सृष्टि वर्णन वर्णनात्मक रूप से किया गया है वहां यहां दार्शनिकविवेचना की गई है जिसको प्रस्तुत करने का लघुतम यत्न कर रहा हूं। नारदीय पुराण के पूर्वभाग के ४२वें और ४३वें अध्यायों में सृष्टि वर्णन की बड़ी विशद् विवेचना की गई है। अतः प्रस्तुत पुराण के सृष्टि वर्णन प्रकरण में इस उपरि निर्दिष्ट अध्यायों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। यहां मैं यह निर्देश करना सर्वथा युक्तिसंगत समझता हूं कि यही वर्णन अक्षरशः महाभारत के शान्तिपर्व के १८२ अध्याय से १९५ अध्याय तक उपलब्ध होता है। नारदीय पुराण के पूर्वभाग के ४२ वें अध्याय में दो महार्षियों—भरद्वाज और भृगु का उपाख्यान है जिसमें जिज्ञासु भरद्वाज, भृगु से निम्नलिखित प्रश्न करते हैं—

> वह परम तत्त्व कौन है जिससे यह चराचर जगत्
> निःसृत होता है ? प्रलयावस्था में यह जगत् किसमें
> विलीन होता है ? इस जगत् के प्राणियों की उत्पत्ति
> कैसे होती है ? विभिन्न सम्प्रदायों के वर्गीकरण ने
> कैसे ठोस रूप धारण किया ? पाप-पुण्य, सदसत्
> शुद्धाशुद्ध के नियामक नियम का निश्चितीकरण कैसे
> हुआ ? प्राणियों की जीवन-यापन की प्रक्रिया क्या है ?

मृत्यु के बाद प्राणि कहां अग्रसर होते हैं ? इस जगत् की प्रकृति क्या है ? एवं ऊपर लोकों की प्रकृति कैसी है ?[१] इत्यादि ।

भारद्वाज की जिज्ञासा प्रकट करने पर महर्षि भृगु ने निम्नलिखित विवरण प्रस्तुत किया है । सर्वप्रथम प्रत्युत्तर में भृगु का कथन है कि ब्रह्म ही इस जगत् का मूल कारण है । सृष्टि की आरम्भावस्था में सत् और असत् दोनों से अतीत अनिर्वचनीय प्रकृति वाली अविद्या से मनस् की उत्पत्ति हुई । चेतन ब्रह्म अर्थात् चिदात्मक ब्रह्म उसी में प्रतिबिम्बित हो गया । ऐसे मनस् की अभिधान मानस हो गया । यही चेतन ब्रह्म के प्रतिबिम्ब से युक्त मनस् अर्थात् मानस, जगत् का मूल कारण बना । इसी मानस की गौरवमयी महिमा का गायन वेदों और उपनिषदों में भरा पड़ा है । यह मानस, अनादि और अनन्त है । इस मानस का मूल कारण अविद्या, सत्-असत् भाव से रहित और अनिर्वचनीय है अतः उसी की असिद्धता से मानस भी असिद्ध हो जाता है । शुद्ध परम ब्रह्म निर्विकार है अतः वह मानस का उपादान कारण नहीं हो सकता । कारण कार्यभाव के अन्तर्गत का वास्तविक उपादान कारण होना चाहिए क्योंकि वही उसका उद्गम और लय का स्थान है । यहां अविद्या को मानस का उद्गम स्थान बताया गया है । अतः अविद्या, अज्ञानस्वरूपा है अतः कारण कार्यभाव के चिन्तन प्रक्रिया में कारण नहीं हो सकती । इसी कारण भृगु ने मानस को अनादि और अविनाशी कहा है । यह विकार रहित और अमृत है । यह शाश्वत है । यह चिन्तन और तर्क से परे है । इसी हेतु इसकी संज्ञा अव्यक्त भी है । पंच महाभूतों का आविर्भाव इसी मानस से होता है और प्रलयावस्था में उनका लय इसी में हो

---

१. कुतः सृष्टामिदं ब्रह्मन् जगत्स्थावरजंगमम् ।
प्रलये च कमभ्येति तन्मे ब्रूहि सनन्दन ।।
ससागरः सगगनः सशैलः सबलाहकः ।
सभूमिः साग्निपवनो लोकोऽयं केन निर्मितः ।
कथं सृष्टानि भूतानि कथं वर्णविभक्तयः ।
कीदृशो जीवतां जीवः क्व वा गच्छन्ति ये मृताः ।
अस्माल्लोकदमुं सर्व शंसतु मे भवान् ।।

—नारदीय पु०, १/४२/१-४

जाता है[1] लेकिन चेतन ब्रह्म, उद्भव और विनाश की परिधि से परे है। मानस महत् को जन्म देता है[2] जिसका दूसरा नाम बुद्धि तत्त्व भी है। यह महत् तत्त्व समष्टि रूप से समग्र प्राणियों का प्रतिनिधित्व करता है। यह ब्रह्म की उपाधि है और हिरण्यगर्भ के नाम से अभिहित है। महत्तत्व से अहंकार का आविर्भाव होता है जो मन के समकक्ष है और जो महत् से व्याप्त है। अहंकार से अंतरिक्ष (आकाश), आकाश से जल, जल से अग्नि तथा वायु की उत्पत्ति होती है। अग्नि और वायु के सहयोग से पृथ्वी का आविर्भाव होता है तदनन्तर स्वयम्भू मानस दिव्य विभूतियों से विभूषित एक कमल को जन्म देता है। इसी कमल से वेदों के संरक्षक ब्रह्म का जन्म होता है।[3] जन्म ग्रहण के सद्यः पश्चात् ब्रह्मा के मुख से यह निःसृत होता है कि "मैं वही हूं।" इसी 'अहं' युक्त चेतना के कारण ब्रह्मा का नाम अहंकार पड़ता है। इस स्तर पर ब्रह्मा के क्लेवर की निर्मिति पंच भौतिक तत्त्वों से होती है। पर्वत, उनकी अस्थियां, पृथ्वी उनकी मज्जा, आकाश, उनका उदर, वायु उनका श्वास निःश्वास, नदियां उनकी रक्तवाहिनी नाड़ियां एवं सूर्य तथा चन्द्रमा उनके नेत्र का स्थान ग्रहण करते हैं। उनका सिर

---

१. मानसो नाम यः पूर्वो विश्रतो वै महर्षिभिः।
अनादिनिधनो देवस्तथा तेभ्योऽजरामरः॥
अव्यक्त इति विख्यातो शाश्वतोऽथाक्षयव्ययः॥
यतः सृष्टानि भूतानि जायन्ते च म्रियन्ति च॥

—नारादीय पुराण १/४२/१३ ब १५ अ

२. सोऽसृजत्प्रथमं देवो महान्तं नाम नामतः।
आकाशमिति विख्यातं सर्वभूतधरः प्रभुः॥

—नारदीय पुराण १/४२/१५ब-१६-अ।

३. आकाशाद्भवद्वारि सलिलादग्निमारुतो।
अग्निमारुतसंयोगात्ततः समभवन्मही॥
ततः तेजोमयं दिव्यं पद्मं सृष्टं स्वयंभुवा।
तस्मात्पद्मात्समभवदब्रह्मा वेदमयो विधिः।
अहंकार इति ख्यातः सर्वभूतात्मभूतकृत्॥
ब्रह्मा वै स महातेजा य एते पंच धात।

वही १६ब-१९अ।

आकाश का स्पर्श करता है, उनके पाद, पृथ्वी को एवं भुजाएं विभिन्न दिशाओं तक पहुंच जाती हैं अध्यात्म के प्रातिभ-चक्षु से समन्वित ऋणिगण भी उसकी दिव्य महिमा और शौरव के गाम्भीर्य का पता नहीं लगा सकते। परम तत्त्व समस्त चराचर जगत् के प्राणियों की पुनः संरचना हेतु अहंकार को जन्म देता है। यही परम तत्त्व, विष्णु है और यही अनन्त है। इसी अनन्त विष्णु परम तत्त्व से जगत् का आविर्भाव होता है।[1]

महर्षि भृगु की सृष्टि-विषयक विवेचना दार्शनिक गुथियों से भरी हुई है। उपर्युक्त विश्लेषन का स्वारस्य यह है कि ब्रह्म ही समस्त जगत् को व्याप्त कर अवस्थित है ब्रह्म अन्तस्थ और सर्वातिशायी अतिव्यापक दोनों है। त्रिविध विभिन्न चेतन प्राणियों का प्रतिनिधित्व के कारण ब्रह्म की त्रिविध--ईश, सूत्र एवं विराट् संज्ञाएं हैं। इसी त्रिगुणात्मक वैविध्य के कारण ब्रह्म समस्त सृष्टि को व्याप्त करता है तथा जीवन प्रदान करता है। इस परिप्रेक्ष्य में एक शंका उपस्थित होती है कि क्या ब्रह्म जगत् को अपने एक अंग से व्याप्त करता है अथवा सम्पूर्ण रूप से ? कहने का तात्पर्य यह है कि ब्रह्म के द्वारा जगत् का व्यायन केवल एक अंग मात्र से सम्पन्न होता है अथवा उसके समग्र रूप से यदि हम यह स्वीकार करें कि यह व्यायन कार्य एक अंग मात्र से होता है, तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि ब्रह्म के और अतिरिक्त अंग हैं। यह मान्यता वेदों की उक्तियों के सर्वथा विपरीत है जो ब्रह्म के अन्य अंगों की अनुपस्थिति की सब प्रकार से स्वीकार करती हैं। उपनिषद् भी बार-बार उद्घोषित करते हैं कि ब्रह्म पूर्ण हैं--अविभाज्य है। यदि यह स्वीकार किया जाय कि ब्रह्म समग्र रूप से जगत् को व्याप्त करता है, तो यह भी आप्ति-जनक ही सिद्ध हो जाता

---

१. शैलास्तस्यास्थि संघास्तु भेदो मांसं च मेदिनी ॥
समुद्रास्तस्य रुधिरमाकाशमुदरं तथा।
पवनश्चैव निश्वासस्तेजो निर्निम्नगाः शिराः ॥
अग्नीषोमौ च चन्द्राकौ नयने तस्य विश्रुते।
नभश्चोर्द्ध्वशिरस्तस्य क्षितिः पादौ भुजौ दिशः ॥
दुर्विज्ञेयो ह्यचिन्त्यात्मा सिद्धैरपि न संशयः।
स एव भगवान् विष्णुरनन्त इति विश्रुतः।
—नारदीय पुराण, १/४२/१९ब-२२अ।

है; क्योंकि कार्यकारण भाव संदर्भ में नियत और परिमित कार्य को ही कारण समग्ररूप से व्याप्त कर सकता है। यदि कार्य जगत् नियत और परिमित, तो ब्रह्म भी परिमित हुआ—जो वेदों की प्रतिष्ठित मान्यता के विपरीत है; क्योंकि वैदिक साहित्य पौनः पुन्येन ब्रह्म की अनन्तता को उद्घोषित करता है।

इस उपर्युक्त शंका के समाधानार्थ भरद्वाज, भृगु से आकाश, दिशाओं, पृथ्वी और वायु की परिमितता की जिज्ञासा व्यक्त करते हैं।[1] भृगु इस विषय की विवेचना करते हैं और इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यदि कार्य जगत् अनन्त है, तो ऐसे अनन्त कार्य का कारण ब्रह्म भी अनन्त होगा। भृगु प्रत्यक्ष दृष्टांत से इसका स्पष्टीकरण प्रस्तुत करते हैं। उनका कथन है कि आकाश अनन्त है। इसकी अपनी गरिमा है। इसमें चतुर्दश ब्रह्मांड हैं। चन्द्रमा और सूर्य कुछ सीमित क्षेत्र को ही प्रकाशित करते हैं, अन्तरिक्ष का वह क्षेत्र जो उनकी रश्मियों की परिधि से परे उसे वे प्रकाशयुक्त नहीं कर सकते।[2] अन्तरिक्ष के उस क्षेत्र जो चन्द्रमा और सूर्य की किरणों से परे है---दैवी विभूतियां निवास करती हैं जो अग्नि और सूर्य के ही समान प्रकाशवान् और देदीप्यमान् हैं। यहां तक कि ये दैवी शक्तियों की अनन्त अन्तरिक्ष के छोर तक नहीं पहुंच सकती। इस अनन्त अन्तरिक्ष में असंख्य गणनातीत प्रकाशयुक्त दैवी शक्तियां रहती है। पृथ्वी की सीमा के परे समुद्र है। समुद्रों की सीमा के अनन्तर अभेद्य अन्धकार राशि है। तदनन्तर जलराशि है उसके बाद अग्नि का क्षेत्र है। संक्षेप में पृथ्वी की उपरि-सीमा का यही पर्यवेक्षण है। पृथ्वी के नीचे के अधः लोक है। उस अधः लोक के अनन्तर नीचे जलराशि है। तत्पश्चात् सर्प लोक रचित है। सर्पलोक के बाद पुनः अन्तरिक्ष है और अन्तरिक्ष के उपरान्त पुनः जल राशि

---

१. गगनस्य दिशां चैव भूतलस्यानिलस्य च।
कान्यत्र परिमाणानि संशयं छिन्धि तत्त्वतः॥
--नारदीय पुराण १/४२/२४।

२. अनन्तमेतदाकाशं सिद्धदैवतसेवितम्।
रम्मं नानाश्रयाकीर्णं यस्यान्तो नाधिगम्यते॥
उद्ध्वं गतेरधस्तात्तु चन्द्रादित्यौ न पश्यतः।
--नारदीय पुराण १/४२/२५-२६अ

विद्यमान हैं ।[१] अन्तरिक्ष स्पर्श और वर्ण से हीन है । यह अनन्त है । इसे स्थान और समय से आवृत्त नहीं किया जा सकता । उसी प्रकार अग्नि, वायु, जल तथा पृथ्वी भी अनन्त है । यहां तक कि दैवी विभूतियां उनकी अन्तिम सीमा से अवगत नहीं हो सकती । वस्तुस्थिति यह है कि अग्नि, वायु, जल और पृथ्वी आकाश (अन्तरिक्ष) से पृथक् नहीं हैं । सम्यक् आध्यात्मिक ज्ञान के अभाव में ये तत्त्व आकाश से पृथक् प्रतिभासित होते हैं । सभी आकाश, अग्नि, वायु, जल एवं अपने-अपने उपादान कारणों से एक और अभिन्न हैं । कहने का तात्पर्य है कि पृथ्वी, अपने उपादान कारण अग्नि और वायु से अभिन्न है, अग्नि और वायु अपने उपादान कारण जल से तथा जल, महत् से एवं महत् अपने मूल स्रष्टा मानस से एक है । कार्य अपने उपादान कारण से एक तथा अभिन्न है । केवल विश्लेषणात्मक मस्तिष्क को कार्य-कारण भेद है । वस्तुतः दोनों एक हैं । अप्रबुद्ध व्यक्तित्व के लिए पृथ्वी एक स्थूल उपादान कारण है, किन्तु प्रबुद्ध आत्मिकद्रष्ट्रा के लिए कार्य कारण भाव की अवरोधक सीमा का सर्वथा अभाव है । वह पृथ्वी को मानस के रूप में साक्षात्कार करता है । कुछ ने पृथ्वी अन्तिरिक्ष (आकाश), अयः लोक तथा समुद्रों की सीमा निर्धारण का इत्थें रूप से प्रयास किया है, लेकिन उस सम्बन्ध में इतना निवेदन है कि उनका आकलन अयुक्ति-जनित विवेचन का परिणाम है । उनकी अन्तिम सीमा अदृश्य और अज्ञेय है । अतः उनकी सीमा का आकलन सम्भव नहीं हैं । दिव्य विभूतियों के निवास-स्थल अन्तरिक्ष की सीमा निर्धारण समीचीन प्रतीत है, लेकिन परम तत्त्व, मानस अनन्त है और सीमाओं से रहित है । अतः उस असीमित की किसी सीमा विशेष का निर्धारण अतिशयोक्ति पूर्ण है । यह समग्र जगत् उस परम तत्त्व की व्यापनशील विश्वात्मक रूप की अभिव्यक्ति । उस परम की दिव्यता जगत् के रूप में आविर्भूत होती है । प्रलयावस्था में जगत् उसी परम तत्त्व मानस में विलीन हो जाता है । यह प्रत्यक्ष है कि सृष्टि से पूर्व जगत् नहीं है और बाद भी वह नहीं है । अतः यह जगत् असत् है । इसकी तुलना भृगतृष्णा से की जा सकती है ।

---

१. तत्र देवाः स्वयं दीप्ता भास्कराभाग्निवर्चसः ।
ते चाप्यन्तं न पश्यन्ति नभसः प्रथितौनसः ।।
दुर्गमत्वादनन्तत्वा दिति मे वद मानद ।
निरूद्धमेतदाकाशं ह्यप्रमेयं सुरैरपि ।।

—वही १/४२/२६ब-२८

परम तत्त्व मानस ने प्रजापति ब्रह्मा को एक देदीप्यमान कमल से जन्म दिया। तदनन्तर भरद्वाज ने एक बड़ा ही सारगर्भित प्रश्न उठाया। जब ब्रह्मा की उत्पत्ति कमल से है, तो निश्चित रूप से कमल की अवस्थिति ब्रह्मा से पूर्व है। स्वतः सिद्ध हो जाता है। ऐसी स्थिति में ब्रह्मा को पूर्वज कैसे कहा जा सकता है।[1] भृगु ने प्रत्युत्तर में निवेदन किया कि परम तत्त्व मानस ने अपने को ब्रह्मा के शरीर के रूप में परिवर्त्तित कर दिया। पृथ्वी, कमल के रूप में उसका आसन बन गई।[2] गगनचुम्बी सुमेरू पर्वत उस कमल का कोश बना। इसी कोश में रहते हुए जगत् के स्वामी ब्रह्मा ने तीनों जगत् की रचना की। जिस प्रकार बीज, लता और अंकुरों को जन्म देता है, लेकिन परिपक्व फल के समान लता और अंकुर बीज को जन्म नहीं दे सकते। फल अपने में असंख्य बीजों को रखता है। फल की क्षमता वृक्ष के बीज से अपेक्षाकृत अधिक होती है। उसी प्रकार परम तत्त्व मानस से सूत्र और विराट् उत्पन्न होते हैं।, लेकिन सूत्र और विराट् अपने समान दूसरे को जन्म नहीं दे सकते हैं। मानस, वृक्ष का फल है तो सूत्र और विराट् अंकुर तथा वृक्ष हैं। ब्रह्मा की तुलना बीज से दी जा सकती है। ब्रह्मा में मानस की दैवी विभूति समग्ररूप से अपनी अभिव्यक्ति पाती है। अतः ब्रह्मा, सूत्र तथा विराट् की अपेक्षा अवश्य ही महत्ता है। इस परिप्रेक्ष्य में ब्रह्मा की उत्पत्ति कमल से हुई इसे अक्षरशः लेना समीचीन नहीं हैं। इसका तात्पर्य यही है कि परम तत्त्व मानस कमल के माध्यम से ब्रह्मा के रूप में अभिव्यक्त होता है। पूर्वापर जन्म ग्रहण करने का प्रश्न तो कार्य-कारणभाव से सम्बद्ध के विषय में उठता है। जहां तक अभिव्यक्ति का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में पूर्वापर का प्रश्न नहीं उपस्थित होता।

उपर्युक्त सृष्टि विषयक समाधान भरद्वाज के मस्तिष्क में पुनः एक संदेह को जन्म दिया। यह मान्यता प्राप्त है कि जन्तु चार प्रकार के होते हैं—गर्भज,

---

१. पुष्कराद् यदि सम्भूतो ज्येष्ठं भवति पुष्करम्।
ब्रह्माणं पूर्वज चाह भवान् सन्देह एवमे॥

नारदीय पुराण, १/४३/३८

२. मानसस्येह या मूर्तिर्बह्मत्वं समुपागता।
तस्यासनविधानार्थं पृथिवी पद्ममुच्यते।

वही, ३९

अण्डज, स्वदेज एवं भूमिज। यह कहा जाता है कि सृष्टि कर्त्ता ब्रह्मा, पृथ्वी रूपी काल्पनिक कमल के कोश सुमेरू पर्वत को अपना निवास स्थान बनाया। इससे स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्मा और उनके द्वारा विरचित वस्तुओं में एक महती दूरी थी। यह सर्वविदित तथ्य है कि विविध प्रकार के प्राणियों के जन्म और मृत्यु का निर्णायक उनके द्वारा कृत शुभाशुभ कर्म है।[१] ऐसी स्थिति में ब्रह्मा को विविध प्राणियों की सृष्टि का कर्त्ता कैसे माना जा सकता है। यह प्रश्न भरद्वाज ने भृगु से पूछा। भृगु ने उत्तर में निवेदन किया कि परम तत्त्व मानस, अपने ब्रह्मा के स्वरूप में कमल के आसन पर विराजमान होकर अपने अध्यात्मिक ध्यान के माध्यम से विविध प्रकार के जन्तुओं की सृष्टि की।[२] दैवी ध्यान दिव्य शक्तियों से युक्त है। अतः इसे अगणित प्राणियों के जन्म का बीज स्कीवार किया जा सकता है। प्राणियों के जीवनधारणा हेतु उस परम तत्त्व ने सर्वप्रथम जल की सृष्टि की; क्योंकि जल सभी प्राणियों का जीवन है।[३] जल उनकी आकृति-अभिवृद्धि में सहायक है। उसका अभाव प्राणियों की अवस्थिति के लिए घातक है। समस्त सृष्टि जल से ही आवृत्त है। वस्तुतः पृथ्वी, पर्वत, मेघ इत्यादि सभी दृश्य पदार्थ जल से उत्पन्न हुए हैं।[४]

---

१. कर्णिका तस्य पद्मस्य मेरूर्गगनमुच्छितः।
तस्य मध्ये स्थितो लोकान्सृजत्येष जगद्विधिः॥

नारदीय पुराण, १/४२/४०

२. प्रजाविसर्गं विविधं मानसो मनसासृजत्।

वही, १/४२/४२ अ

संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति।

छान्दोग्य उप० ८/२/१

३. संरक्षार्थं भूतानां सृष्टं प्रथमतो जलम्।
यत्प्राणाः सर्वभूतानां सृष्टं प्रथमतो जलम्।
यत्प्राणाः सर्वभूतानां वर्द्धन्ते येन च प्रजाः॥

नारदीय पुराण, १/४२/४२ब-४३

४. परिप्पक्ताश्च नश्यन्ति तेनेदं सर्वमावृतम्।
पृथिवी पर्वता मेधा मूर्तिमन्तश्च ये परे॥

वही, ४४

भरद्वाज पुनः अपनी जिज्ञासा प्रकट करते हैं। यदि ब्रह्मा को भौतिक प्राणियों-जन्तुओं और वनस्पतियों की सृष्टि करने की शक्ति प्रदत्त थी तथा पंच भूतों की रचना उनकी शक्ति से बहिमुख थी एवं भौतिक प्राणियों का आविर्भाव पंच भूतों से की रचना से पूर्व हो गया तो यह कैसे कहा जा सकता है कि ब्रह्मा ने जल और अन्य भूतों की रचना की।[1] भृगु ने इसका समाधान करते हुए कहा कि अत्यन्त प्राचीन काल में भी ऋषियों के मस्तिष्क में भी इसी प्रकार का सन्देह उपस्थित हो गया; क्योंकि उपनिषदों में यह स्पस्ट उल्लेख किया गया है कि जगत् की संरचना विविध तत्त्वों—काल, प्रकृति, प्राक्तन शुभाशुभ कर्म, पंचभूतों, परमब्रह्म से हुई। इस विचार में अनेक परवर्ती चिन्तक-सम्प्रदायों को जन्म दिया। ज्योतिर्विदों ने जगत् की सृष्टि काल से मानी। बौद्धों और भौतिक चार्वक दर्शनावलम्बियों ने सृष्टि हेतु प्रकृति को मान्यता प्रदान की। मीमांसक यह मानते हैं कि जगत् की सृष्टि प्राणियों के पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मों के परिणामस्वरूप हुई। न्याय-वैशेषिक दर्शन मतानुयायी यह सर्वसम्मति से मान्यता प्रदान करते हैं कि जगत् की रचना में मूल कारण भूत हैं। औपनिषदिक ऋणिगण का विचार है कि दृश्य सृष्टि का कर्त्ता परम ब्रह्म है। समाधान हेतु प्राचीन ऋषियों ने उपवास का अवलम्बन ग्रहण किया। उन्होंने अपने को ध्यानावास्थित कर दिया। पूर्ग शान्ति व्याप्त हो गयी। दिव्य शतवर्ष व्यतीत हो गए। स्वर्ण से ऋषियों के कर्ण-कुहरों में दैवी ध्वनि प्रविष्ट हुई। उसने यही सन्देश दिया कि सृष्टि के प्रारम्भावस्था में केवल उस समय अन्तरिक्ष विद्यमान था। उस समय न सूर्य था न चन्द्रमा, न वायु और न कोई प्रकाशपुंज। अन्तरिक्ष घोर प्रसुप्तावस्था में लीन था। तदनन्तर अन्तरिक्ष से जल का प्रादुर्भाव हुआ। तत्पश्चात् अन्तरिक्ष के साथ जल के सम्पर्क से

---

१. कथं सलिलमुत्पन्नं कथं चैवाग्निमासतौ।
कथं वा मेदिनी सृष्टेत्यत्र में संशयो महान्॥

वही, ४५ब-४६अ

वायु अस्तित्व में आया।[1] उपर्युक्त विवेचना एक उदाहरण से स्पष्ट की जा सकती है। जब छिद्र रहित किसी पात्र को जल से भर दिया जाता है, तो वायु एक गम्भीर ध्वनि करते हुए उस पात्र से निःसृत हो जाता है। ठीक उसी प्रकार अन्तरिक्ष, जल के भार से भयंकर रूप से आक्रान्त हुआ और परिणाम-स्वरूप वायु गम्भीर ध्वनि के साथ जल की सतहों को विदीर्ण करते हुए निःसृत हो गया। इस प्रकार जल के भार से जनित वायु, अन्तरिक्ष के अनन्त सीमा में प्रवहमान हो गया। तत्पचात् जल और वायु के संघर्षण ने अग्नि को जन्म दिया जिसकी अर्ध्वसंचरणशील ज्वालाओं ने अन्तरिक्ष को देदीप्यमान बना दिया। इस अग्नि ने वायु के सहयोग से जल और अन्तरिक्ष को एक साथ आबद्ध किया और अग्नि, वायु, जल एवं अन्तरिक्ष के सहयोग ने पृथ्वी तत्त्व को जन्म दिया। यह पृथ्वी, विविध गन्धों-स्वाद तथा द्रवीय तत्त्वों का उद्गम स्थान बन गई। पृथ्वी ही विविध कोटि के जन्तुओं, वनस्पतियों की जन्मदात्री बनी।

उपर्युक्त सृष्टि-वर्णन के विश्लेषण से यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि यह सृष्टि-प्रक्रिया अकस्मात् नहीं प्रवृत्त हुई। यह एक व्यवस्थित व्यवस्था का परिणाम है। प्रथमतः अन्तरिक्ष का आविर्भाव हुआ जिससे जल उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् अन्तरिक्ष तथा जल के सहयोग ने वायु को जन्म दिया। तदनन्तर तीनों के समवाय ने अग्नि को उत्पन्न किया। अन्ततोगत्वा इन चारों के साहचार्य से पृथ्वी का आविर्भाव हुआ। इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि

---

१. ब्रह्मकल्पे पुरा ब्रह्मन् ब्रह्मर्माणिणां समागमे।
लोकसम्भवसंदेहः समुत्पन्नो महात्मनाम।
ते तिष्ठन्ध्यानमालव्य मौनमास्थाय निश्चलाः॥
त्यक्ताहाराः स्पर्द्धमाना दिव्यंवर्णशतं द्विजाः।
तेषां ब्रह्ममयी वाणी सर्वेषां श्रोत्रमागमत्॥
पुरस्तमिक्तमा शमनन्तभचलोपमम्।
नष्टचन्द्रार्कपवनं प्रसुप्तमिव सम्बभौ।
ततः सलिलमुत्पन्नं तमसीव तमः परम्।
तस्मा सलिलोत्पीडादुदतिष्ठत मारुतः।
नारदीय पुराण १/४२/४६-५१ब।

इन भौतिक पंच तत्त्वों के समवाय से सृष्टि का आविर्भाव नहीं हुआ। एक सर्वशक्तिमान परम तत्त्व है जो आधार रूप से प्रत्येक स्तर पर अवस्थित है जिससे यह सृष्टि प्रक्रिया प्रवृत्त हुई। अतः इस प्रकार इस नारदीय पुराण के द्वारा वर्णित सृष्टि-प्रक्रिया सांख्य दार्शनिकों के द्वारा प्रस्तुत सृष्टि विषयक विवेचना सर्वथा भिन्न है।

उपर्युक्त प्रस्तुत दार्शनिक विवेचना का स्वारस्य यह है कि यह समस्त जगत्, मानस की मानसिक योजना है। अतः यह वास्तविकता से रहित है। यह निर्दिष्ट है कि मानव, मानस से आविर्भूत हुआ। मानस आदि कारण है और मानव कार्य है। इस प्रकार साधारण रूप से कारण की विशिष्टताएं कार्य में अन्तर्हित हैं।

षष्ठ अध्याय

श्रीमद्भागवत पुराण
में
सृष्टि-विवेचना

श्रीमद्भागवत पुराण में सृष्टि-वर्णन

वैष्णव पुराणों में श्रीमद्भागवत पुराण एक अद्वितीय महनीयता से मंडित है। महर्षि वेदव्यास ने इसे निगम कल्पतरू का गलित अमृतमय फल कहा है।[1] अन्य पुराणों से इस प्रस्तुत पुराण की कई उल्लेखनीय विशेषताएं हैं। यह पुराण अद्वैत तत्त्व का ही प्रतिपादन स्पष्ट शब्दों में करता है। इस पुराण के द्वितीय स्कन्ध के नवम अध्याय में ब्रह्मा को भगवद्धाम का दर्शन होता है और परम तत्त्व भगवान् उन्हें चतुःश्लोकी भागवत का उपदेश करते हैं एवं कहते हैं कि हे ब्रह्मन्! सृष्टि के पूर्व केवल मैं ही एक मात्र था। मेरे अतिरिक्त उस समय सत् अर्थात् कार्यात्मक स्थूल न था। असत् भी नहीं था अर्थात् कारणात्मक सूक्ष्म न था। स्थूल और सूक्ष्म दोनों का कारण अज्ञान भी न था। यहां तक इस असत और सत् का कारणभूत प्रधान भी अन्तर्मुख होकर मुझमें लीन था। जहां यह सृष्टि नहीं है, वहां मैं ही हूं और सृष्टि के रूप में जो कुछ प्रतीत हो रहा है, वह भी मैं ही हूं, और जो कुछ अशेष रहेगा वह भी मैं ही हूं। सृष्टि का यह प्रपंच मैं ही हूं और प्रलय में सब पदार्थों के लीन हो जाने पर मैं ही एकमात्र अवशिष्ट रहूंगा। अपनी माया के सम्बन्ध में भगवान् का कथन है वास्तव में न होने पर जो कुछ अनिर्वचनीय वस्तु मेरे अतिरिक्त मुझ परमतत्त्व परमात्मा में दो चन्द्रमाओं की तरह मिथ्या ही प्रतीत हो रही है अथवा विद्यमान होने पर भी आकाश-मण्डल के नक्षत्रों में राहु की भांति जो

---

१. अहमेवासमेवाग्रे नान्यत्सदसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्।
भाग०, २/९/३२।

मेरी प्रतीति नहीं होती, यही मेरी माया है।[1] जैसे प्राणियों के पंचभूतरहित छोटे-बड़े शरीरों में आकाशादि पंचमहाभूत उन शरीरों के कार्यरूप में निर्मित होने के कारण प्रवेश करते भी है और पहले से ही विद्यमान रहने के कारण प्रवेश नहीं भी करते, वैसे ही उन प्राणियों के शरीर की दृष्टि से मैं उनमें आत्मा के रूप से प्रवेश किए हुए और आत्मदृष्टि से अपने अतिरिक्त और कोई वस्तु न होने के कारण उनमें प्रविष्ट नहीं भी हूं।[2] इससे स्वत: स्पष्ट है भगवान् निर्गुण सगुण, जीव एवं जगत् सब वही है। अद्वयतत्त्व सत्य है। उसी एक अद्वितीय परमार्थ को ज्ञानी जन ब्रह्म, योगी परमात्मा, भक्तगण भगवान् के नाम से पुकारते हैं।[3] वही जब सत्त्वगुणरूपी उपाधि से अवच्छिन्न न होकर अव्यक्त निराकार रूप से रहता है, तब निर्गुण कहलाता है और उपाधि से अवच्छिन्न होने के कारण सगुण कहलाता है। "परमार्थभूत" ज्ञान सत्य, विशुद्ध, एक बाह्याभ्यन्तर—भेद रहित, परिपूर्ण अन्तर्मुख तथा निर्विकार है—वही भगवान् तथा वासुदेव शब्दों के द्वारा अभिहित है। सत्वगुण की उपाधि से अवच्छिन्न होने पर वही निर्गुण ब्रह्म प्रधानतया विष्णु, रूद्र, ब्रह्मा तथा पुरुषचार प्रकार का सगुण रूप धारण करता है। शुद्ध सत्वावच्छिन्न चैतन्य, विष्णु है। रजोमिश्रित सत्वावच्छिन्न चैतन्य ब्रह्मा, तमोमिश्रित सत्वावच्छिन्न चैतन्य को रूद्र एवं तुल्यबल रज तम से मिश्रित सत्वावच्छिन्न चैतन्य को पुरुष कहते हैं। जगत् की स्थिति, सृष्टि तथा संहार-व्यापार में विष्णु, ब्रह्मा और रूद्र निमित्त कारण है पुरुष उपादान कारण होता है, ये चारों ब्रह्म के ही सगुण रूप है। अत: श्रीमदभागवतपुराण के मतानुसार ब्रह्म ही अभिन्न-निमित्तोपादान कारण

---

१. ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तम:।

भाग०, २/९/३३।

२. यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावयेष्वनु।
प्रविष्टान्य प्रविष्टानि यथा तेषु न तेष्वहम्॥

—वही,—३४

३. वदन्ति तत् तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मयेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

भाग०, १/२/११

है । परमब्रह्म ही जगत् के स्थित्यादि व्यापार के लिए भिन्न-भिन्न रूप धारण करता है ।[१] परमेश्वर का जो अंश चित् शक्ति से समन्वित है उसी का अभिधान पुरुष है । पुरुष प्रकृति तथा प्रकृतिजन्य कार्यों का वीक्षण, नियमन, प्रवर्त्तन आदि करता हूं । पुरुष, माया सम्बन्ध से रहित होते हुए भी माया से युक्त रहता है । इसी पुरुष से भिन्न-भिन्न अवतारों का आविर्भाव होता है ।[२] ब्रह्मा, विष्णु, रूद्र परब्रह्म के गुणावतार है । इसी कारण श्रीमद्भागवत में कल्पावतार, मन्वन्तरावतार आदि तथा विभिन्न सृष्टि विषयक विषयों का वर्णन बड़े विस्तार से किया गया हैं । इस अध्याय में उन्हीं का वर्णन किया जाएगा ।

श्रीमद्भागवत के सृष्टि-वर्णन की विशेषता है कि इस पुराण में यत्र-तत्र सर्वत्र परब्रह्म की संस्तुतियां उपलब्ध होती हैं जिनमें ध्रुवस्तुति, प्रह्लाद-स्तुति, ब्रह्मा-स्तुति, गजेन्द्र-स्तुति, गोपियों की स्तुति इत्यादि विशेष रूप से उल्लेखनीय है । इन सभी स्तुतियों में सृष्टि सम्वद्ध विषय मिलते हैं जिनका वर्णन परब्रह्म परमात्मा के परमैश्वर्य वर्णन प्रसंग में किया गया है । इसके अतिरिक्त विविध स्कन्धों में पृथक्-पृथक् सृष्टि का वर्णन किया गया है । सर्वप्रथम द्वितीय स्कंध में वर्णित प्रस्तुत विषय की चर्चा मैं करता हूं । राजा परीक्षित, मुनीश्वर श्री शुकदेव से प्रश्न करते हैं कि मुनिश्वर ! मैं आपसे जानना चाहता हूं कि भगवान् अपनी माया से इस जगत् की रचना कैसे करते हैं । भगवान् ! यह विषय तो गूढ़ है जगत् की रचना इतनी रहस्यमयी है कि ब्रह्मादि समर्थ लोकपाल भी इसे नहीं समझ सकते हैं । भगवान् कैसे इस जगत् की रक्षा और पुनः इसका संहरण करते हैं । अनन्तशक्ति सम्पन्न परमात्मा किन-किन शक्तियों को ग्रहण कर अपने आपको ही क्रीड़ा की सामग्री बनाकर क्रीड़ा करता है । बालक जैसे घरौंदा बनाता है तथा पुनः उसे मिटा देता है, उसी

---

१. आद्योऽवतारः पुरुषः परस्य कालः स्वभावः सदसन्मनश्य ।
द्रव्यं विकारो गुण इन्द्रिमाणि विराट् स्वराट् स्थास्नु चरिष्णु भूम्नः ॥
—भाग०, २/६/४१

२. भूयः एव विवित्सामि भगवानात्ममायया ।
यथेदं सृजते विश्वं दुर्विभाव्यमधीश्वरैः ॥
—भाग० २/४/६

प्रकार परमात्मा इस ब्रह्माण्ड को बनाते और मिटा देते हैं। भगवान् श्रीहरि की क्रीड़ाएँ बड़ी ही अद्भुत हैं। निःसंदेह महान् से महत्तम विद्वान् के लिए भी उनकी लीला का रहस्य जानना दुर्विभाव्य तथा अत्यन्त कठिन है।[1] वैयासकि शुकदेव ने उत्तर में कहा कि हे राजन्! परमशक्ति परमात्मा संसार की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय रूपी लीलाओं के लिए सत्व, रज तथा तमोगुण रूप तीन शक्तियों को स्वीकार कर ब्रह्मा, विष्णु और शंकर का रूप धारण करता है। वह परमशक्ति समस्त चर तथा अचर प्राणियों के हृदय देश में अन्तर्यामी रूप से विराजमान है। इसके स्वरूप तथा इसकी उपलब्धि का मार्ग बुद्धि से परे हैं। वह स्वयं अनन्त है तथा उसकी महिमा अनन्त है।[2] इसी अनन्त परमशक्ति की जगत् संरचना, स्थिति-संहार रूपी रहस्यमयी लीला की जिज्ञासा से एक बार महर्षि नारद ने वेदगर्भ स्वयम्भू ब्रह्मा से उपर्युक्त आशय का निम्नलिखित प्रश्न किए थे "हे पिताजी! इस जगत् का क्या लक्षण है? इस जगत् का निर्माण किसने किया? इसका प्रलय किसमें होता है? इत्यादि" अतः श्री शुकदेव राजा परीक्षित के सृष्टि विषयक प्रश्नों का समाधान ब्रह्मा की उक्ति से निम्न प्रकार से कर रहे हैं। ब्रह्मा कहते हैं "कि वत्स नारद! मुझसे परे परम तत्त्व है। वह स्वयं भगवान् है जिसके जान लेने पर सब कुछ ज्ञात हो जाता है। सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र सभी उसी परम भगवतत्व के प्रकाश से प्रकाशित हैं। मैं भी उसी के प्रभाव से इस जगत् की संरचना करता हूं तथा उसके चिन्मय प्रकाश से प्रकाशित होकर जगत् को प्रकाशित करता हूं"।[3] द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव और

---

१. यथा गोपायति विर्भुयथा संयच्छते पुनः।
यां यां शक्तिमुयाश्रित्य पुरूशक्तिः परः पुमान्॥
आत्मानं क्रीऽमन् क्रीऽन् करोति विकरोति च॥
—भाग०, २/४/७.

२. नमः परस्मै पुरुषाय भूयसे सदुद्भवस्थाननिरोधलीलया।
गृहीतशक्तित्रितयाय देहिनामन्तर्भवायानुपलक्ष्यवर्त्मने॥
भाग० २/४/१२.

३. येन स्वरोचिष्पा विश्वं रोचितं रोचयाम्यहम्।
यथार्कोऽग्निर्यथा सोमो यथर्क्षग्रहतारकाः॥
—भाग०, २/५/१०

जीव-वस्तुतः उस भगवत्तत्व से भिन्न अन्य नहीं है। भगवान् की माया दुर्नय है। यह माया उसके सामने लज्जाशील रहती है और उससे दूर ही पलायमान रहती है। उसी से संमोहित समस्त सृष्टि है।[1] भगवत्तत्व माया के गुणों से रहित है। वह अनन्त है। जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय के लिए रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण ये तीन गुण माया के द्वारा उस परम तत्त्व में स्वीकार किए जाते हैं। ये ही तीनों गुण द्रव्य ज्ञान और क्रिया का आश्रय लेकर मायातीत नित्यमुक्त पुरुष को ही माया में स्थित होने पर कार्य, कारण और कर्त्तव्य के अभिमान से आबद्ध कर देता है। भगवान् इन्द्रियातीत है। वह सत्त्व, रज तथा तम इन तीनों गुणों के (इन तीन आवरणों से अपने स्वरूप को आच्छादित कर देता है। यही कारण है कि उसे लोग नहीं जान पाते। भगवान् मायापति है। सर्वप्रथम उसके मानस में एक से अनेक होने की इच्छा प्रकट होती है। तदनन्तर अपनी माया से अपने स्वरूप में स्वयं प्राप्त काल, कर्म और स्वभाव को भगवान् स्वीकार करता है।[2] तत्पश्चात् काल भगवत्तत्त्व की शक्ति से तीनों गुणों में क्षोभ उत्पन्न करता है। स्वभाव उन्हें रूपान्तरित करता है और कर्म महत्तत्त्व को जन्म देता है। रजोगुण और तमोगुण की अभिवृद्धि होने पर महत्तत्त्व में विकार उत्पन्न होता है जिसके परिणामस्वरूप ज्ञान, क्रिया एवं द्रव्य रूप तमप्रधान विकार का आविर्भाव होता है। यही तमप्रधान विकार अहंकार के नाम अभिहित होता है। जब अहंकार विकार को प्राप्त होता है, तब उसके वैकारिक तैजस और तामस तीन भेद हो जाते हैं। ये क्रमशः ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और द्रव्यशक्ति प्रधान है। जब तामस अहंकार में पंचमहाभूतों के कारण विकार उत्पन्न होता है,

---

१. यन्मायया दुर्जयया मां ब्रुवन्ति जगद्गुरुम् ॥
विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया ।
विमोहिता विकत्थन्ते ममाहमिति दुर्धियः ॥
—भाग०, २/५/१२-१३.

२. स एष भगवांल्लिगैस्त्रिभिरेभिरधोक्षजः ।
स्वलक्षितगति ब्रह्मन् सर्वेणां मम चेश्वरः ॥
कालं कर्म स्वभावं च मायेशो मायया स्वया ।
आत्मन् यदृच्छया प्राप्तं विबुभूषुरुपाददे ॥
—वही, २०-२१.

तब उससे आकाश का आविर्भाव होता है। आकाश की तन्मात्रा और गुण शब्द है। इसी शब्द के माध्यम से द्रष्टा और दृश्य का बोध होता है। जब आकाश में विकार होता है, तब उससे वायु की उत्पत्ति होती है। वायु का गुण स्पर्श है। अपने कारण आकाश का गुण शब्द भी वायु में आ जाता है अत: वायु शब्द और स्पर्श दोनों से युक्त होता है। इन्द्रियों में स्फूर्ति, शरीर में जीवनीशक्ति, ओज एवं बल इसी वायु के रूप हैं। पुन: काल, कर्म और स्वभाव से वायु में विकृति उत्पन्न होती है और उससे तेज की उत्पत्ति होती है। तेज का प्रधान गुण रूप है। साथ ही इसके कारण आकाश और वायु के गुण शब्द तथा स्पर्श भी इस तेज में आते हैं। जब तेज में विकार आता है तब उससे जल की उत्पत्ति होती है। जल का प्रधान गुण रस है और कारण तत्त्वों आकाश, वायु एवं तेज के गुण शब्द, स्पर्श एवं रूप भी जल में आ जाते हैं। जब जल में विकार आता है, तब विकृत जल से पृथ्वी का आविर्भाव होता है। पृथ्वी का गुण गन्ध है। कारण के गुण कार्य में आते हैं इस न्याय से शब्दास्पर्श, रूप, रस—ये चारों गुण भी पृथ्वी में गन्ध के अतिरिक्त विद्यमान रहते हैं। वैकरिक अहंकार से मन तथा इन्द्रियों के दस अधिष्ठातृ देवताओं की उत्पत्ति होती हैं। इन दस इन्द्रियों के उस अधिष्ठातृ देवता—दिशा, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मित्र और प्रजापति हैं। तैजस अहंकार के विकार से श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और घ्राण—ये पांच ज्ञानेन्द्रियों एवं वाक् हस्त, पाद, गुदा और जननेन्द्रिय —ये पांचकर्मेन्द्रियां उत्पन्न हुई। साथ ही ज्ञानशक्तिरूप बुद्धि और क्रियाशक्तिरूप प्राण भी तैजस अहंकार से उत्पन्न हुए।

जिस समय तक ये पंचभूत, इन्द्रिय मन और सत्व आदि तीनों गुणों परस्पर संगठित नहीं थे तब तक अपने रहने योग्य भागों के साधनरूप शरीर की रचना नहीं कर सके। भगवत्तत्त्व ने अपने शक्ति से प्रेरित किया। तत्पश्चात् सभी तत्त्व परस्पर एक-दूसरे के साथ मिल गए और उन तत्त्वों ने आपस में कार्यकारणभाव स्वीकार कर व्यष्टि-समष्टिरूप पिण्ड और ब्रह्माण्ड

दोनों की संरचना की ।[1] वह ब्रह्माण्ड रूप अण्ड एक सहस्त्र वर्ष पर्यन्त निर्जीव रूप से जल में पड़ा रहा पुनः काल, कर्म और स्वभाव को स्वीकार करने वाले भगवत्तत्त्व ने उसे जीवन प्रदान किया । उस अण्डे को फोड़कर उसमें से वही विराट् पुरुष निकला जिसकी जंघा, चरण भुजाएँ, नेत्र, मुख और सिर सहस्त्रों की संख्या है ।[2] विद्वानों ने उपासना हेतु उसी विराट् पुरुष के अंगों में समस्त लोक और उन लोकों में रहनेवाली वस्तुओं की कल्पना की । उसके कटि-प्रदेश से नीचे के अंगों से सातों पाताल की और उसके पेडू से ऊपर के अंगों में सातों स्वर्ग की कल्पना की । ब्राह्मण उस विराट् पुरुष का मुख है भुजाएं क्षत्रिय हैं, जांघों से वैश्य और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए ।[3] पैरों से लेकर कटि-पर्यन्त सातों पाताल तथा भूलोक की कल्पना की गई । नाभि में भुवर्लोक की, हृदय में स्वर्लोक की, और परमात्मा के वक्षःस्थल में महर्लोक की कल्पना की गई । उस विराट् पुरुष की कमर में अतल, जांघों में वितल, घुटनों में सुतल-लोक और जंघाओं में तलातल की कल्पना की गई । एड़ी के ऊपर की गांठों में महातल, पंजे और एड़ियों में रसातल और तलुओं में पाताल की अवस्थिति

---

१. यदैतेऽसंगता भावा भूतेन्द्रियमनोगुणाः ।
यदायतननिर्माणे न शेकुर्ब्रह्मवित्तम ॥
तदा संहृत्य चान्योन्यं भगवच्छक्तिचोदिता ।
सदसत्त्वमुपादाय चोभयं ससृजुर्ह्यदः ॥
—श्रीमद्भाग०, २/५/३२-३३.

२. स एव पुरुषस्तस्मादण्डं निर्भिद्य निर्गतः ।
सहस्त्रोर्वङ्घ्रिबाह्वक्षः सहस्त्राननशीर्षवान् ॥
—श्रीमद्भाग०, २/५/३५
तस्माद्विराठजायत् विराजो अधि पुरुषः ।
—ऋग्वेद, १०/९०/५

३. पुरुषस्य मुख ब्रह्म क्षत्रत्रेतस्य बाहवः ।
अर्वोर्वैश्वो भगवतः पदभ्यां शूद्रो भ्यजायत ॥
—श्रीमद्भाग०, २/५/३७
ब्राह्मणो स्य मुखमासीद बाहू राजन्यः कृतः ।
अरू तदस्य यदवैश्यः पदभ्यां शूद्रो अजायत ॥
—ऋग्वेद, १०/९०/१२

समझी गई। इस प्रकार विराट् पुरुष सर्वलोकमय है। विराट् भगवान् के अंगों में इस प्रकार भी लोकों की कल्पना की जाती है कि उनके चरणों में पृथ्वी है, नाभि में भुवर्लोक है और सिर में स्वर्लोक है।

उन्हीं विराट् पुरुष के मुख वाणी और उसके अधिष्ठातृ देवता अग्नि उत्पन्न हुए हैं। सातों छन्द—गायत्री, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, उष्णिक् बृहती, पंक्ति और जगती—उनकी सातों धातुओं से निःसृत हुए। विराट् पुरुष की जिह्वा से मनुष्यों, पितरों और देवताओं के भोज्य अमृतमय अन्न, सब प्रकार के रस, रसनेन्द्रिय और उसके अधिष्ठातृ देवता वरुण उत्पन्न हुए। उनके नासिका के छिद्रों से प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान—ये पांचों प्राण और वायु तथा घ्राणेनिय से अश्विनीकुमार, समस्त औषधियों एवं साधारण तथा विशेष गन्ध उत्पन्न हुए। उनकी नेत्रेन्द्रिय रूप और तेज की तथा नेत्रगोलक स्वर्ग और सूर्य की जन्मभूमि हैं। समस्त दिशाएँ और पवित्र करने वाले तीर्थ कर्णों से तथा आकाश और शब्द श्रोत्रेन्द्रिय से निकले। उस विराट् पुरुष का शरीर समस्त जगत् की सभी वस्तुओं का सारभाग और सौन्दर्य का कोण है। समस्त यज्ञ, स्पर्श और वायु उस विराट् की त्वचा से निकले हैं। उसका रोम सभी उद्भिज पदार्थों का जन्मस्थान है। उनके केश, दाढ़ी-मूंछ और नखों से मेघ, विद्युत्, शिला एवं लौह आदि धातुएँ तथा भुजाओं से प्रायः संसार की रक्षा करने वाले लोकपाल प्रकट हुए। उनका संचरण भूः भुवः स्वः—तीनों लोकों का आश्रय है। विराट् पुरुष का लिंग, जल, वीर्य, सृष्टि, मेघ और प्रजापति का आधार है तथा उनकी जननेन्द्रियां मैथुनजनित आनन्द का उद्गम है। विराट् पुरुष की पायुइन्द्रिय यम, मित्र और मल-त्याग का और गुदाद्वार हिंसा, निर्ऋति, मृत्यु और नरक का उत्पत्ति स्थान है। उनकी पीठ से पराजय, अधर्म और अज्ञान, नाड़ियों से नद-नदी और अस्थियों से पर्वतों का निर्माण हुआ। उनके उदर में मूल प्रकृति, रस नाम की धातु तथा समुद्र, समस्त प्राणी और उन समस्त प्राणियों की मृत्यु सन्निहित है। विराट् का हृदय ही समस्त प्राणियों के मन की जन्मभूमि है। यह विषय वर्णनानीत है। समस्त शंकर प्रभृति देवता, सनकादि ऋषि, दैत्य, मनुष्य, नाग, पक्षी, मृग, जन्तु, गन्धर्व, अप्सराएं, यक्ष, राक्षस, भूत-प्रेत, सर्प, पशु, पितर, सिद्ध, विद्याधर, चारण, वृक्ष और भी नाना प्रकार के जीव—जो आकाश, जल और स्थल में रहते हैं—ग्रह-नक्षत्र, केतु, तारें, विद्युत और मेघ ये सब के सब विराट्

पुरुष ही हैं। यह सम्पूर्ण विश्व—जो कुछ कभी था, है या होगा—विराट् पुरुष सबको व्याप्त कर अवस्थित है तथा उसके अभ्यन्तर में यह विश्व उसके केवल दस अंगुल के परिणाम में ही स्थित है।[1]

जिस प्रकार सूर्य अपने मण्डल को प्रकाशित करते हुए प्रकाश को बाहर भी प्रसारित करता है, उसी प्रकार पुराण-पुरुष परमात्मा ही सम्पूर्ण विराट् विग्रह को प्रकाशित करते हुए ही उसके वाह्याभ्यन्तर सर्वत्र रकरस भाव से प्रकाशित है।[2] सम्पूर्ण लोक भगवत्तत्त्व के एक पादमात्र हैं और उसके अंश-मात्र लोकों में समस्त प्राणी निवास करते हैं। जैसे सूर्य अपनी किरणों से सबको प्रकाशित करते हुए भी सबसे पृथक् है, वैसे ही जिस परम पुरुष परमात्मा से इस अण्ड की ओर पंचभूत, एकादश इन्द्रिय एवं गुणमय विराट् की उत्पत्ति हुई है—वह भगवत्तत्त्व ही इन समस्त वस्तुओं के अन्दर और उनके

---

१. सर्वं पुरुष एवेदं भूतं भव्यं भवच्च यत्।
तेनेदभावृतं विश्व विनस्तिमधितिष्ठति॥

—श्रीमद्भाग०, २/६/१५

पुरुष एवेदं सर्वं यदभूतं यच्च भव्यम्।
उताभृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥
त्रिफदूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि॥

—ऋग्वेद, १०/९०/२-४

ब्रह्माण्ड के सप्त आवरणों के वर्णन-प्रसंग में वेदान्त-प्रक्रिया की यह मान्यता है कि पृथ्वी से दसगुना जल है, जल से दसगुना अग्नि, अग्नि से दसगुना वायु, वायु से दसगुना आकाश, आकाश से दसगुना अहंकार, अहंकार से दसगुना महत्तत्त्व और महत्तत्व से दसगुनी मूल प्रकृति है। यह प्रकृति भगवत्तत्त्व के केवल एक पाद में है। इस प्रकार भगवत्तत्त्व की महत्ता स्वतः प्रकट हो जाती है। यही दशागुल—न्यास के नाम से प्रख्यात है।

२. स्वधिष्ण्यं प्रतपन् प्राणो बहिश्च प्रतपत्यसौ।
एवं विराजं प्रतपंस्तपत्यन्तर्बहिः पुमान्॥

श्रीमद्भाग०, २/६/१६

रूप में रहते हुए भी उनसे सर्वथा अतीत है ।[१] ब्रह्मा नारद से पुनः कहते हैं कि "हे नारद ! जिस समय विराट् पुरुष के नाभिकमल से मेरी उत्पत्ति हुई, उस समय विराट् पुरुष के अंगों के अतिरिक्त कोई यज्ञीय सामग्री नहीं उपलब्ध थी । विराट् पुरुष के अंगों में यक्षीय---पशु, यूय, कुश, यज्ञभूमि तथा यज्ञयोग्य उत्तम काल की कल्पना मैंने की । यज्ञ के लिए आवश्यकीय पात्र, जौ, चावल आदि औषधियां घृत आदि स्नेह पदार्थ, छः रस, भटक्, यजुः, साम, चातुर्होत्र, यज्ञों के नाम, अन्य दक्षिणा, व्रत, देवताओं के नाम, संकल्प, तन्त्र, गति, मति, श्रद्धा, प्रायश्चित और समर्पण—यह समस्त यज्ञ-सामग्री विराट् पुरुष के अंगों से एकत्र की गई ।

इस प्रकार विराट् पुरुष के अंगों से ही समस्त यज्ञीय सामग्रियों का संग्रह करके मैंने उन्हीं सामग्रियों से उस यज्ञस्वरूप परमात्मा का यज्ञ के द्वारा यजन किया । नव प्रजापतियों ने समाहित चित्त से अर्न्तयामी रूप से स्थित उस पुरुष की आराधना की । मनु, ऋषि, पितर, देवता, दैत्य और मनुष्यों ने यज्ञों के द्वारा भगवत्तत्त्व की आराधना की । यह सम्पूर्ण विश्व उन्हीं भगवत्तत्त्व नारायण में स्थित है । नारायण प्राकृत गुणों से रहित है, परन्तु सृष्टि के प्रारम्भ में माया के द्वारा बहुत से गुणों को ग्रहण कर लेता है । उन्हीं की प्रेरणा से मैं ब्रह्मा इस विश्व ब्रह्माण्ड की रचना करता हूं । उन्हीं परमतत्त्व नारायण के अधीन होकर रुद्र इस सृष्टि का संहार करते हैं और वे स्वयं ही विष्णु के रूप में इसका पालन तथा संरक्षण करते हैं, क्योंकि सत्त्व, रज और तम की तीन शक्तियां वे नारायण से स्वीकार करते हैं, भाव अथवा अभाव कार्य अथवा कारण के रूप में ऐसी कोई वस्तु नहीं जो भगवत्तत्त्व से भिन्न हो ।[२]

---

१. यस्मादण्डं विराड् जज्ञे भूतेन्द्रियगुणातमकः ।
तत् द्रव्यमत्यगादविश्वं गोभिः सूर्य इवातपन् ।।
श्रीमद्भाग०, २/२/२१

२. नारायणे भगवति तदिदं विश्वमाहितम् ।
गृहीतमायोरूगुणः सर्गादावगुणः स्वतः ।।
सृजामि तन्नियुक्तो हं हरो हरति तद्वशः ।
विश्वं पुरुषरूपेण परिपाति त्रिशक्तिधृक् ।।
श्रीमद्भाग०, २/६/३०-३१

परमात्मा का प्रथम अवतरण विराट् पुरुष है। उसके अतिरिक्त काल, स्वभाव, कार्य, कारण, मन, पंचभूत, अहंकार तीनों सत्त्व, रज और तम गुण, इन्द्रियां, ब्रह्माण्ड शरीर, उसका अभिमानी, स्थावर और जंगभजीव—सबके सब उस अनन्त भगवत्तत्त्व के ही रूप में हैं। मैं, शंकर, विष्णु, दक्षादि प्रजापति, भक्तजन, स्वर्ग के रक्षक, पक्षियों के राजा—गरुड़, मनुष्यों के राजा, अधःलोकों के राजा गन्धर्व, विद्याधर, चारणों के नायक, यक्ष, राक्षस, सर्प, नागों के स्वामी, महर्षि, पितृपति, दैत्येन्द्र, सिद्धेश्वर, दानवराज, प्रेत-पिशाच, भूत-कण्भाण्ड, जल-जन्तु, मृग, संसार में अन्य जितनी वस्तुएं ऐश्वर्य तेज, इन्द्रियवल, मनोवल, शरीरबल तथा क्षमा से युक्त हैं अथवा जो भी विशेष सौन्दर्य, लज्जा, वैभव तथा विभूति से युक्त हैं वे सब के सब परमतत्त्वमय भगवत्स्वरूप ही हैं।[1]

श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कन्ध के पंचम अध्याय में परम भागवत विदुर के प्रश्नात्मक जिज्ञासा की अभिव्यक्ति करने पर परम ज्ञानी मैत्रेय मुनि ने विश्व-सृष्टि की दार्शनिक विवेचना प्रस्तुत की है, जिसका सारांश निम्नलिखित है—यह सृष्टि विषयक विश्लेषण ऋग्वेदीय दशम मण्डल के नासदीय सूक्त के विवेचन से बहुत अंशों में साम्य रखता है।

विश्व-सृष्टि-संरचना के पूर्व समस्त आत्माओं के आत्मा एक पूर्ण परमात्मा मात्र ही था—न द्रष्टा था न दृश्य था। सृष्टि-काल में अनेक वृत्तियों के भेद

---

१. आद्योऽवतारः पुरुषः परस्य कालः स्वभावः सदसन्मनश्च।
द्रव्यं विकारो गुण इन्द्रियाणि विराट् स्वराट् स्थास्नु चरिष्णु भूम्नः॥
अहं भवो यज्ञ इमे प्रजेशा दक्षादयो ये भवदादयश्च।
स्वर्लोकपालाः खगलोकपाला नृलोकपाला स्तललोकयालाः॥
गन्धर्वविधाधरचारणेशा ये यक्षरक्षोरगनागनाथाः।
ये वा ऋषीणामृषभाः पितृणां दैत्येन्द्रसिद्धेश्वर दानवेन्द्राः॥
× × ×
यत्किं च लोके भगवन्महस्वदोजः सहस्वपदबलवत्क्षमावत्।
श्रीहीविभूत्यात्मवदद्भुताणं तत्त्वं परं रूपवदस्वरूपम्॥
श्रीमद्भाग० २/६/४१-४४

से जो अनेकता दृष्टिगत होती है, वह भी वही परमात्मा ही था क्योंकि उसकी इच्छा एकाकी रहने की थी।[1] परमात्मा ही द्रष्टा होकर देखने लगा, पर उसे दृश्य दृष्टिगत नहीं हुआ ; क्योंकि उस समय परमात्मा ही एकमात्र केवल अद्वितीय रूप से प्रकाशित हो रहा है। ऐसी अवस्था में वह अपने को असत् के समान समझने लगा। वस्तुतः वह असत् नहीं था, क्योंकि उसकी शक्तियां प्रसुप्त थीं। उनके ज्ञान का लोप नहीं हुआ था। यह द्रष्टा और दृश्य का अनुसंधान करने वाली शक्ति ही—कार्य कारणरूप माया है। इस भावाभाववरूप अनिर्वचनीय माया के द्वार ही भगवान् इस विश्व का निर्माण करता है।[2] माया त्रिगुणमयी है। कालशक्ति से त्रिगुणात्मिका माया क्षोभ को प्राप्त होती है। तदनन्तर इन्द्रियातीत चिन्मय परमतत्त्व परमात्मा अपने अंश पुरुष रूप से माया में चिदाभासरूप बीज स्थापित करता है। तत्पश्चात् उस काल-शक्ति की प्रेरणा से उस अव्यक्त माया से महत्तत्त्व प्रकट होता है। मिथ्या अज्ञान का नाशक होने के कारण वह विज्ञानस्वरूप और अपने में सूक्ष्मरूप से स्थित प्रपंच की अभिव्यक्ति करने वाला होता है। उसके बाद चिदाभास, गुण और काल के अधीन उस महत्तत्त्व ने परमतत्त्व परमात्मा की दृष्टि पड़ने पर इस विश्व की संरचना हेतु अपना रूपानन्तर करता है। महत्तत्त्व के विकृत होने पर अहंकार की उत्पत्ति होती है। अहंकार, कार्य रूप में अधिभूत है, कारण रूप से अध्यात्म और कर्त्ता रूप से अधिदैव है। अतः कार्य, कारण तथा कर्त्ता रूप होने के कारण अहंकार भूत, इन्द्रिय और मन का कारण है। यह अहंकार वैकारिक (सात्विक), तैजस, (राजस) और तामस भेद से तीन प्रकार का है। अहंतत्त्व में विकार होने पर वैकारिक अहंकार से मन और

---

१. भगवानेक आसेदमग्र आत्माऽऽत्मनां विभुः ।
आत्मेच्छानुगतावात्मा नानामत्युपलक्षणः ॥
श्रीमद्भाग०, ३/५/२३

२. स वा एव तदा द्रष्टा नापश्यद् दृश्यमेकराट् ।
मेनेऽसन्तमिवात्मानं सुप्तशक्तिरसुप्तदृक् ॥
सा वा एतस्य संद्रष्टुः शक्तिः सदसदात्मिका ।
माया नाम महाभाग ययेदं निर्ममे विभुः ॥
वही, २४-२५

जिनसे विषयों का ज्ञान होता है वे इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता उत्पन्न हुए। तैजस अहंकार से ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां उत्पन्न हुई तथा तामस अहंकार से सूक्ष्मभूतों का कारण शब्द तन्मात्रा हुआ और उससे दृष्टान्तरूप से आत्मा का बोध कराने वाला आकाश उत्पन्न हुआ। परमतत्त्व परमात्मा की दृष्टि जव आकाश पर पड़ी, तव उससे पुनः काल, माया और चिदाभास के योग से स्पर्शतन्मात्रा हुआ उसके विकृत होने पर उससे वायु की उत्पत्ति हुई। अत्यन्त वलवान वायु ने आकाश के सहित विकृत होकर रूपतन्मात्रा की रचना और उससे संसार का प्रकाशक तेज उत्पन्न हुआ। पुनः परमात्मा की दृष्टि पड़ने से वायु युक्त तेज ने काल, माया और चिदंश के योग से विकृत होकर रसतन्मात्रा के कार्य जल को उत्पन्न किया। तदनन्तर तेज से युक्त जल ने ब्रह्म का दृष्टिपात होने पर काल, माया और चिदंश के योग से गन्धगुणमयी पृथ्वी को उत्पन्न किया। इन आकाशादि भूतों में से जो-जो भूत पीछे-पीछे उत्पन्न हुए, उनमें क्रमशः अपने पूर्व भूत के गुण भी अनुगत हो गए। ये महत्तत्त्वादि के विकार, विक्षेय और चेतनांशविशिष्ट देवगण परमतत्त्व के ही अंश हैं। ये पृथक्-पृथक् रहकर विश्व रचना रूप कार्य में सफल नहीं हो सकते।[1]

विषयों का रूपान्तर ही काल का आकार है। काल स्वयं निर्विशेष, अनादि और अनन्त है। उसी काल को निमित्त बनाकर परमतत्त्व परमात्मा

---

१. कालमायांशयोगेन भगवद्वीक्षितं नभः।
नभसोऽनुसृतं स्पर्शं विकुर्वन्निर्ममेऽनिलम् ॥
अनिलोऽपि विकुर्वाणो नभसोरूबलान्वितः।
ससर्ज रूपतन्मात्रं ज्योतिर्लोकस्य लोचनम् ॥
अनिलेनान्वितं ज्योतिर्विकुर्वत्परवीक्षितम्।
आधत्ताम्भो रसमयं कालमायांशयोगतः ॥
ज्योतिषाम्भो नुसंसृष्टं विकुर्वद् ब्रह्मवीक्षितम्।
महीं गन्धगुणामाधात्कालमायांशयोगतः ॥
भूतानां नभ आदीनां दधद्भाव्यावरावरम्।
तेषां परानुसंसर्गात् यथासंख्यं गुणान् विदुः ॥

श्रीमद्भाग०, ३/५३२-३६

खेल-खेल में अपने आपको ही सृष्टि के रूप में प्रकट कर देता है।[1] प्रथमतः यह समस्त जगत् परमतत्त्व की माया से लीन होकर ब्रह्मरूप में स्थित था। उसी को अव्यक्तमूर्ति काल के द्वारा परमात्मा ने पुनः पृथक्रूप से प्रकट किया। यह जगत् जैसा अब है वैसा ही पहले था और भविष्य में भी वैसा ही रहेगा।[2]

श्रीमद्भागवतकार ने सृष्टि को नव प्रकार का बताया है। प्रथम सृष्टि महत्तत्त्व की है। परमतत्त्व परमात्मा की प्रेरणा से सत्तावादि गुणों में विषमता होना ही इस महत्तत्त्व की सृष्टि का स्वरूप है। द्वितीय सृष्टि अहंकार की है। जिससे पृथ्वी आदि पंचभूत एवं ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। तृतीय सृष्टि भूतसर्ग जिसमें पंचमहाभूतों को उत्पन्न करने वाले तन्मात्रवर्ग है। चतुर्थ सृष्टि इन्द्रियों की है, यह ज्ञान और क्रियाशक्ति से सम्पन्न होती है। पंचम सृष्टि सात्विक अहंकार से उत्पन्न हुए इन्द्रियाधिष्ठाता देवताओं की है, मन भी इसी सृष्टि के अन्तर्गत है। षष्ठम सृष्टि अविद्या की है। इसमें तामिस्र, अन्धतामिस्र, तम मोह और महामोह—ये पांच सम्मिलित हैं। यह जीवों की बुद्धि का आवरण और विक्षेप करनेवाली सृष्टि है। ये उपर्युक्त छः प्राकृत सृष्टियां हैं।

परमतत्त्व भगवान् ब्रह्मा के रूप में रजोगुण को स्वीकार कर जगत् की संरचना करता है। छः प्रकार की प्राकृत सृष्टियों के उपरान्त यह सप्तम प्रधान वैकृत सृष्टि इन छः प्रकार के स्थावर वृक्षों की होती है। वनस्पति औषधि, लता, त्वकसार वीसध् और दुभ। इनका संचार नीचे जड़ से ऊपर की ओर होता है। इनमें प्रायः ज्ञानशक्ति प्रकट नहीं रहती, ये भीतर ही

---

१. गुणव्यतिकराकारो निर्विशेणो प्रतिष्ठितः।
पुरुषस्तदुपादानमात्मानं लोलयासृजत्॥
श्रीमद्भाग०, ३/१०/११

२. विश्वं वै ब्रह्मतन्मात्रं संस्थितं विष्णुमायया।
ईश्वरेण परिच्छिन्नं कालेनाव्यक्तमूर्तिना॥
यथेदानीं तथाग्रे च पश्चादायेतदीदृशम्।
वही, १२/१३ अ

भीतर केवल स्पर्श का अनुभव करते हैं तथा इनमें से प्रत्येक में कोई विशेष गुण रहता है। अष्टम सृष्टि तिर्यग्योनियों अर्थात् पशु-पक्षियों की है। वह अट्ठाईस प्रकार की मानी गई है। इनमें काल का ज्ञान नहीं होता, तमोगुण की अधिकता के कारण ये केवल भोजन-पान, मैथुन शयन आदि ही जानते हैं। इन्हें सूंघने मात्र से वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है। इनके हृदय में विचार शक्ति या दूरदर्शिता नहीं होती। इन तिर्यकों में गौ, बकरा, भैंसा, मृग, सूकर, नील-गाय, रूरू नामक मृग, भेंड़ और ऊंट—ये द्विशफ अर्थात् दो खुरों वाले पशु कहलाते हैं। गधा, घोड़ा, खच्चर, शरभ और चमरी—ये एकशफ (एक खुर वाले) हैं। कुत्ता, गीदड़, भेड़िया, बाघ, बिलाव, खरगोश, साही, सिंह, वन्दर, हाथी, कछुआ, शोट्ट और मगर आदि पशु हैं। कंक, (बगुला), गिद्ध, बटेर, बाज, भास, भल्लूक, मोर, हंस, सारस, चकवा, कौआ और उल्लू आदि उड़ने वाले जीव पक्षी कहलाते हैं। नवम सृष्टि मनुष्यों की है। यह एक ही प्रकार की है। इसके आहार का प्रवाह ऊपर मुंह से नीचे की ओर होता है। मनुष्य रजोगुण प्रधान, कर्मपरायण और दुःखरूप विषयों में ही सुख मानने वाले होते हैं। स्थावर, पशु-पक्षी और मनुष्य—ये तीनों प्रकार की सृष्टियां तथा देवसर्ग वैकृत सृष्टि है।

सृष्टि की विस्तृति :

श्रीमद्भागवतकार ने सृष्टि-विषयक एक बड़े महत्वपूर्ण प्रश्न का समाधान किया है। परमतत्त्व ने जगत् की रचना की किन्तु सृष्टि को विस्तृति प्रदान करने वाले ब्रह्मा हैं। ब्रह्मा ने किस प्रकार सृष्टि का विस्तार किया इस संबंध में श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कन्ध के द्वादश अध्याय में विदुर के प्रश्न पर मैत्रेय का उत्तर निम्न प्रकार से है—

सर्वप्रथम ब्रह्मा ने अज्ञान की पांच वृत्तियों—तम (अविद्या), मोह (अस्मिता), महामोह (राग), तामिस्र (द्वेष) और अन्धतामिस्र (अभिनिवेश)—की संरचना की।[1] किन्तु इस पापमयी सृष्टि से ब्रह्मा का परितोष

---

१. ससर्जाग्रेऽन्धतामिस्रमथ तामिस्रमादिकृत्।
महामोहं च मोहं च तमश्चाज्ञानवृत्तयः॥

श्रीमद्भागवत् पु०, ३/१२/२

नहीं हुआ । ब्रह्मा पुनः अपने मन को भगवान् के ध्यान से पवित्र कर द्वितीय सृष्टि की रचना में प्रवृत्त हो गए । उन्होंने सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार—चार निवृत्तिपरायण उर्ध्वरेता मुनियों की मानसोत्पत्ति की तथा उन्हें आदेश दिया कि वे लोग सृष्टि-रचना के कार्य में संलग्न हो जाए। सनकादिक जन्म से ही निवृत्ति मार्गी थे अतः वे ब्रह्मा के आदेश का पालन न कर सके । ब्रह्मा को असहय क्रोध हुआ । ब्रह्मा ने उस क्रोध को रोकने की बड़ी चेष्टा की, किन्तु बुद्धि द्वारा उनके बहुत रोकने पर भी वह क्रोध तत्काल प्रजपति ब्रह्मा की भुंकुटियों के बीच से एक नीललोहित बालक के रूप में प्रकट हो गया ।[1] वे देवताओं पूर्वज भगवान् भव (रूद्र) रोदन कर कहने लगे "जगत्पिता ! विधाता ! मेरा नाम तथा मेरा निवास स्थान बताइए ।"

"तब कमलयोनि भगवान् ने कहा देवश्रेष्ठ । जन्म ग्रहण करने के साथ-साथ तुमने रोदन किया है अतः तुम रूद्र नाम से प्रसिद्ध होवोगे । प्राणियों के हृदय, इन्द्रिय, प्राण, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य चन्द्रमा और तप —ये ही तुम्हारे निवास स्थान हैं । रूद्र के अतिरिक्त मृत्यु, मनु, महितस, महान्, शिव, ऋतध्वज, उग्ररेता, भव, काल, वामदेव और धृतव्रत तुम्हारे अनेक नाम होंगे । धी, वृत्ति, उशना, उमा, नियुत्, सर्पि, इला, अम्बिका, इरावती, सुधा और दीक्षा—ये एकादश रुद्राणियां तुम्हारी पत्नियां बनेंगी । तुम उपर्युक्त नाम, स्थान और पत्नियों को स्वीकार करो और इनके द्वारा बहुत सी प्रजा उत्पन्न करो, क्योंकि तुम प्रजापति हो ।"

उस रूद्र की सृष्टि-रचना से भी ब्रह्मा सन्तुष्ट नहीं हुए, क्योंकि रूद्र के द्वारा असंख्य यूथ, संसार का भक्षण करना प्रारम्भ कर दिया ।

तत्पश्चात् जब परम तत्त्व परमात्मा की शक्ति से सम्पन्न ब्रह्मा ने सृष्टि-हेतु संकल्प किया, तब उनके दस और पुत्र उत्पन्न हुए, उनसे लोकों की अत्यन्त

---

१. धियो निगृह्यमाणो पि भुवोर्मध्यात्प्रजापतेः ।
सद्यो जायत तन्मन्युः कुमारो नीललोहितः ॥
—श्रीमद्भागवत् पु०, ३/१२/७

वृद्धि हुई ।[1] मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलसत्य, पुलह, ऋतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष और नारद ये ही ब्रह्मा के दस पुत्र थे । इनमें प्रजापति ब्रह्मा की गोद से नारद, अंगूठे से दक्षः प्राण से वसिष्ठ, त्वचा से भृगु, हाथ से ऋतु, नाभि से पुलह, कानों से पुलस्त्य, मुख से अंगिरा, नेत्रों से अत्रि, मन से मरीचि की उत्पत्ति हुई । उनके दांए वक्षस्थल से धर्म पृष्ठभाग से अधर्म और समस्त संसार को भयभीत करने वाला मृत्यु उत्पन्न हुआ । इस प्रकार ब्रह्मा के हृदय से काम, भौहों से क्रोध, निम्न ओष्ठ से लोभ, मुख से वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती, लिंग से समुद्र, गुदा से पाप का निवास स्थान राक्षसों का अधिपति निर्ऋति उत्पन्न हुए । छाया से देवहूति के पति भगवान् कर्दभ उत्पन्न हुए । इस प्रकार यह सारा जगत् जगत्कर्त्ता ब्रह्मा के शरीर और मन से जन्म ग्रहण किया ।[2]

तदनन्तर ब्रह्मा अपनी वासनारहित अति सुकुमारी मनोहरा कन्या सरस्वती पर कामासक्त हो गए मरीचि आदि उनके पुत्रों ने इसका बड़ा विरोध किया । परिणामस्वरूप ब्रह्मा ने अपने उस शरीर का परित्याग कर दिया जिस घोर शरीर को दिशाओं ने स्वीकार कर लिया और उसी बह्मा के शरीर से नीहार (कुहरा) और तम (अन्धकार) की उत्पत्ति हुई ।

एक बार पुनः ब्रह्मा के मन में यह विचार आया कि "मैं पहले की तरह सुव्यवस्थित रूप से सब लोकों की रचना किस प्रकार करूं ।" उसी समय उनके चारों मुख से चारों वेदों का आविर्भाव हुआ । इनके अतिरिक्त उयवेद, न्याय-शास्त्र, होता, उद्गाता, उध्वर्यु और ब्रह्मा—इन चार ऋत्विजों के कर्म, यज्ञों का विस्तार, धर्म के चार चरण और चारों आश्रम तथा उनकी वृत्तियां—ये

---

१. अथाभिध्यायतः सर्गे दश पुत्राः प्रजाज्ञिरे ।
भगवच्छक्तियुक्तस्य लोकसन्तानहेतवः ॥

श्रीमद्भावत् पु०. ३/१२/२१

२. छायायः कर्दमो जज्ञे देवहूत्याः पतिः प्रभुः ।
मनसो देहतश्चेदं जज्ञे विश्वकृतो जगत् ॥

वही, २७

सभी ब्रह्मा के मुख से आविर्भूत हुई ।[1] ब्रह्मा ने अपने पूर्व दक्षिण, पश्चिम और उत्तर के मुखों से क्रमशः ऋक्, यजुः, साम और अथर्ववेद की रचना की तथा इसी क्रम से शस्त्र, इज्या, स्तुतिस्तोम और प्रायश्चित इन चारों की संरचना की । इसी प्रकार आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और स्थापत्यवेद— इन चार उपवेदों को भी क्रमशः उन अपने पूर्वादि मुखों से ब्रह्मा ने उत्पन्न किया । तदनन्तर समदर्शी ब्रह्मा ने अपने चारों मुखों से इतिहास-पुराणरूप पंचमवेद बनाया । इसी क्रम से षो शी और उक्थ, चयन और अग्निष्टोम, आप्तोर्याम और अतिरात्र तथा वजपेय और गौसव—ये दो-दो भाग भी ब्रह्मा के पूर्वादि मुखों से ही उत्पन्न हुए । विद्यादान, तप और सत्य—ये धर्म के चार पाद और वृत्तियों सहित चार आश्रम भी इसी क्रम से प्रकट हुए । सावित्र, प्रजापत्य, ब्राह्म और बृहत्—ये चार वृत्तियां ब्रह्मचारी की हैं तथा वार्ता, संचय, शालीन और शिलोच्छ—ये चार वृत्तियां गृहस्थ की हैं । इसी प्रकार वृत्तिभेद से वैखानस, वालखिल्य, औदम्बर और केनय—ये चार भेद वानप्रस्थों के तथा कुटीचक, बहूदक. हंस और निष्क्रिय (परहंस) ये चार भेद संन्यासियों के हैं । इसी क्रम से आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति—ये चार विधाएं तथा चार व्याहृतियां भी ब्रह्मा के चार मुखों से ही उत्पन्न हुई तथा उनके हृदयाकाश से ओंकार प्रकट हुआ ।[2] ब्रह्मा के रोमों से उष्णिक, त्वचा से गायत्री, मांस से त्रिष्टुण, स्नायु से अनुष्टुप् अस्थियों से जगती, मज्जा से पण्डित और प्राणों से बृहती छन्द उत्पन्न हुए । इसी प्रकार ब्रह्मा का जीव स्पर्शवर्ण और देह स्वर-वर्ण कहलाया । उनकी इन्द्रियों को ऊष्मवर्ण और बल को अन्तःस्थवर्ग कहते हैं । ब्रह्मा की क्रीड़ा से निषाद, ऋषभ, गान्धार, षड्ज, मध्यम, धैवत और पंचम—ये सात स्वर हुए । ब्रह्मा शब्दस्वरूप है । वे वैखरीरूप से व्यक्त हैं और ओंकार रूप से अव्यक्त । उनसे परे सर्वत्र परिपूर्ण परब्रह्म है । वही पर-

---

१. ऋग्यजुः सामाथर्वाख्यान् वेदान् पूर्वादिभिर्मुखैः ।
शस्त्रमिज्यां सस्तुतिस्तोमं प्रायश्चित्तं व्यधात्क्रमात् ॥
श्रीमद्भाग०, ३/१२/३७

२. आन्वीक्षिकी मयी वार्ता दण्डनीतिस्तथैव व ।
एवं व्याहृतयश्चासन् प्रणवो ह्यस्य दह्र तः ॥
श्रीमद्भागवत पु०, ३/१२/४४

ब्रह्म अनेकानेक शक्तियों से विकसित होकर इन्द्रादि देवों के रूप में भासित होता है।

ब्रह्मा के प्रथम कामासक्त शरीर के परित्याग करने के बाद द्वितीय शरीर धारण कर विश्वविस्तार का विचार किया। मरीचि प्रभृति महान् शक्तिशाली ऋषियों से भी सृष्टि का अधिक विस्तार सम्भव नहीं हो सका। ब्रह्मा के मन में पुन: चिन्ता उत्पन्न हो गई कि "मेरे निरन्तर प्रयास करने पर भी प्रजा की वृद्धि नहीं हो रही है अत: अवश्य ही दैव का कोई-न-कोई विघ्न है।" जिस समय ब्रह्मा सृष्टि विषयक चिन्ता से ग्रस्त थे, उसी समय अकस्मात् ब्रह्मा का शरीर दो भागों में विभक्त हो गया। उन दोनों विभागों से एक स्त्री-पुरुष का युग्म आविर्भूत हुआ। उसमें पुरुष, सार्वभौम सम्राट् स्वायम्भुव मनु हुए और स्त्री, महारानी शतरूपा। तब से अविच्छिन्न रूप से मिथुन धर्म से प्रजा की वृद्धि होने लगी। महाराज मनु और शतरूपा से पांच सन्तानें उत्पन्न हुई। उनमें प्रियव्रत और उत्तानपाद—दो पुत्र तथा आकूति, देवहूति और प्रसूती—तीन कन्यायें थीं। मनु ने आकूति का विवाह रूचि प्रजापति से किया, मत्स्यस्वरूपा कन्या देवहूति कर्दम को दी और प्रसूति दक्ष प्रजापति को। इन तीनों कन्याओं की सन्तति से विश्व भर गया।

सप्तम अध्याय

वैष्णव पुराण में सृष्टि-वर्णन की समीक्षा भारतीय दार्शनिक विवेचना के परिपेक्ष्य में

अष्टादश पुराणों में तथा विशेष रूप से वैष्णव पुराणों में जगत् की संरचना अर्थात् सृष्टि-विद्या का बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है। सर्ग (सृष्टि) पौराणिक साहित्य का सर्वप्रथम, आद्य एवं प्रधान विषय है। पुराणों के सृष्टि-वर्णन पर सांख्य दर्शन का प्रभाव विशेष रूप से पड़ा है; परन्तु पौराणिक सृष्टि तत्त्व सांख्यीय सृष्टि तत्त्व की छाया तथा अक्षरशः गतासुगतिक मात्र नहीं है। पौराणिक सृष्टि विद्या की अपनी स्वतन्त्र विशिष्टता है। सांख्य-दर्शन का विपुल प्रभाव होने पर भी पौराणिक सृष्टि-तत्त्व अपना पृथक्-व्यक्तित्व रखता है। भारतीय वाङ्मय की विशेषता है कि इस साहित्य की प्रत्येक शाखा वैदिक वाङ्मय से पूर्णरूप से प्रभावित है। वैदिक वाङ्मय में भी---ऋग्वेद, अथर्ववेद, ब्राह्मण ग्रन्थों एवं उपनिषदों में सृष्टि-विद्या की विशद रूप से चर्चा है जिसका निर्देश इस शोध-प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में विस्तृत रूप से किया गया है। अतः पौराणिक सृष्टि वर्णन पर वैदिक वाङ्मय का प्रचुर प्रभाव पड़ा है। वैदिक वाङ्मय के अनंतर महर्षि वेदव्यास प्रणीत महाभारत और महर्षि मनु के द्वारा विरचित मनुसंहिता अथवा मनुष्मृति में सृष्टि-तत्त्व की चर्चा है। तत्पश्चात् कालक्रमानुसार पुराणों में सृष्टि का वर्णन है। पौराणिक सृष्टि वर्णन पर वैदिक सृष्टि-तत्त्व, महाभारत तथा मनुस्मृति के एतद् वर्णन का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। सांख्य दर्शन जहाँ निरीश्वरवादी है वहां पौराणिक सांख्य निरीश्वर दर्शन न होकर सेश्वर दर्शन है। पौराणिक सृष्टि वर्णन में सांख्य और वेदान्त दोनों दर्शनों का प्रभाव पड़ा है। सांख्य-वेदान्त में किसी प्रकार का विरोध या वैषम्य इस प्राचीन कालिक साहित्य में लक्षित नहीं होता जैसा वह अवान्तर-काल में स्पष्टतया प्रतीत होता है। वैष्णव पुराणों के सृष्टि-वर्णन में सांख्य और वेदान्त का मंजुल सामरस्य तथा समन्वय हुआ। प्रकृति-पुरुष के द्वैत का प्रतिपादक सांख्य अद्वैत ब्रह्म के द्योतक वेदान्त के साथ मिलकर पौराणिक दर्शन की आधारशिला बन

गया। पौराणिक सृष्टि-वर्णन में प्रकृति और पुरुष दो भिन्न तत्त्व नहीं है, प्रत्युत् वे दोनों परब्रह्म के द्वारा प्रेरित होकर ही अपने कार्य के सम्पादन में समर्थ होते हैं। ब्रह्म ही इन प्रकृति और पुरुष दोनों का अध्यक्ष है। इसी ब्रह्म से वैष्णव पुराणों ने विष्णु अथवा महाविष्णु से तादात्म्य स्थापित किया है।

सांख्य दर्शन में सृष्टि का विकास प्रकृति (प्रधान) तथा पुरुष इन दोनों तत्त्वों के पारस्परिक प्रभाव तथा संयोग का परिणत प्रतिफल है।[1] सांख्य दर्शन में प्रकृति और पुरुष दोनों अनादि और नित्य तत्त्व हैं। प्रकृति जड़ है। अतः जगत् की उत्पत्ति उससे नहीं हो सकती। पुरुष स्वभावतः निष्क्रिय है। इसलिए प्रकृति-पुरुष दोनों का संयोग इस सृष्टि कार्य के लिए परमावश्यक है। चेतन की अध्यक्षता में ही जड़ प्रकृति सृष्टि कार्य का सम्पादन करती हैं। वैष्णव पुराणों में प्रकृति-पुरुष दोनों ही भगवान् विष्णु के दो रूप माने जाते हैं। कहने का तात्पर्य कि दोनों की उत्पत्ति विष्णु की सत्ता पर आधारित है। विष्णु पुराण का स्पष्ट कथन है कि विष्णु के परम उपाधिरहित स्वरूप से प्रधान (प्रकृति) और पुरुष दो रूप होते हैं तथा विष्णु के एक तृतीय कालात्मक रूप के द्वारा ये दोनों प्रकृति और पुरुष सृष्टि समय में संयुक्त होते है एवं प्रलय काल में दोनों वियुक्त होते हैं। भगवान् विष्णु कालशक्ति के माध्यम से विश्व की सृष्टि और प्रलय किया करते हैं।[2] विषयों का रूपान्तर या परिवर्तन ही काल का स्वरूप है।[3] काल तो स्वयं अनादि, अनन्त और निर्विशेष है। उसी

---

१. पुरुषास्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य।
षाङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः॥
—सांख्यकारिका, २१

२. विष्णो : स्वरूपात् परतो हि ते द्वे
रूपे प्रधानं पुरुषस्य विप्र।
तस्यैव ते न्येन धृते वियुक्ते
रूपान्तरं तद् द्विज कालसंज्ञम्॥
—विष्णु पु०, १/२/२४

३. गुणसाम्ये ततस्तस्मिन्पृथक्पुंसि व्यवस्थिते।
कालस्वरूपं तद् विष्णोर्मैत्रेय परिवर्त्तते॥
—वही १/२/२७

को निमित्त बनाकर भगवान् खेल-खेल में अपने आप ही को सृष्टिरूप में प्रकट कर देते हैं।[1] सर्वप्रथम यह समग्र विश्व, भगवान् की माया में लीन होकर ब्रह्म रूप में स्थित था। उसी को अव्यक्त मूर्ति काल के द्वारा भगवान् ने पुनः पृथक् रूप से प्रकट किया।

वैष्णव पुराणों के सृष्टि वर्णन का दूसरा वैशिष्टय है कि इन पुराणों के अनुसार यह विश्व अनादि तथा अनन्त है। वर्तमान काल में विश्व जैसा है वह भूतकाल में वैसा ही था और भविष्य में भी वह इसी रूप में रहेगा। श्रीमद्-भागवतकार का कथन है कि यह जगत् जैसा अब है वैसा ही पहले था और भविष्य में भी वैसा ही रहेगा।

यथेदानीं तथाग्रे च पश्चादप्येतदीदृशम्।

--श्रीभागवत् पु०, ३/१०/१३

इस संदर्भ में बड़े सारगर्भित प्रश्न सामने आते हैं। जब विश्व वर्तमान, भूत और भविष्य में एक रूप है, तब इस विश्व की प्रलय की सम्भावना कैसी ? यह विश्व कतिपय वर्षों में विलीन तथा नष्ट हुआ दृष्टिगोचर होता है—इसका क्या रहस्य है ? इसका उत्तर है विश्व की प्रवाहा नित्यतता। जिस प्रकार नदी में स्नानार्थी एक समय जिस जल में स्नान करता है, दूसरे समय अथवा दूसरे क्षण नदी के उसी जल में स्नान नहीं करता है; क्योंकि नदी का जल निरन्तर प्रवणशील है। वह सन्तत परिवर्त्तनशील है। जल के प्रवाह में एक मुहूर्त के लिए भी विराम नहीं है। जब नदी के जल की ऐसी उपर्युक्त अवस्थिति है तब नदी के उसी जल में स्नान करने का तात्पर्य क्या है ? जल प्रतिक्षण परिवर्त्तनशील है, परन्तु वह प्रवाह है, वह जल का प्रवाह जिसका जल अविभाज्य अंग है, कभी भी उच्छिन्न नहीं होता है। वह नित्य है। सृष्टि के सम्बन्ध में भी यही प्रवाहशीलता का सिद्धान्त कार्यशील माननीय है। सृष्टि का प्रवाह नित्य है।

प्रकृति, पुरुष, व्यक्त तथा काल—ये चारों रूप उसी भगवान् विष्णु के हैं। भगवान् विष्णु इन चारों रूपों से सीमित नहीं है।

---

१. पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्।
उतामृत्वस्येशानो यदन्नेना तिरोहति।

—ऋग्वेद सं०, १०/९०/२

वह इनसे परे वर्त्तमान है। जगत् की संरचना उस विष्णु की क्रीड़ा है।[1] यदि जगत् की सृष्टि विष्णु की क्रीड़ा नहीं, तो भगवान् विष्णु तो आप्तकाम है। पूर्ण हैं। उदतः इस विचित्र विश्व के उत्पादन में उसका कौन उद्देश्य है? भारतीय दर्शन का यह बड़ा विवेचनात्मक प्रश्न है। भारतीय मनीषा ने इसका पूर्ण विश्लेषण किया। वैदिक संहिताओं, उपनिषदों तथा भारतीय दार्शनिकों ने इस प्रश्न की बड़ी सारगर्भित विवेचना प्रस्तुत की है। ऋग्वेदीय दशम मण्डल के दुरूण सूक्त में वड़े संक्षेप में इस समस्या का समुचित प्रतिपादन किया गया है।

उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।

प्रातः वन्दनीय सायण ने इस मन्त्र के भाष्य प्रसंग में लिखा है—

> **"उत अपि च अमृतत्वस्य देवत्वस्यायमीशानः**
> **स्वामी। यद्यस्मात् कारणात अन्नेन प्राणिनां**
> **भोग्येन अन्नेन निमित्तभूतेना तिरोहति। स्वकीयां**
> **कारणावस्थामतिक्रम्य परिदृश्यमानां जगदवस्थां**
> **प्रान्पोति तस्मात् प्राणिनां कर्मफलभोगाय जगदवस्था—**
> **स्वीकारान्नेदं तस्य वस्तुत्वमित्यर्थः।"**

कहने का तात्पर्य यह है कि ब्रह्म अपनी कारणावस्था का परित्याग कर जगत् की कार्यावस्था को स्वीकार करता है कि प्राणी अपने शुभाशुभ कर्मों के फल को भोग लें। ब्रह्म का ए तावन्मात्र उद्देश्य है अन्य कुछ भी नहीं। वैष्णव पुराणों ने तथा अन्य पुराणों ने विश्व के सृष्टि तत्त्व का वर्णन कम या अधिक मात्रा में बहुशः किया है।[2] सांख्य दर्शन के सृष्टि विषयक प्रभाव

---

१. यथा नटस्याकृतिभिः विचेष्टतो
दुरत्ययानुक्रमणः स मावत्॥
—श्रीमद्भागवत पु०, ८/३/६

२. द्रष्टव्य—ब्रह्म पु० अध्याय १, विष्णु पु०, १/२-५
वायु पु० ३-६ अध्याय पर्यन्त,
भागवत पु०, ३/१० तथा ३/२०
नारदीय पु०, १/४२, मार्कण्डेय पु०, ४७/४८
अध्याय, भविष्य पु० २/५-६ तथा ३/५-१०
कूर्म पु०, १/४-१०, गरूड़ पु०, १/४, मत्स्य पु०, २-३
अध्याय, देवी भागवत पु०, ३/१-७; हरिवंश, १/१-३

पौराणिक सृष्टि तत्त्व पर कितना पड़ा है। इसका विश्लेषण डा० पी० हाकर ने किया है।

संक्षेप में वैष्णव पुराणों में वर्णित सृष्टि तीन प्रकार की बतायी गई है—

१—प्राकृत सर्ग।
२—वैकृत सर्ग। तथा
३—प्राकृत-वैकृत सर्ग।

प्राकृत सर्ग यह नैसर्गिक सृष्टि है। इस सर्ग के लिए सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा की अपनी बुद्धि या अपने विचार को सृष्टि हेतु कार्यरूप में लाने की आवश्यकता नहीं होती है। अतः इस प्राकृत सर्ग को अबुद्धिपूर्वक की संज्ञा प्रदान की गई है। इसके विपरीत वैकृत सर्ग बुद्धिपूर्वक सृष्टि है जिसके निमित्त ब्रह्मा ने अपने बुद्धि वैभव का प्रयोग अत्यन्त बुद्धिपूर्वक किया है। यही प्राकृत सर्ग और वैकृत सर्ग में पार्थक्य है। यही भिन्न पृथक् तत्त्व है जो दोनों सर्गों को पृथकता प्रदान करता है।[1]

प्राकृत सर्ग की संख्या तीन है। वैकृत सर्ग की पांच है। प्राकृत-वैकृत सर्ग की संख्या एक है। इस प्रकार इन नव प्रकार के सर्गों की चर्चा विष्णु पुराण में की गई है। प्राकृत सर्ग—

ब्रह्म सर्ग—प्रजापति ब्रह्मा का प्रथम सर्ग महत् तत्त्व है। ब्रह्म सर्ग में ब्रह्मन् शब्द महत् ब्रह्म अर्थात् बुद्धि तत्त्व का द्योतक है। भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता के चतुर्दश अध्याय के प्रारम्भ में अर्जुन से कहा है कि "हे भारत (अर्जुन)! मेरी महत्-ब्रह्म रूप मूल प्रकृति सम्पूर्ण भूतों की योनि है अर्थात् गर्भाधान का स्थान है और मैं उस योनि में चेतन समुदाय रूप गर्भ को स्थापन करता हूं। उस जड़ चेतन के संयोग से सब भूतों की उत्पत्ति होती है।"[2]

---

१. प्राकृतांश्च भये पूर्वे सर्गास्ते बुद्धिपूर्वकाः।
बुद्धिपूर्वं प्रवर्त्तन्ते मुख्याद्याः पंच वैकृताः॥
—वायु पु०, १/१२/१८

२. मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत॥
—श्रीमद्भगवद्गीता, १४/३

सांख्य दर्शन के अनुसार बुद्धि या महत्तत्त्व ही प्रकृति-पुरुष के संयोग का प्रथम परिणाम है।[1] वैष्णव पुराणों में यही मत स्वीकृत है।

भूतसर्ग :

पंच तन्मात्राओं की सृष्टि का नाम भूतसर्ग है। तन्मात्राएं पृथिव्यादि पञ्चभूतों की अत्यन्त सूक्ष्मावस्था के द्योतक तत्त्व हैं। सांख्य दर्शन में पंच तन्मात्राएं "अविशेष" के नाम प्रख्यात हैं

गुणपरिणामभविशेषान्नानात्वं वाह्यभेदाश्च।

सांख्यकारिका, २७

तन्तात्रष्यविशेषा···

वही, ३८

वैकारिक सर्ग :

पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां तथा उभयरूपात्मक संकल्प विकल्पात्मक मन को मिलकार इन्द्रियों की संख्या एकादश होती है। इन्द्रिय सम्बन्धी सृष्टि वैकारिक सर्ग कहलाती है। अहंकार सत्त्व, रज और तम इन गुणों के भेद से तीन प्रकार का होता है : सात्त्विक, राजस और तामस। अहंकार के तामस रूप से पंच तन्मात्राएं उत्पन्न होती है तथा सात्त्विक रूप से इन्द्रियों का जन्म होता है। अहंकार का राजस रूप दोनों की सृष्टि में समभाव से क्रियाशील रहता है। अतः अहंकार के राजस रूप से किसी पदार्थ का आविर्भाव नहीं होता है। सांख्य दर्शन इसी उपर्युक्त मत को मान्यता प्रदान किया है। वैष्णव पुराण इसे ही मानते हैं तथा समग्र पौराणिक साहित्य का यही अभिमत है।

वैकृत सर्ग :

मुख्य, तिर्यक्, देव, मानुष एवं अनुग्रह सर्गों के भेद से पांच प्रकार का होता है—

---

१. प्रकृतेमहांस्ततोऽहंकारस्तस्याद्
गणश्च षोडशकः।

—सांख्यकारिका, २२

(१) मुख्य सर्ग :

सभी वैष्णव पुराणों की तथा विशेष रूप से विष्णु पुराण[1] की मान्यता है कि सर्वप्रथम ब्रह्मा पूर्ववत् सृष्टि का चिन्तन करते हैं और इस प्रकार अबुद्धि-पूर्वक चिन्तन करने के परिणामस्वरूप तमोगुणी सृष्टि का आविर्भाव होता है । यह तमोगुणी सृष्टि **पंचपर्वा अविद्या** के रूप में आविर्भूत होती है । तम, मोह, महामोह, तामिस्र और अन्ध तामिस्र ये अविद्या के पंच पर्व या पंच प्रकार हैं । इसी सृष्टि का दूसरा अभिधान अबुद्धिपूर्वक सर्ग भी है: ब्रह्मा पुनः ध्यानमग्न हुए और तमोमय तथा जड नगादि—वृक्ष, गुल्म, लता, वीरुत् और तृण रूप पांच प्रकार सर्ग का जन्म हुआ । यह सर्ग ज्ञानशून्य है और बाह्य आभ्यन्तरिक दोनों रूप से तम प्रधान है । पृथिवी पर चिर स्थायित्व के दृष्टिकोण से पर्वतादि की मुख्यता है । अतः यह जड तमोमय सर्ग मुख्य-सर्ग है।[2]

(२) तिर्यक सर्ग :

ब्रह्मा ने उपर्युक्त मुख्य सर्ग को पुरुषार्थ के लिए असाधिका देखकर पुनः ध्यानमग्न होकर अन्य सृष्टि का चिन्तन किया तथा परिणामस्वरूप तिर्यक-योनि अथवा तिर्यक्-स्रोत सृष्टि अथवा तिर्यक्-सर्ग का आविर्भाव हुआ । तिर्यक् नाम का स्वारस्य यही है कि यह सर्ग अथवा योनि वायु के समान तिरछी गति से चलायमान अथवा गतिशील है । इस सर्ग में पक्षी तथा पशु सम्मिलित है । ये सब प्रायः तमोमय, विवेक से रहित, अनुचित मार्ग का अवलम्बन करने वाले और विपरीत ज्ञान को ही यथार्थ मानने वाले होते हैं । अतः ये अवेदी

---

१. सृष्टिं चिन्तयतस्तस्य कल्पादिषु यथा पुरा ।
अबुद्धिपूर्वकः सर्गः प्रादुर्भुतस्तमोमयः ॥
तमो मोहो महामोहस्तामिस्रो ह्यन्धसंज्ञितः ।
अविद्या पंचपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः ॥
—विष्णु पु०, १/५/४-५

२. मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ॥
—वही, १/५/२१

तथा उत्पथग्राही कहलाते हैं।[१] ये सब अहंकारी, अभिमानी और अट्ठाईस वधों[२] से युक्त, आन्तरिक सुख आदि को ही पूर्णतया समझने वाले और परस्पर एक दूसरे की प्रवृत्ति को न जानने वाले होते हैं, स्थावर सृष्टि के बाद जंगम सृष्टि का यह प्रथम रूप में उदय में आया।

(३) देवसर्ग :

प्रजापति ब्रह्मा इस तिर्यक योनि से सन्तुष्ट न हुए, क्योंकि यह भी सृष्टि पुरुषार्थ की असाधिका थी। ब्रह्मा को उसी सृष्टि से प्रसन्नता होती जो पुरुषार्थ अर्थात् मोक्ष का साधक सिद्ध हो। तिर्यक् स्रोत का सर्ग इस तात्पर्य में सहायक न होने से ब्रह्मा ने ऊर्ध्वस्रोत वाले प्राणियों का सृजन किया। यह ऊर्ध्व लोक में निवास करने वाला सात्त्विक सर्ग है। इस ऊर्ध्वस्रोत सृष्टि में उत्पन्न हुए प्राणी विषय-सुख के प्रेमी, बाह्य और आन्तरिक दृष्टि सम्पन्न तथा बाह्य और

---

१. पश्वादयस्ते विख्यातास्तमः प्राया ह्यवेदिनः।
उत्पथग्राहिणश्चैव ते ज्ञाने ज्ञानमानिनः।
—विष्णु पु० १/५-१०

२. सांख्य-कारिका में अट्ठाइस वधों का वर्णन इस प्रकार किया है—
एकादशेन्द्रियवधाः सह बुद्धिवधैरशक्तिरुद्दिष्टा।
सप्तदश वधा बुद्धेर्विपर्ययात्तुष्टिसिद्धीनाम्॥

एकादश इन्द्रियवध तथा बुद्धि के अपने उपघात १७ हैं जिनमें ९ तुष्टि के विपर्ययय आठ सिद्धि के (इस प्रकार ११+१७=२८) अशक्तिभेद होते हैं।

आध्यात्मिकाश्चतस्र प्रकृत्युपादानकालभाग्याख्याः।
बाह्या विषयोपरयात् पंच च नव तुष्टयो भिमताः॥
अहः शब्दो ध्ययनं दुःखविघातास्त्रयः सुहृत्प्राप्तिः।
दा नंच सिद्धयो ष्टौ सिद्धेः पूर्वोङ्, कशास्त्रिविधा॥

आन्तरिक ज्ञानयुक्त थे । यह सर्ग देवसर्ग कहलाता है । इस सर्ग के प्रादुर्भूत होने से सन्तुष्ट-चित्त ब्रह्मा को अत्यन्त प्रसन्नता हुई ।[1]

(४) मानुष सर्ग :

यह देवसर्ग भी ब्रह्मा की दृष्टि में पुरुषार्थ का असाधक ही निकला । अतः सत्य संकल्प ब्रह्मा ने पुनः अपने ध्यान से एक नवीन प्राणीवर्ग की सृष्टि की । ब्रह्मा के चिन्तन से अव्यक्त (प्रकृति) से पुरुषार्थ का साधक अर्वाक्स्रोत नामक सर्ग प्रकट हुआ । इस सर्ग के प्राणी नीचे पृथिवी पर रहते हैं इसलिए वे अर्वाक्स्रोत कहलाते हैं । उनमें सत्त्व, रज और तम तीनों ही की अधिकता होती है । इस वशिष्टय के कारण वे दुःखवहुल होते हैं, वे अत्यन्त क्रियाशील हैं—सदा कार्य में संलग्न रहते हैं तथा वाह्य आभ्यन्तर ज्ञान से सम्पन्न होते हैं । इस सर्ग के प्राणी मनुष्य कहलाते हैं ।[2]

(५) अनुग्रह सर्ग :

विष्णु पुराण में इस सर्ग का संकेत किया गया है, यह अनुग्रह सर्ग सात्विक तथा तामस है । इस सर्ग का निर्देश अन्य अष्टादश पुराणों में भी उपलब्ध

---

१. तमप्यासधकं मत्वा ध्यायतो न्ययस्ततो भवत् ।
ऊर्ध्वस्रोतास्तृतीयस्तु सात्विकोर्ध्वमवर्त्तत ॥
ते सुखप्रीतिवहुला वहिरन्तस्त्वनावृताः ।
प्रकाशा बहिरन्तश्च ऊर्ध्वस्रोतोद्भवाः स्मृताः ॥
तुष्टात्मनस्तृतीयस्तु देवसर्गस्तु स स्मृतः ।
तास्मिनन्सर्गे भवत्प्रीतिर्निष्पन्ने ब्रह्मयस्तदा ॥
—विष्णु पु०, १/५/१२-१४

२. तथा मिध्यायतस्तस्य सत्या भिध्यायिनस्ततः ।
प्रादुर्बभूव चाव्यक्ता दर्वाक्स्रोतास्तु साधकः ॥
यस्मादर्वाग्व्यवर्त्तन्त ततो र्वाक्स्रोतसस्तु ते ।
ते च प्रकाशबहुलास्तेभोद्रिक्ता रजो धिकाः ॥
तस्मात्ते दुःखबहुला भूयोभूयश्च कारिणः ।
प्रकाशा बहिरन्तश्च मनुष्याः साधकास्तु ते ॥
—विष्णु पु०, १/५/१६-१८

होता है। मार्कण्डेय पुराण में यह अनुग्रह सर्ग—विपर्यय, सिद्धि, शान्ति तथा तुष्टि—चार भागों में विभक्त है।[1] इस सर्ग में भावों की सृष्टि अभीष्ट है। सांख्य दर्शन में यह प्रत्यय-सर्ग का कहा गया है जिसके चार भेद विपर्यय्, अशक्ति, तुष्टि तथा सिद्धि नाम से प्रख्यात है।[2] वायुपुराण की सृष्टि कुछ भिन्न है। समस्त प्राकृत सर्ग प्रकृति के अनुग्रह से जायमान होने के कारण ही अनुग्रह सर्ग कहलाता है।[3] यह विश्व वृक्ष है। अव्यक्त (प्रकृति) वीज है, बुद्धि स्कन्ध है, इन्द्रियां अंकुर हैं, पंच महाभूत शाखा हैं, धर्म और अधर्म पुष्प हैं, सुख तथा दुःख फल एवं समस्त प्राणी पक्षी हैं। वायु पुराण इसी प्राकृत सर्ग को अनुग्रह सर्ग बतलाता है।[4]

(६) कौमार सर्ग :-

वैष्णव पुराणों ने इसे अन्तिम सर्ग की मान्यता प्रदान की है। यह सर्ग प्राकृत भी तथा वैकृत भी है। अतः उभयात्मक सर्ग है। श्रीमद्भागवत पुराण का कथन है कि सृष्टि के आदि में भगवान् ने लोकों के निर्माण की इच्छा की। सिसृक्षा मात्र से महत्तत्त्व आदि से निष्पन्न पुरुषरूप ग्रहण किया। उस पुरुष

---

१. पंचमो नुग्रहः सर्गश्चतुर्धा स व्यवस्थितः।
विपर्ययेण शक्त्या च तुष्टया सिद्धया तथैव च।
—मार्कण्डेय पु०, ४७/२८

२. एण प्रत्ययसर्गो विपर्ययाशक्तितुष्टिसिद्धयाख्यः।
गुणवैणभ्यविभदति तस्य च भेदास्तु पंचाशत्॥
—सांख्यकारिका, ४६

३. अव्यक्तबीजप्रभवस्तस्यैवानुग्रोत्थितः।
शुद्धिस्कन्धमयश्चैव इन्द्रियांकुर कोटरः॥
—वायु पु०, ६/५७/११४

४. महाभूतप्रशारवश्च विक्षेयैः पत्रवांस्तथा।
धर्माधर्मसुपुष्पस्तु सुखदुःखफलोदयः॥
आजीवः सर्वभूतानामयं वृक्ष सनातनः।
एतद् ब्रह्मवनं चैव ब्रह्मवृक्षस्य तस्य तु।
—वही, ११५ तथा ११६

में दस इन्द्रियां, एक मन और पंचभूत थे षोडश कलाएं हुई। वह पुरुष कारण—जल में शयन करते हुए योगनिद्रा का विस्तार किया तथा परिणामस्वरूप उसके नाभि-सरोवर से एक कमल प्रकट हुआ जिससे प्रजापतियों से अधिपति ब्रह्मा उत्पन्न हुए। यही भगवान् का विराट् रूप है तथा यही भगवान् का विशुद्ध सत्त्वमय श्रेष्ठ रूप है। ऋग्वेद के दशम मण्डल के पुरुष सूक्त में इसी भगवान् के पुरुष विराट् रूप के सहस्र पाद, हस्त, मुख, शिर इत्यादि का वर्णन है। भगवान् का यही पुरुष रूप नारायण नाम से आख्यात है। यही रूप अनेक अवतारों का अक्षयकोष है। इसी से समस्त अवतारों का प्राकट्य होता है। इसी रूप के लघु से लघुत्तम अंश से देवता, पशु-पक्षी और मनुष्यादि की सृष्टि होती है। वही भगवान् प्रभु कौमार सर्ग में सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार—इन ब्राह्मणों के रूप में अवतार ग्रहण करके अत्यन्त कठिन अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करता है।

स एव प्रथमं देवः कौमारं सर्गमास्थितः।
चचार दुश्चरं ब्रह्मा ब्रह्मचर्यमखण्डितम् ॥

भगवान् स्वयं कौमार सर्ग में अवतरित होते हैं। इसलिए सनत्कुमारादि, भगवान् विष्णु के ही अन्यतम अवतार माने जाते हैं। सभी सर्गों में यह कौमार सर्ग अन्तिम तथा विशिष्ट सर्ग है। श्रीमद्भागवत के टीकाकर बल्लभाचार्य ने सुबोधिनी टीका में सनत्कुमारादि को देव और मनुष्य स्वीकार कर इस अन्तिम सर्ग के प्राकृत-वैकृत स्वरूप के उभयात्मक रूप के द्विविधित्व के हेतु का अन्वेषण किया है। भागवत के व्याख्याकार शुकदेवाचार्य ने वल्लभाचार्य के मत का खण्डन किया है और स्वीकार किया है कि सनत्कुमारादि कभी मनुष्य कोटि में नहीं माने गए हैं। ये एक वार ब्रह्मा से जन्म ग्रहण किए और प्रत्यहं आविर्भूत होने से चिरस्थायियों में अन्यतम परिगणित होते हैं। श्रीमद्भागवत के प्रख्यात टीकाकार विश्वनाथ चक्रवर्ती का कथन है कि कुमारों की उत्पत्ति भगवद्ध्यानजन्य है तथा भगवज्जन्य है। अतः वे द्विविध रूप में स्वीकृत हैं—प्राकृत भी तथा वैकृत भी।

प्राणियों में नाना प्राणियों की सृष्टि कैसे हुई? इस प्रश्न का समाधान गरुड़ में तथा वैष्णव पुराणों में निम्नलिखित प्रकार से किया गया है—

सृष्टि की इच्छा से ब्रह्मा जब एकाग्र होते हैं तब उनमें तमोगुण का आधिक्य होता है। सर्वप्रथम ब्रह्मा के जघनस्थल से असुरों का प्रादुर्भाव होता है। ब्रह्मा अपने तम्रप्रधान शरीर का परित्याग कर देते हैं। तत्पश्चात् वह परित्यक्त शरीर रात्रि में परिणत हो जाता है। तदनन्तर ब्रह्मा सत्व गुण का आक्षयग्रहण करते हैं और उनके सात्विक शरीर के मुख से सत्त्वप्रधान सुरों की उत्पत्ति होती है। ब्रह्मा अपने इस शरीर का भी परित्याग कर देते हैं और यह परित्यक्त सात्विक शरीर, दिन के रूप में परिवर्त्तित हो जाता है। पुनः ब्रह्मा ने आंशिक सात्विक देह को धारण किया और उस शरीर के पार्श्व-भागों से पितृगणों का निर्माण किया। ब्रह्मा ने उस शरीर को भी छोड़ दिया और छोड़े गए शरीर से दिन और रात्रि के मध्य में वर्त्तमान सन्ध्या की निर्मिति हुई। तब ब्रह्मा ने रजोमय शरीर का आश्रयण किया जिससे रजःप्रधान मनुष्यों की सृष्टि हुई। ब्रह्मा ने इस राजस देह का भी परित्याग कर दिया और इस परित्यक्य रजःप्रधान शरीर से ज्योत्सना अर्थात् प्रभातकाल का आविर्भाव हुआ। इस प्रकार असुर, सुर, पितर तथा मनुष्य चार प्रकार के प्राणिवर्ग की सृष्टि हुई जिनके सम्बन्ध क्रमशः रात्रि, दिन, सन्ध्या तथा प्रातः काल विभागों से है, क्योंकि उनकी शक्ति का आधिक्य उन्हीं कालों में दृष्टिगत होती है।

सृष्टि-संरचना के सम्बन्ध में मनुस्मृति ने विशिष्ट तथ्य को प्रकाश में लाया है कि प्रजापति ब्रह्मा ने जिस व्याघ्रादि जाति विशेष को जिस कर्म मरणादि में पूर्व में प्रवृत्त किया था, बार-बार सृज्यमान अर्थात् उत्पन्न होता हुआ वह जाति विशेष अपने-अपने कर्मवश उसी कर्म को प्राप्त होता है। हिंसा, अहिंसा, दया, सरलता, क्रूर धर्म, अधर्म सत्य और असत्य प्रायः मानवों की सृष्टि के प्रारम्भ में जिस जिसको ब्रह्मा ने बनाया, वह पुनः-पुनः उसी उसी को अदृष्टवश स्वयं ही प्राप्त होने लगा।[1] आचार्य शंकर ने अपने शारीरिक

---

१. यं तु कर्मणि यस्मिन् सन्ययुङ्क्त प्रथमं प्रभुः ।
स तदेव स्वयं भेजे सृज्यमानः पुनः पुनः ॥
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ।
यद्यस्य सो दधात्सर्गे तत्तस्य स्वयमाविशत् ॥
—मनुस्मृति, १/२८-२९

भाष्य में इस मनु संहिता के मत को मान्यता प्रदान की है। आचार्य शंकर का कथन है कि ब्रह्मा ने स्थावर-जंगम यावन्मात्र सृष्टि की है उन प्राणियों की विशेषता है कि प्राक् कल्प में उनका जैसा स्वभाव था, उनकी जैसी प्रवृत्ति थी, इस सृष्टि में भी वही उन्हें प्राप्त होती है। प्राणियों के स्वभाव और प्रवृत्ति में कोई परिवर्त्तन नहीं होता। वैष्णव पुराणों में अन्यतम विष्णु पुराण ने इसी उपर्युक्त मत को स्वीकार किया है। प्राणियों में जिनके जैसे-जैसे कर्म पूर्वकल्पों में थे पुनः-पुनः सृष्टि होने पर उन प्राणियों की उन्हीं कर्मों में फिर प्रवृत्ति होती है। उस समय हिंसा-अहिंसा, मृदुता-कठोरता, धर्म-अधर्म, सत्य-मिथ्या ये सब अपनी पूर्व भावना के अनुसार उन्हें प्राप्त हो जाते हैं। इसी से ये भाव और कर्म उन प्राणियों को अच्छे लगने लगते हैं।[1]

इस प्रकार पूर्व कर्म के कारण ही इस जन्म में प्राणियों की विभिन्न प्रवृत्ति तथा विभिन्न प्रकृति है। वैष्णव पुराणों का इस तथ्य का प्रकाशन भारतीय दर्शन की सुविचारित तथा सुचिन्तित परम्परा के सर्वथा अनुकूल तथा अन्तर्भुक्त है। यह सर्वविदित तथ्य है।

---

१. तेषां ये यानि कर्माणि प्राक्सृष्ट्यां प्रतिपेदिरे।
तान्येव ते प्रपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः॥
हिंस्राहिंस्रे मृदुकूरे धर्माधर्मावृतानृते।
तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते॥
—विष्णु पु०, १/५/६०-६१

अष्टम अध्याय

प्राच्य तथा पाश्चात्य दार्शनिक समीक्षा की तुलना सृष्टि वर्णन के संदर्भ में

इस अध्याय में पाश्चात्य दार्शनिकों के सृष्टि सम्बन्धी विचारों की एक संक्षिप्त विवेचना प्रस्तुत की जाएगी तथा उसका प्राच्य मनीषियों के एतद् विषयक विवेचन से तुलना करने का लघुत्तम प्रयास किया जाएगा। उपर्युक्त विषय शोध का एक स्वतन्त्र शीर्षक है, लेकिन "तितीणुर्दुस्तरं मोडादुडुपेनास्मि सागरम्" की रीति से इस गम्भीरतम विषय में प्रवेश करने का दुस्साहस कर रहा हूं।

पाश्चात्य तत्त्वज्ञान का अभ्युदय यूनान (ग्रीस) के दार्शनिकों के चिन्तन से प्रारम्भ होता है। वहां के दार्शनिकों ने प्रथमतः सृष्टि तत्त्व की मीमांसा की है। उन प्राचीन चिन्तकों की मान्यता है कि जगत् अनेकाकार है। जगत् में विषमता का साम्राज्य है। यह जगत् आमूलचूल वैषम्यपूर्ण है, लेकिन उन दार्शनिकों की यह भी स्थापना है कि मानवीय बुद्धि यह भी मानती आ रही है कि इस नानाकर जागितक वस्तुओं की उत्पत्ति किसी एकाकार पदार्थ से हुई है। वह एक पदार्थ कौन है ? यह चिन्तन का विषय है। विभिन्न पाश्चात्य प्राचीन दार्शनिक निम्नलिखित रूप से अपना मत प्रस्तुत किया है—

जल :

पाश्चात्य आदिम दार्शनिकों में सर्वप्राचीनतम थेलीज का कथन है कि वह मूल आदिम एकाकार तत्त्व जल है जिससे इस नानाकार जगत् का प्रादुर्भाव हुआ। थेलीज की मान्यता का स्वारस्य है कि जल, तीनों ठोस, द्रव तथा वायवीय रूपों को धारण कर सकता है। वनस्पतियों की उत्पत्ति का मूल कारण है। अतः जलः जगत् का आदित तत्त्व है। औपनिषदिक साहित्य में

बृहदारण्यक इसी मत की चर्चा इस प्रकार से करता है कि सृष्टि की प्रारम्भिक अवस्था में जल था। जल ने सत्य को जन्म दिया। सत्य ने ब्रह्म को, ब्रह्म ने प्रजापति को तथा प्रजापति ने देवताओं को उत्पन्न किया जो देवता सत्य की उपासना करते हैं।[1] यहां जल का अर्थ मूलभूत परमार्थिक तत्त्व के रूप में ग्रहण करना समीचीन नहीं है। सृष्टि के प्रारम्भ में जल विद्यमान था और उसी जल से मूलभूत पदार्थ "सत्य" निःसृत हुआ। मनु ने भी मनुस्मृति के प्रथम अध्याय में यह उल्लेख किया है कि सृष्टि के प्रारम्भ में जल था, परन्तु मनु का मत भिन्न है। उनके अनुसार सृष्टि के आदि में प्रथमतः ब्रह्मा ने जल को उत्पन्न किया और उसी जल में बीज का निक्षेपण किया जिससे समग्र जागतिक प्रपंच का प्रादुर्भाव हुआ।[2] तदनन्तर मनु के अनुसार उसी जल में भी ब्रह्म ने निवास किया इसी कारण ब्रह्म का अपर अभिधान "नारायण" भी हैं।[3] बृहदारण्यक उपनिषद् के सृष्टि विषयक वर्णन से मनुस्मृति के मत की भिन्नता यह है कि जहां मनुस्मृति के अनुसार ब्रह्मा ने प्रथमतः जल को उत्पन्न किया अर्थात् इस मत से ईश्वर के द्वारा सृष्टि संरचना का विधान है परन्तु बृहदारण्य उपनिषद् के अनुसार जल से ही समग्र सृष्टि उत्पन्न हुई।

वायु :

पाश्चात्य यूनानी दार्शनिक विद्वान् एनेक्सिनेनीज के अनुसार वह मूल तत्त्व वायु था जिससे इस जगत् की संरचना हुई। एनेक्सिमेनीज के गुरु एनैक्सिमैण्डर का मत है कि मूल तत्त्व असीमित था और उससे सीमित वस्तुओं की उत्पत्ति हुई। उस दार्शनिक का मत था कि सृष्टि के प्रारम्भावस्था में

---

१. "आप एवेदमग्र आसुस्त आपः सृत्यमसृजन्त, सत्यं ब्रह्म,
प्राजापति, प्रजापतिः देवान्। ते देवाः सत्यमेवोपासते।"
—बृहदारण्यक उप०, ५/५/१

२. अप एक ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्।"
—मनुस्मृति, १/८

३. आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नृरसूनवः।
ता सदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥
—वही, १/१०

सर्वप्रथम एक अपरिच्छिन्न परिमाण का द्रव्य था जिससे जगत् के जल, अग्नि, वायु इत्यादि सीमित परिच्छिन्न पदार्थों की उत्पत्ति हुई और अन्त में ये परिछिन्न पदार्थ उसी अपरिच्छिन्न में लीन हो जाते हैं। यदि वह मूल तत्त्व असीमित और अपरिच्छिन्न न होता, तो सृष्टि होते वह तत्त्व समाप्त हो जाता है। वह अपरिच्छिन्न तत्त्व कार्य नहीं है, अनश्वर एवं शाश्वत है। जल एक पदार्थ विशेष है अतः वह मूल तत्त्व नहीं हो सकता। सृष्टि तत्त्व के विचारक इन दार्शनिकों के मतानुसार जगत् जड़ प्रकृति से उत्पन्न नहीं है। जगत् की उत्पत्ति चेतन तत्त्व से हुई है। इन दार्शनिकों के सृष्टि विषयक विवेचन की तुलना छान्दोग्य उपनिषद् में निर्दिष्ट रैक्व के मत से की जा सकती है। रैक्व के मतानुसार वायु के भीतर ही सब वस्तुएं विलीन हो जाती हैं। इसी आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि रैक्व वायु को ही सृष्टि का मूल तत्त्व मानते हैं। जब वायु सब जागतिक पदार्थों का संवर्ग या लय-स्थान है, तब वह नियमतः उनका उत्पत्ति स्थान भी अवश्य होगा।[1]

पाइथोगोरस यूनान का एक महान तत्त्ववेत्ता था। जगत् की संरचना अर्थात् सृष्टि के सम्बन्ध में उनका सिद्धान्त पूर्व दार्शनिकों की अपेक्षा सूक्ष्मतर था। पाइथोगोरस का मत था कि इस सृष्टि का मूल तत्त्व प्रकृति नहीं है। जगत् के पदार्थों का "आकार ही मूल तत्त्व है। पाइथोगोरस अंकगणित और संगीतशास्त्र के पारंगत विद्वान् थे अतः उनका मत था कि जगत् के समग्र पदार्थों में "समानुपात" तथ्य प्रधान है। "आकार" ही पर वस्तु-तथ्य आश्रित रहता है। इनकी मान्य कल्पना है कि "सब पदार्थ अंक है।"

पाश्चात्य प्राचीन चिन्तकों में जेनोफेनीज का नाम विशेष रूप से प्रख्यात है। ये अद्वैतवादी थे। इनके अनुसार समस्त जगत् एक है तथा वह एक ईश्वर या ब्रह्म है। इनके मतानुयायियों में परमीनीडीज और जेनो उल्लेखनीय हैं। उनकी दृष्टि में जगत् सत् है अतः सद्रूप जगत् असत् से कथमपि उत्पन्न नहीं हो सकता। जगत् एक है, सत् है तथा अजात है। उसमें दृश्यमान परिवर्त्तन काल्पनिक है।

---

१. "वार्युवाव संवर्गो यदावा अग्निरूद्वायति वायु मम्येति···
वायुर्हि एवैतान् सर्वान् संवृङ्क्ते।"
—छान्दोग्य उप०, ४/३/१-२

इन अद्वैतवादी पाश्चात्य दार्शनिकों के अतिरिक्त एक पृथक् चिन्तकों का सम्प्रदाय था जो अनेकावाद का समर्थक था। इनके अनुसार जगत् के परिवर्त्तन वास्तविक हैं। इन चिन्तों में हिरेक्लिटस का नाम उल्लेखनीय है जो अग्नि को मूलतत्त्व स्वीकार करते थे। अग्नि को ही वे परिणाम का प्रतीक मानते थे। इस दार्शनिक के मत की तुलना कठोपनिषद् के इस कथन से की जा सकती है—"अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपों बभूव।"[१] जगत् में प्रविष्ट होकर अग्नि भिन्न-भिन्न रूपों के साथ तदाकार हो गया। छान्दोग्य उपनिषद् का कथन है कि सद् पदार्थ-ब्रह्म के प्रथमतः अग्नि उत्पन्न हुआ और अग्नि से जल और जल से अन्न उत्पन्न हुआ।[२] पाश्चात्य मत की तुलना में औपनिषदिक मतानुसार अग्नि जगत् का मूल तत्त्व नहीं है प्रत्युत प्रथम परिणाम है। हिरेक्लिटस परिवर्तन वादी है, परन्तु छान्दोग्य उपनिषद् में परिवर्त्तन या परिणाम पर आग्रह दृष्टिगत नहीं होता। बौद्धधर्म के संस्थापक तथागत बुद्ध ने जिस परिवर्त्तन तत्त्व-परिणामवाद का भारतीय दर्शन में अवतारणा की है उसी सिद्धान्त का प्रतिपादन हिरेक्लिटस ने पाश्चात्य दर्शन के क्षेत्र में सर्वप्रथम लाया था। अनेकवाद के सिद्धान्त को एनेक्सेगोरस तथा इम्पेडाक्लीज ने अग्रसर किया और इसका चरम उत्कर्ष डिमाक्रीटस ने अपने परमाणुवाद के द्वारा प्रदर्शित किया। एकेक्सोगोरस का मत है कि जगत् का मूल तत्त्व एक नहीं है प्रत्युत वस्तुओं के अनेक प्रकार के बीजों से इस जगत् की उत्पत्ति हुई है। इम्प्रेडाक्लीज ने एनेक्सेगोरस के अनेक बीजों के स्थान पर अग्नि, वायु, जल, तथा पृथ्वी इन चार मूलभूत तत्त्वों को स्वीकार किया है। उन्होंने जगत् की तथा प्रलय के लिए संकर्षण तथा विकर्षण दो तत्त्व माने हैं। संकर्षण से सृष्टि होती है और विकर्षण से प्रलय। ऊपर यह निर्दिष्ट किया गया है कि डिमाक्रीटस परिमाणवादी थे। उनका सिद्धान्त है कि विश्व की सृष्टि के मूल साधन परमाणु है। ये आकार तथा स्थान में

---

१. कठोपनिषद्, २/५.

२. "एवमेव खलु सोम्य अन्नेन शुंगेनापोमूलमन्विच्छ,
अदिभः सोम्य शुंगेन तेजोमूलमन्विच्छ,
तेजसा सोम्य शुंगेन सन्मूलमन्विच्छ।"

—छान्दोग्य उप०, ६/८/४

परस्पर भिन्न हैं। परमाणु जड़ नहीं चेतन होते हैं। वे स्वतः क्रियाशील हैं। समस्त दिशाओं में स्वयं प्रचलित होकर दूसरे परमाणु पुंज से संश्लिष्ट होकर जगत् की सृष्टि करते हैं। वैशेषिक दर्शन ने परमाणुओं से जगत् की उत्पत्ति के सिद्धान्त को स्वीकृति प्रदान की है जिसका वर्णन प्रशस्तवाद ने अपने भाष्य में बड़े सुन्दर ढंग से किया है। वैशेषिकों की यह परमाणु-कल्पना स्वप्रतिभा-प्रसूत सिद्धान्त है। यूनानी (ग्रीक) दार्शनिक डिमाक्रिटस के परमाणुवाद से भारतीय वैशेषिकों का सर्वथा भिन्न तथा दोनों में विभेद है। ग्रीक देशीय विवेचना के अनुसार परमाणु स्वयं गुणरहित होते हैं, पर उनमें माप, स्थान तथा क्रम का अन्तर होता है। वैशेषिक दर्शन के आदि आचार्य महर्षि कणाद के अनुसार परमाणु में विशेष गुण होता है। डिमाक्रिटस तथा एपिकुरूस ने परमाणुओं को स्वतः गतिशील तथा आत्मा को भी उत्पन्न करनेवाला बतलाया है। परमाणु अनन्त आकाश में विचरण करते हुए पारस्परिक संघर्ष से स्वतः जगत् की संरचना करते हैं। वैशेषिक सिद्धान्त इससे नितान्त भिन्न है। इस दर्शन के अनुसार परमाणु स्वभावतः निष्पदावस्था में रहते हैं। उनमें स्पन्दन अदृष्ट के सहकार से ईश्वर की इच्छा से होता है। दोनों प्राच्य आर पाश्चात्य दर्शनों में तात्विक विभेद यह है कि जहां ग्रीक सिद्धान्त भौतिकवादी है वहां भारतीय वैशेषिक सिद्धान्त आध्यात्मिकवाद का समर्थक है। वहां यह निर्देष करना सर्वथा समीचीन प्रतीत होता है कि संस्कृत वांग्मय और भारतीय दर्शन के पाश्चात्य समीक्षक विद्वान् डाक्टर कीथ ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **इण्डियन लाजिक एण्ड ऐटमिजिस** में भारतीय परमाणुवाद के सिद्धान्त को विवेचना करते हुए उन्होंने यह प्रदर्शित करने का प्रयास किया है कि इस भारतीय दार्शनिक सिद्धान्त पर ग्रीक दार्शनिकों का प्रभाव पड़ा है। यहां इस विवाद में प्रवेश करना युक्तिसंगत नहीं प्रतीत अतः एतावन्मात्र निवेदन करना मैं पर्याप्त समझता हूं कि पाश्चात्य विद्वान् की उपर्युक्त कल्पना नितान्त निर्मूल है। डिमाक्रिटस के अनुसार पदार्थों का अवान्तर गुण---रूप, शब्द, गन्ध और रस व्यवहारतः सत्य है। यदि परमार्थतः कोई वस्तु सत्य है, तो वह परमाणु ही है। इस पाश्चात्य दार्शनिक के सिद्धान्त ने प्राचीन काल में वैज्ञानिकों के लिए एक दृढ़ आधार प्रस्तुत किया और भौतिक विज्ञान के अभ्युदय का सूत्रपात किया। पाश्चात्य दर्शन के इतिहास में सुकरात, प्लेटो एवं अरस्तू का काल स्वर्ग युग कहलाता है, क्योंकि इन दार्शनिकों ने पाश्चात्य दर्शन को अपने

मौलिक समीक्षणों से सुप्रतिष्ठत तथा समुन्नत बनाया है। सुकरात के शिष्यों में प्लेटो सर्वश्रेष्ठ थे। प्लेटो को दो प्रकार की सत्ताएं मान्य हैं---एक व्यावहारिक सत्ता तथा दूसरी वास्तिविक सत्ता। प्लेटो के अनुसार जगत् परिवर्त्तनशील है। जगत् एकाकार रूप में नहीं रहता, लेकिन वास्तविक सत्ता का जगत् एकाकार है और कभी परिवर्त्तनशील नहीं होता। विश्व के प्रभावशाली चिन्तकों में अरस्तू का स्थान विशिष्ट रूप से परिगणित होता है। अरस्तू की दृष्टि में जगत् के समस्त पदार्थ आकार तथा द्रव्य---इन दो वस्तुओं से निर्मित है। आकार प्रधान है तथा द्रव्य सहकारी है। द्रव्य वस्तु का अपूर्ण रूप है। आकार की प्राप्ति के लिए द्रव्य की प्रवृत्ति होती है। अरस्तू आकार को ही ईश्वर मानते हैं। इनकी दृष्टि में ईश्वर स्रष्टा नही हैं, क्योंकि द्रव्य और आकार दोनों ही नित्य हैं। ईश्वर ही समस्त कामनाओं का केन्द्र स्थल है। ईश्वर इस जगत् का अचलित संस्कार है। ईश्वर के प्रति प्रेम वह साधन है जिससे जगत् भ्रमणशील रहता है। अरस्तू ने सृष्टि अथवा निर्मिति हेतु उपादान कारण, असमवायो कारण, निमित्तकारण और लक्ष्य—इन हेतुचतुष्टय की परिकल्पना की है।

अरस्तू के पश्चात् पाश्चात्य दार्शनिकों में पाश्चात्य दर्शन के अर्वाचीन युग के प्रवर्त्तक गणितज्ञ डेकार्ट का नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने सृष्टि के विषय में अपना विचार प्रस्तुत किया। डेकार्ट की स्थापना है कि जगत् की संरचना ईश्वर से हुई है, अतः जगत् अपने आधार तथा स्थिति हेतु ईश्वर पर ही आश्रित है।

इंगलैण्ड देशीय पाश्चात्य दार्शनिक हाब्स अपने चिन्तन में पूर्णरूपेण प्रकृतिवादी थे। उनके मतानुसार द्रव्य और गति दो सत् पदार्थ हैं जिनके परस्पर सहयोग से इस जगत् के प्रत्येक पदार्थ की संरचना सम्भव होती है। ईश्वर जगत् का मूल कारण है। हाब्स ने इसका खण्डन किया।

ईसा की सत्रहवीं शताब्दी के पाश्चात्य दार्शनिक स्पिनोजा सर्वेश्वरवादी थे। उनका सिद्धान्त था कि सब ईश्वर है और ईश्वर ही सब है। ईश्वर जगत् का क्षणिक या वाह्य कारण नहीं है किन्तु वह उपादान और वास्तव सत्ता है। स्पिनोजा का विचार विशिष्टाद्वैत मत से साम्य रखता है। आचार्य

शंकर एक सत्ता ब्रह्म रूप को मानते हैं, तो स्पिनोजा को भी यही मान्य है। जर्मन तत्त्ववेत्ता लाइबनिज ने शक्त्यणुवाद को प्रतिष्ठित किया था। इनके अनुसार जगत् के समस्त पदार्थ की वास्तव सत्ता नहीं है, प्रत्युत् मन की अनुभूति में इनकी प्रतीतिमात्र होती है। चित्त अथवा आतमा ही एकमात्र वस्तु तत्त्व है। जगत् में सर्वत्र शक्त्युण विद्यमान हैं। ईश्वर ने ही इन्हें उत्पन्न किया है। अट्ठारहवीं शताब्दी के प्रख्यात दार्शनिक बिशय वर्कले अध्यात्मवादी थे। वे ईश्वर, ईश्वर के द्वारा सृष्ट चेतन व्यक्ति और अनेक प्रत्ययों को सत्य मानते हैं। वे वाह्य वस्तुओं की सत्यता को स्वीकार नहीं करते। वर्कले का मत बौद्धो दर्शन के विज्ञानवाद से साम्य रखता है। उन्नीसवीं शताब्दी में पाश्चात्य जगत् में भौतिकवाद की चरम उन्नति हुई। परिणामस्वरूप बुशनेर नामक वैज्ञानिक दार्शनिक का कथन है कि जीवन किसी विशिष्ट अवस्था में जड़ प्रकृति से स्वतः उत्पन्न होता है। इसमें चैतन्य का अंश स्वतः आविर्भूत होता है।

पाश्चात्य दर्शन का सृष्टि विषयक यह एक संक्षिप्त दिग्दर्शन मात्र है। इसके अनुशीलन से स्पष्ट हो जाता है कि पश्चिमी जगत् में विवेकशील विचारकों की कमी नहीं रही है। यहां के तत्त्वज्ञानियों ने भी इस विश्व की विचित्र पहेली को भारतीय मनीषियों की भांति यथाशक्ति व्यासाधान सुलझाने तथा समझाने का पूर्ण उपयोग किया। मानवीय जीवन की उपकारी तथा आवश्यक इस सृष्टि विनय की मार्मिक विवेचना में इसी निष्कर्ष पर पहुंचाती है कि पाश्चात्य तत्त्ववेत्ता अपनी दार्शनिक उड़ान में स्थूल जगत् तथा मानव जीवन को विस्मृत नहीं किए हैं।

नवम् अध्याय

विषय-विवेचना का समापन तथा उपसंहार

वैष्णव पुराणों में वर्णित सृष्टि तत्त्व की सामान्य रूपरेखा को इस शोध-प्रबन्ध में प्रस्तुत करने का लघुत्तम प्रयास किया गया है। प्रस्तुत पुराणों के अनुसार प्रधानतः ब्रह्मा जगत् की संरचना का कार्य सम्पादित करते हैं। सृष्टि कार्य के लिए भगवान् विष्णु उन्हें प्रेरणा प्रदान करते हैं। वैष्णव पुराणों में यह वर्णित है कि ब्रह्मा की उत्पत्ति विष्णु के नाभि-कमल से होती है तथा वही नाभि-कमल ब्रह्मा का निवास स्थान है। भगवान् विष्णु की प्रेरणा से उसी नाभि-कमल पर बैठे हुए ब्रह्मा दिव्य सौ वर्ष तक तपस्या करते हैं। तपस्या के परिणामस्वरूप ब्रह्मा दखते हैं कि वह जल और उनका आसनभूत कमल प्रचण्ड वायु के वेग से प्रकम्पित हो रहे हैं।[1] सृष्टि से अव्यवहित पूर्व काल में यह उस दशा का सूचक है जब एकार्णव-समस्त समुद्र के ऊपर वायु का ही प्रबल आघात होता रहता है। तपस्या तथा अध्यात्म ज्ञान के बल पर ब्रह्मा में विज्ञान-शक्ति का प्राबल्य हो आता है तथा इसी शक्ति के बल पर ब्रह्मा उस प्रवल वायु को और जलराशि को पान कर डालते हैं।[2] एकमात्र कमल शेष रह गया और इस अवशिष्ट विश्व-व्यापी कमल को देखकर ब्रह्मा ने विचार

---

१. विरिंचोऽपि तथा चक्रे दिव्यं वर्षशतं तपः ।
आत्मन्यात्मानमावेश्य यदाह भगवानजः ॥
तद्विलोक्याब्जसम्भूतो वायुना यदधिष्ठितः ।
पद्ममम्भश्च तत्कालकृतवीर्येण कम्पितम् ॥

—श्रीमद्भागवत पु०, ३/१०/४-५

२. तपसा ह्येधमानेन विद्यया चात्मसंस्थया ।
विवृद्धविज्ञानबली न्यपाद् वायुं सहाम्भसा ॥

—वही, ३/१०/६

पद्मकोशं तदा विश्य भगवत्कर्मचोदितः ।
एकं व्यभाङ्क्षीदुरूधा त्रिधा भाव्य द्विसप्तधा ॥
धर्मस्य ह्यनिमित्तस्य विपाकः परमेष्ठचसौ ॥

—वही, ८-९

किया कि इसी कमल से पूर्वकाल में प्रकृति में लीन लोकों की रचना करूंगा। फलतः ब्रह्मा स्वयं इस आकाशव्यापी कमल में प्रविष्ट हो जाते हैं और इस कमल को तीन भागों में विभक्त कर देते हैं। इन्हीं भागों का नाम—भूः, भुवः तथा स्वः हैं। इन तीन भूः भुवः और स्वः इन तीनों लोकों में कर्म का राज्य है। इन तीन लोकों के ऊपर महः, जनः तपः और सत्यं ये चार लोक अवशेष हैं। इन चार लोकों में उन लोगों का निवास होता है जो निष्काम कर्म के सम्पादक हैं। इन चारों लोकों की समष्टि का एक सामूहिक अभिधान-परमेष्ठी लोक अथवा ब्रह्मलोक है।[1]

ब्रह्मा ने स्थावर से लेकर देवपर्यन्त सृष्टि की। परन्तु जब उस सृष्टि का अभ्युदय अग्रसर न हो सका और ब्रह्मा की संरचना के उद्देश्य की सिद्धि न होने लगी तब उन्होंने मानसपुत्रों का सृजन किया। ये मानसपुत्र ब्रह्मा के समान शक्ति-सम्पन्न तथा अध्यात्मविभूषित हैं। श्रीमद्भागवत्पुराण ने ब्रह्मा के इन मानस-पुत्रों को उनके समान होने के कारण "ब्रह्मा" के नाम से पुकारा है। ये मानस पुत्र-भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अंगिरस, मरीचि, दक्ष, अग्नि और वसिष्ठ-संख्या में नव हैं। वैष्णव पुराणों में ये ब्रह्मा के नव मानस पुत्र नव ब्रह्मा के नाम से प्रख्यात हैं। तत्पश्चात् ब्रह्मा ने ख्याति, भूति इत्यादि नव कन्याओं को उत्पन्न किया और इन्हें पत्नी के रूप में मानस पुत्रों को प्रदान किया जिससे आगे चलकर सृष्टि का विस्तार हुआ। ब्रह्मा की यही मानसिक सृष्टि है। ऊपर यह निर्देश किया गया है कि विष्णु के द्वारा प्रेरणा पाकर ही ब्रह्मा इस विशाल विश्व के सृजन में प्रवृत्त होते हैं। विष्णुपुराण प्रभृति वैष्णव पुराणों की मान्यता है कि ब्रह्मा भगवान् विष्णु का रूपान्तर हैं। वह परमशक्तिशाली भगवान् विष्णु ही अपने को ब्रह्मा के रूप में रूपान्तरित कर देता है और वही विश्व की संरचना करता है। यहां यह उल्लेख कर देना प्रासंगिक समझता हूं कि जिस प्रकार वैष्णवपुराण सृष्टि हेतु भगवान् विष्णु

---

१. पद्मकोशं तदा विश्य भगवत्कर्मचोदितः।
एकं व्यभाङ्क्षीदुरुधा त्रिधा भाव्यं द्विसप्तधा ॥
धर्मस्य ह्यनिमित्तस्य विपाकः परमेष्ठ्यसौ ॥
श्रीमद्भागवत पु० ३/१०/८-९

को ब्रह्मा के रूप में मूर्त्यन्तरित वर्णित करते हैं उसी प्रकार शैवपुराण में भगवान् शिव की प्रेरणा से यह कार्य होता है। ध्यातव्य यह है कि सृष्टि कार्य में रूद्र का भी सहयोग अनिवार्य है। सृष्टि के उत्पादन में ब्रह्मा, विष्णु, शिव इन त्रिदेवों का सहयोग अपरिहार्य है। पुराणों में वर्णित सृष्टि तत्त्व का विश्लेषण करने से भागवतों की समन्वय दृष्टि का पूर्ण परिचय प्राप्त हो जाता है।

ब्रह्मा मानसिक सृष्टि करते हैं। वे शरीर-संयोगपूर्वक बैजी सृष्टि नहीं करते। ब्रह्मा प्राणियों के पूर्वजन्मकृत कर्मों को जानकर उनके अनुसार ही उन्हें उत्पन्न करते हैं। अपनी तपस्या तथा अध्यात्मज्ञान के बल पर भगवत्-प्रदत्त ज्ञान के द्वारा प्राणियों के कर्मों को जानते हैं तथा तदनुसार सृष्टि करते हैं। ब्रह्मा की मानसी सृष्टि द्वारा उत्पादित मरीचि कश्यपादि नव मानस पुत्र अधिकारी पुरुष होते हैं जो ब्रह्मा के साहाय्य से तथा उनकी प्रेरणा से सृष्टि कार्य का सम्पादन करते हैं। यही कारण है कि ये नव ब्रह्मा के मानसपुत्र कार्य-समम्य के आधार पर नव ब्रह्मा कहलाते हैं। इसी कारण कश्यप प्रजापति माने जाते हैं तथा उनसे देवों, दानवों, पशु-पक्षियों और चराचर प्राणियों का आविर्भाव होता है। "कश्यप" शब्द की व्युत्पत्तिलभ्य निरूक्ति भी प्रजापति कश्यप की सृष्टि विषयक शक्ति को प्रकाशित करती है। ब्राह्मण-ग्रन्थों में "कश्यपः पयश्को भवति" ऐसा कहकर "कश्यप" शब्द के अर्थ का निर्वचन किया गया है—देखने वाला अर्थात् अपनी दृष्टि मात्र से सृष्टि करने वाला। महर्षि वेदव्यास प्रणीत महाभारत में भी मानसी सृष्टि की चर्चा इस प्रकार से की गई है—

प्रजापतिरिदं सर्वं मनसैवासृजत् प्रभुः।
तथैव देवान्, ऋषयस्तपसा प्रतिपेदिरे।
आदिदेवसमुद्भूता ब्रह्मभूला क्षयाव्यया।
सा सृष्टिर्मानसी नाम धर्मतन्त्रपरायणा।।

महाभारत के अनुसार मानसी सृष्टि वही है जो आदिदेव ब्रह्मा द्वारा निर्मित है, वेदमूलक है, अक्षय है, अव्यय है एवं धर्मानुकूल है। मानसी सृष्टि के पश्चात् ही बैजी सृष्टि होती है जिसका वर्णन वैकृत सर्ग के प्रसंग में किया गया है। वैष्णव पुराणों के सृष्टिवर्णन का एक वैशिष्ट्ये समन्वयात्मक दृष्टि-

कोण है। जिसका निर्देश इसी अध्याय में ऊपर किया गया है। श्रीमद्भागवत पुराण रूद्रसर्ग की चर्चा करता है। रूद्र अथवा शिव अर्धनारी-स्वरूप होने से अपने ही शरीर को दो भागों में विभक्त करते हैं तथा विश्व नर और नारी अर्थात् मानव-दम्पति की सृष्टि करते हैं। भागवत सम्प्रदाय की यही विशेषता रही और इस सम्प्रदाय का प्रभाव वैष्णव तत्त्वमीमांसा के ऊपर विशेष रूप से पड़ा।

भारतीय षड्दर्शनों में साख्य दर्शन का अत्यधिक प्रभाव वैष्णवपुराणों में वर्णित सृष्टि-प्रक्रिया के ऊपर पड़ा है। सांख्य दर्शन की सबसे महत्तम वैशिष्ट्य तत्त्वों की मीमांसा है। सांख्य दर्शन की अपनी स्वतन्त्र सृष्टि-प्रक्रिया है। इसका पूरा प्रभाव वैष्णव पौराणिक सृष्टिवाद पर है। परन्तु उसका अक्षरशः पालन यहां नहीं है। सांख्य दर्शन प्रकृति और पुरुष को मूल तत्त्व मानता है। वैष्णव पुराणों की दृष्टि में प्रकृति और पुरुष दोनों परमात्मा से ही निःसृत होते हैं और प्रलयावस्था में ये दोनों उसी मूल तत्त्व में लीन हो जाते हैं। विष्णुपुराण का स्पष्ट कथन है कि वेदों तथा वेदान्त में वर्णित विष्णु परमात्मा अथवा परमेश्वर है और यही विष्णु सभी प्रकृति तथा पुरुष का आधार है। प्रलयावस्था में दोनों प्रकृति और पुरुष परमात्मा में विलीन हो जाते हैं।

"प्रकृतिर्या ममाख्या व्यक्ताव्यक्त स्वरूपिणी
पुरुषश्चाप्युभावेतौ लीयेते परमात्मनि ।।
परमात्मा च सर्वेषामाधारः परमेश्वरः।
विष्णुनाम स वेदेषु वेदान्तेषु च गीयते।"

—विष्णु पु०, ६/४/३९-४०

निष्कर्ष यह है कि सांख्य दर्शन का बहुशः आधार लेने पर भी वैष्णव पौराणिक सृष्टि-प्रक्रिया की अपनी स्वतन्त्र मौलिकता है जिसका निर्देश शोध-प्रबन्ध में प्रसंगानुसार स्थान-स्थान पर किया गया है। यह भावी अनु-सन्धित्सुओं के अनुसंधान योग्य विषय है। इसका विश्लेषण अनेक विद्वानों ने किया है। रामनगर से १९६२ में प्रकाशित पुराण बुलेटिन के चतुर्थ ग्रन्थमाला में डॉ० पी० हैकर का निबन्ध इसका प्रसंग दृष्टव्य है।

वैष्णव पुराणों में सृष्टि-प्रक्रिया का वर्णन स्वतन्त्र विषय के रूप में स्वीकृत नहीं किया गया है। पंच लक्षण में सर्ग का सर्वप्रथम स्थान है।

श्रीमद्‌भागवत पुराण में (२/१०/१-७ तथा १२/७/८) दो स्थानों पर महापुराण के दश लक्षण तथा क्षुल्लक पुराण के पांच लक्षण का उल्लेख है। श्रीमद्‌भागवत के दश लक्षणों में सर्ग को प्रथम स्थान दिया गया, लेकिन सर्ग सर्वप्रधान विषय नहीं है। सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, अन्तराणि, वंश, वंशानुचरित, संस्था, हेतु और अपाश्रय इन दश पौराणिक प्रतिपाद्य विषयों में श्रीमद्‌भागवतकार अपाश्रम को सर्वप्रधान विषय निर्धारित किया है। अपाश्रय, ब्रह्म का द्योतक महनीय अभिधान है। विश्व ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति से लेकर मृत्यु और महाप्रलय पर्यन्त जितनी नाना विशेष अवस्थाएं होती हैं उन सब रूपों में परम सत्य ब्रह्म ही प्रतीत होता है और वह उनसे पृथक् भी है। ब्रह्म "युतायुत" रूप से प्रतीत होता है। इसी उपाश्रय अथवा ब्रह्म के ज्ञान होने पर ईहा (जगत्) की निवृत्ति हो जाती है। ब्रह्म ही आश्रय तत्त्व है और श्रीमद्‌भागवतकार के अनुसार यही तत्त्व अन्तिम ध्येय है। इसी अपाश्रय (ब्रह्म) की विशुद्धि के लिए पूर्व नव लक्षणों का उपादान किया गया है।

"दशभस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम्।"

आत्मा की उपलब्धि ही वास्तविक परम ध्येय है, परन्तु इस ज्ञान की पुष्टि के लिए पूर्व निर्दिष्ट नव-सर्ग, विसर्ग आदि लक्षणों का इसी निमित्त से विवरण दिया गया है।

सन्दर्भिका

अथर्ववेद (शौनक संहिता) : शंकर पाण्डुरंग पण्डित सम्पादित सायणभाष्य सहित, बम्बई ।

अर्थशास्त्र : कौटिल्यकृत, मैसूर ।

अष्टादश पुराण दर्पण : ज्वाला प्रसाद मिश्र कृत, वेंकटेश्वर ।

आपस्तम्बगृह्यसूत्र : हरदत्तकृत, अनाकुलावृत्ति तथा सुदर्शनाचार्य कृत गृह्यतात्पर्यदर्शन टीका सहित, काशी संस्कृत सीरीज ।

ऋग्वेद (मूल)
परिषिष्टसहित : स्वाध्यायमन्डल ।

कठोपनिषद् : ईकादिपंचोपनिषदन्तर्गत, शांकर भाष्य, गिरिगोपालयतीन्द्रकृत टीकाद्वय सहित ।

काव्यमीमांसा : राजशेखरकृत, वरोदा ।

छान्दोग्योपनिषद् : शांकर भाष्य गिरि टीका सहित, जीवानन्द ।

तैत्तिरीय ब्राह्मण : सायण भाष्य, आनन्दाश्रम ।

निरुक्त : आनन्दाश्रम ।

वौधायन गृह्यसूत्र : शामशास्त्री सम्पादित, मैसूर ।

मनुस्मृति : कुल्लूकभट्टकृत, मन्वर्थ-मुक्तावली टीका ।

महाभारत : गीता प्रेस, गोरखपुर ।

याज्ञवल्क्य स्मृति : विज्ञानेश्वरकृत, मिताक्षरा टीका और वीर-मित्रोदय टीका (चौखम्बा), वाराणसी ।

रामायण	: निर्णय सागर ।
विष्णु धर्मसूत्र	: डॉ० जाली सम्पादित, कलकत्ता ।
शतपथ ब्राह्मण	: कालेण्ड सम्पादित ।
गरुड़ पुराण	: पंचानन तर्करत्न द्वारा सम्पादित, वंगवासी प्रेस, कलकत्ता, वं० सं० १३१४.
नारदीय पुराण	: संस्कृत संस्करण, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई द्वारा प्रकाशित ।
पद्मपुराण	: मूल संस्करण—१. वी० एन० माण्डलीक द्वारा सम्पादित, आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना; भाग १—४; सन् १८९३-९४ ई० । २. वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, सन् १८९५, द्वारा पत्राकार प्रकाशित ।
भागवत् पुराण	: (क) मूल संस्करण—१. आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना; २. वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई; ३. श्रीमद्भागवत, गीताप्रेस, गोरखपुर ।
भविष्य पुराण	: वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, सन् १९१० ई० ।
मत्स्य पुराण	: आनन्दाश्रम, संस्कृत सीरीज, पूना, पंचानन तर्करत्न, वंगवासी प्रेस, कलकत्ता वं० सं० १३१६.
मार्कण्डेय पुराण	: के० एम० बनर्जी द्वारा सम्पादित, बि० इ०, कलकत्ता, सन् १८६२, पंचानन तर्करत्न द्वारा सम्पादित, वंगवासी प्रेस, कलकत्ता, वं० सं० १३१६.
युग पुराण	: काशीप्रसाद जायसवाल द्वारा सम्पादित, ज० वि० ओ० रि० सो०, पटना, भाग—१४, पृ० ३९७-४२१.
लिंग पुराण	: जीवानन्द विद्यासागर द्वारा सम्पादित, बिब्लोथिका इण्डिका, कलकत्ता, सन् १८८५.

ब्रह्मपुराण : आनन्दाश्रम, संस्कृत सीरीज, पूना, सन् १८९५ ई० पंचानन तर्करत्न, वंगवासी प्रेस, कलकत्ता, वं० सं० १३१६.

ब्रह्मावैवर्त पुराण : जीवानन्द विद्यासागर द्वारा सम्पादित, कलकत्ता, सन् १८८८ ई० ।

ब्रह्माण्ड पुराण : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई द्वारा प्रकाशित, सन् १९१३ ई० ।

जावानीज भाषा में इसका अनुवाद ।

वामन पुराण : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई ।

वायु पुराण : हरि नारायण आप्टे द्वारा आनन्दाश्रम, संस्कृत सीरीज, पूना से प्रकाशित, सन् १९०५ ई०, आर० मिश्र द्वारा सम्पादित, भाग १—२, बिब्लोथिका इण्डिका, कलकत्ता, सन् १८८०-८८.

वाराह पुराण : एच० पी० शास्त्री द्वारा सम्पादित, बिब्लोथिका इण्डिका, कलकत्ता, सन् १८९३. पंचानन तर्करत्न, वंगवासी प्रेस, कलकत्ता, वं० सं० १३१३.

विष्णु पुराण : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई ।
पंचानन तर्करत्न, वंगवासी प्रेस, कलकत्ता, वं० सं० १३३१.

बृहद् धर्म पुराण : डॉ० हरप्रसाद शास्त्री द्वारा सम्पादित, बिब्लोथिका इण्डिका, कलकत्ता, सन् १८९७ ई० ।

शिव पुराण : वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई ।
पंचानन तर्करत्न, वंगवासी प्रेस, कलकत्ता, वं० सं० १३१४.

स्कन्द पुराण : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई द्वारा पत्राकार रूप में प्रकाशित वंगवासी प्रेस, कलकत्ता द्वारा ७ भागों में प्रकाशित, वं० सं० १३१८.

हरिवंश पुराण : आर० किंजवदेरकर द्वारा सम्पादित, आ० सं० सी०, पूना, १९३६ ई० ।
पंचानन तर्करत्न द्वारा नीलकण्ठ की टीका के साथ सम्पादित, वंगवासी प्रेस, कलकत्ता, वं० सं० १३१२.

अग्रवाल, वासुदेव शरण : हर्षचरितः एक सांस्कृतिक अध्ययन, भारतीय राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना १९५३.
पाणिनिकालीन भारतवर्ष, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस, प्रथम संस्करण, २०१२ वि० ।
प्राचीन भारतीय लोकधर्म, अहमदाबाद, १९६४.
भारतीय कला, पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी, १९७७.
मार्कण्डेय पुराण : एक सांस्कृतिक अध्ययन, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद ।
वामन पुराण : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी, १९६४.

अली, एस० एम० : द ज्यॉग्रफी ऑव द पुराणाज, नई दिल्ली, १९६६.

अल्तेकर, ए० एस० : एजूकेशन इन एंशॅण्ट इण्डिया ।
हिस्ट्री ऑव बनारस, वाराणसी, १९३७
पोजीशन ऑव वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस, १९५६
स्टेट एण्ड गवर्नमेण्ट इन एंशॅण्ट इण्डिया, बनारस, १९५८.
सोर्सेज ऑव हिन्दू धर्म, शोलापुर, १९५२.

अय्यर, शिवस्वामी
पी० एस० : इवोल्युशन ऑव हिन्दू मॉरल, लेक्चर, कलकत्ता, १९३५.

आप्टे, वी० एम० : सोशल एण्ड रिलिजस लाइफ इन द गृह्यसूत्राज।

आयंगर, के० वी० आर० : ऑस्पेक्ट्स ऑव एंशॅण्ट इण्डियन इकॉनमिक थॉट।

उपाध्याय, भगवतशरण : इण्डिया इन कालीदास, इलाहाबाद, १९४७.

ओझा, मधुसूदन : पुराणनिर्माणाधिकरणम् तथा पुराणोत्पत्ति प्रसंग, जयपुर, सं० २००९.

कनिंघम, ए० : एंशॅण्ट ज्यॉग्राफी ऑव इण्डिया।

काणे, पी० वी० : धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथत-पंचम भाग, हिन्दी समिति, लखनऊ।

मैक्डॉनल, ए० ए० : वैदिक इण्डेक्स।

केरफेल, डब्ल्यू० : दस पुराण पंचलक्षण, बॉन, १९२७
ऐन इंट्रोडक्शन टु इण्डियन हिस्ट्री, बम्बई, १९५६.

गोण्डा, जे० : ऑस्पेक्ट्स ऑव अर्ली इण्डियन विष्णुइज्म।

घाटे, वी० एस० : लेक्चर्स ऑन ऋग्वेद।

घुर्ये, जी० एस० : कास्ट एण्ड क्लास इन इण्डिया।

चतुर्वेदी, परशुराम : वैष्णवधर्म, इलाहाबाद, १९५३.

जॉली, जे० : हिन्दू लॉ एण्ड कस्टम (जर्मन से अनुवाद, बी० के० घोष) कलकत्ता, १९२८.

पाण्डेय, वी० : हरिवंश पुराण : एक सांस्कृतिक विवेचन, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, १९६०.

पार्जीटर, ए० ई० : एंशॅण्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडिशन, आक्सफोर्ड १९२२.

पुसाल्कर, ए० डी० : भास : ए स्टडी
स्टडीज इन द इपिक्स एण्ड पुराणाज, बम्बई १९५५.

भण्डारकर, डी० आर० : सम आॅस्पेक्ट्स आॅव एंशॅण्ट हिन्दू पॉलिटी, कार्माइकेल लेक्चर्स, १९६८.

भण्डारकर, आर० जी० : वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलिजस सिस्टम्स, स्ट्रासबर्ग, १९१३.

मैक्डॉनल, ए० ए० : ए हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर, लन्दन, १९२५, इण्डियाज पास्ट।

मोतीचन्द्र, : प्राचीन भारतीय वेश-भूषा, भारती भंडार, प्रयाग, सं २००७.

राधाकृष्णन, एस० : द हिन्दू व्यू ऑव लाइफ, लन्दन, १९१७.

राय, सिद्धेश्वरी नारायण : पौराणिक धर्म एवं समाज, पंचनंद पब्लिकेशंस, इलाहाबाद, १९६८.

राव, टी० ए० गोपीनाथ : एलिमेंट्स ऑव हिन्दू आईक्लोग्राफी (दो भागों में), मद्रास १९१४-१९१६.

विंटरनित्ज, एम० : ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिटरेचर, कलकत्ता, १९५०.

विर्जी, ए० जे० : एंशॅण्ट हिस्ट्री ऑव सौराष्ट्र, बम्बई १९५५.

विल्सन, एच० एच० : इंट्रोडक्सन टु द इंगलिश ट्रांसलेशन ऑव द विष्णु पुराण
पुराणाज ऑर एन एकाउन्ट ऑव देयर कण्टेंट एण्ड नेचर।

वैद्य, सी० वी० : हिस्ट्री ऑव मिडीवल हिन्दू इण्डिया, वाल्यूम १, पूना १९२१.

शास्त्री, जे० एल० : पॉलिटिकल थॉट इन द पुराणाज, लाहौर, १९४४.

शोध-पत्रिकाएं

जर्नल ऑव गंगानाथ झा रिसर्च इन्स्टीट्यूट, इलाहाबाद ।

इण्डियन हिस्ट्री, क्वार्टली ।

पुराणम्, सर्वभारतीय काशीराज न्यास, दुर्ग, रामनगर, वाराणसी ।

जर्नल ऑव इलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज, इलाहाबाद ।

जर्नल ऑव ओरियण्टल रिसर्च सोसाइटी, अमेरिका ।

डॉ० मिराशी, फीलिसिटेशन वाल्यूम, नागपुर, १९६५ ई० ।

जर्नल ऑव इण्डियन हिस्ट्री ।

इण्डियन ऐण्टिक्वेरी ।